भारतीय प्रेमाख्यान काव्य

[सं० १०००–१६१२]

लेखक

डा० हरिकान्त श्रीवास्तव

बी० ए० (आनर्स), एम० ए०, एल० एल० बी०, पी० एच० डी० (हिन्दी)

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

बनारस

प्रकाशक :
ओम्प्रकाश बेरी,
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी,
बनारस ।

प्रथम संस्करण—११००
नवम्बर १९५५
मूल्य : दस रुपया

मुद्रक :
बालकृष्ण शास्त्री
ज्योतिष प्रकाश प्रेस,
विश्वेश्वरगंज, बनारस ।

कथावस्तु

चम्पावती के राजा विजयपाल के कोई संतान नहीं थी, इसलिये वह बड़े चिंतित रहते थे। एक दिन जब वे बड़े उदास थे, एक सिद्ध उनके यहाँ पहुँचा। राजा ने अपनी खिन्नता का कारण बताया। इस पर सिद्ध ने उन्हें चंडी की उपासना करने के लिये कहा और आशीर्वाद दिया कि तुम्हें संतान लाभ होगा। अतएव नौ महीने के उपरान्त पटरानी पुहुपावती (पुष्पावती) के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने इस कन्या को बड़ी भाग्यशालिनी बताया। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की कि इस कन्या को ग्यारहवें वर्ष व्याधि उत्पन्न होगी और तेरहवें वर्ष तक इसे मूढ़ता रहेगी किन्तु चौदहवें वर्ष इस वंश में एक युवक का प्रवेश होगा जिससे कुमारी का क्लेश कटेगा और कुटुम्ब की अभिवृद्धि होगी।

एक दिन सुन्दर चाँदनी रात में रति और कामदेव विहार कर रहे थे। रति के मन में संसार की सर्वसुन्दरी और सर्वसुन्दर युवक और युवती को जानने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। कामदेव ने उसकी जिज्ञासा शान्त करने के लिये बताया कि बैरागर का राजकुमार 'सोम' और चम्पावती की राजकुमारी 'रम्भा' सर्व सुन्दर युवक और युवती हैं। रति की स्त्री सुलभ जिज्ञासा का इससे शमन न हुआ उसने पति के चरणों पर गिर कर इन दोनों के विवाह की भिक्षा माँगी।

नवम बरस जत नाथ थापि पूजा करवाई।
रवि द्वारा आपुन पिता फारसी पढ़ाई॥
पायो प्रसाद सरस्वतीय वर वीह विलास कंठह धरिय।
भाषा प्रबन्ध उत्ताल गति समहु विधान विस्तरिय॥
प्रथम वृति कायस्थ लिखन लेखन अवगाहन।
विषम करन नृप सेव तुरत ओइस निर्वाहन॥

× × ×

द्वादस विधि अवदान सुनत नव गुण अवराधन।
छंद बन्द पिंगल प्रबन्ध बहुरूप विचारन॥
पारसीय काव्य पुन सैर विधि नजमन सर अविशतक हिय।
प्रत्यक्ष देवी सारद भइ उर निवास मुख वास रहिय॥

× × ×

पौहकर कश्यप के कुल भानु। अच्चर कौन रघुवंश रघुवीर के।
अकबर शाह जहँगीर जैसे। जैसे शाहजहां जहँगीर के॥

× × ×

कामदेव बड़ा अचकचाया किन्तु निराहट के आगे ठहर न सका। इसलिये इन दोनों के हृदय में प्रेम जाग्रत कराने के लिये प्रिय दर्शन के तीन साधनों, स्वप्न, चित्र और प्रत्यक्ष में से उसने स्वप्न को चुना। कामदेव ने सोम का रूप धारण कर रम्भा को स्वप्न में दर्शन दिया और मोहन, सम्मोहन, उन्माद एवं उच्चाटन बाणों का प्रयोग किया। इसी प्रकार रति ने रम्भा का रूप धारण कर सोम को दर्शन दिया और उसे मोहित कर लिया।

दूसरे दिन से राजकुमार और राजकुमारी एक दूसरे के लिये व्याकुल रहने लगे। उनके लिये सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि दोनों को एक दूसरे का कोई पता न था। स्वप्न के उपरान्त रम्भा के शयनगृह में आकाशवाणी हुई कि सूर्य की उपासना करो, वही तुम्हारा क्लेश काटेंगे।

राजकुमारी रम्भावती की दशा दिन प्रतिदिन शोचनीय होने लगी और वह मरणासन्न हो गई। सारा घर परेशान था किन्तु कोई भी कुमारी की व्याधि का पता न पा सका। कुमारी की दासियों में मुदिता बड़ी चतुर थी। मुदिता को शङ्का हुई कि कहीं कुमारी विरह-ज्वर से तो पीड़ित नहीं है। इसलिये सब सखियों को हटाकर, उसने नलदमयन्ती, माधवानल कामकन्दला, उषा अनिरुद्ध आदि की प्रेम कहानियाँ कुमारी को सुनाई। कुमारी बड़ी उत्सुकता से उन्हें सुनती रही फिर फूट कर रो पड़ी। मुदिता की शंका का समाधान हुआ। कुमारी ने अपने अज्ञात प्रियतम की बात बताई। एक वर्ष के उपरान्त रतिनाथ को रम्भा की फिर याद आई और उन्होंने दुबारा कुंवर के रूप में स्वप्न दर्शन दिया और कुमारी के पूछने पर बताया कि वह इसी लोक का वासी है और अन्तर्ध्यान हो गए।

दूसरे दिन रम्भा कुछ प्रसन्न दिखाई पड़ने लगी। उसने मुदिता से बताया कि मेरे प्रियतम ने मुझे फिर दर्शन दिया और बताया है कि वह इसी लोक के वासी हैं। इस सूचना को पाकर मुदिता ने रानी पुष्पावती के द्वारा चित्रकारों को चारों दिशाओं में सुन्दर पुरुषों और राजकुमारों के चित्र अंकित करने के लिये भेजा।

चम्पावती का चित्रकार बोधविचित्र घूमता-घामता वैरागर पहुँचा और देवदत्त ब्राह्मण का अतिथि हुआ। देवदत्त राजपुरोहित था, इसलिये जिज्ञासावश बोधविचित्र ने राजा और राजकुमार के विषय में पूछना प्रारम्भ किया। देवदत्त ने बताया कि वैरागर में सूरसेन का राज्य है उनके एक बड़ा यशस्वी, ज्ञानी और सुन्दर पुत्र है किन्तु एक वर्ष आठ महीने से उसे न जाने क्या हो गया है कि वह उन्मादित अवस्था में रहता है। सुना जाता है कि स्वप्न में किसी

सुन्दरी को देखा है तबसे उसके लिए व्याकुल रहता है। कठिनाई यह है कि इस स्त्री का पता आदि कुछ भी ज्ञात नहीं।

बोधविचित्र को अपनी राजकुमारी की दशा स्मरण हो आई और उसने देवदत्त से प्रार्थना की कि वह राजदरबार में यह कह दे कि उसके घर एक गुणज्ञ वैद्य आया है जो कुमार की व्याधि को अच्छा करने का बीड़ा उठाता है। बोधविचित्र कुमार के पास ले जाया गया। उसने रम्भा का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित करके कुमार को दिखाया। चित्र देखते ही कुमार अपनी प्रेयसी को पहचान गया और प्रसन्नता से नाच उठा। तदुपरान्त बोधविचित्र कुमार का चित्र लेकर विदा हुआ। जाते समय वह कुमार से सारी बातें गुप्त रखने के लिये कह गया और यह भी कह गया कि राजकुमारी के स्वयंवर मे वह अवश्य आए।

चंपावती में बोधविचित्र का लाया हुआ कुमार का चित्र रंभावती को दिखाया गया। रम्भा प्रसन्न हुई और अपने प्रियतम का परिचय पाकर फूली न समाई। राजकुमारी के स्वयंवर की घोषणा की गई और देश देशान्तर के राजकुमारों को आमंत्रित किया गया।

राजकुमार सोम ने अपने दलबल के साथ चंपावती की ओर प्रयाण किया। एक मास के उपरान्त कुमार एकादशी के दिन मानसरोवर पहुँचा। कुमार ने सरोवर में स्नान किया और फलाहार करने के बाद अपने शिविर में सो रहा। एकादशी के दिन अप्सराएँ मानसरोवर में स्नान करने आया करती थीं। उस रात को भी वे आईं, जल-क्रीड़ा के उपरान्त जिज्ञासावश रंभा अन्य अप्सराओं को लेकर कुमार के शिविर में पहुँची। कुमार के सौन्दर्य को देखकर सभी मुग्ध हो गईं। उन्हें अपनी अभिशप्त सखी कल्पलता की याद आई और उन्होंने सोचा यदि इस सुन्दर युवक का विवाह कल्पलता के साथ हो जाय तो उसका नीरस जीवन सरस हो जायगा। थोड़ी देर विचार के उपरान्त अप्सराएँ सशय्या कुमार को लेकर आकाश मार्ग से कल्पलता के यहाँ पहुँची। कल्पलता ने सुप्त कुमार के सौन्दर्य को देखा और मुग्ध हो गई। नाना शृङ्गार से विभूषित होकर कल्पलता ने कुमार को जगाया। अपने सामने अनन्य सुन्दरी को देखकर कुमार को रंभा की शंका हुई। अन्त मे दोनों प्रेमसागर मे निमग्न हो गए।

दूसरे दिन कुमार के गले की जंजीर में एक अपूर्व सुन्दरी के चित्र को देखकर कल्पलता को जिज्ञासा हुई और कुमार ने आदि से अन्त तक अपनी कथा बताई। एक दिन सिद्ध-वेश में कल्पलता को छोड़कर कुमार चंपावती

की ओर चल पड़ा। इधर कल्पलता कुमार के वियोग में पीड़ित थी, उधर वह अपनी वीणा और दिव्य शक्ति से जंगल के जीव-जन्तुओं और सर्पों को वशीभूत करता हुआ चंपावती नगरी पहुँचा।

चंपावती में कुमार की वीणा से मुग्ध होकर नर-नारी अपनी सुध-बुध भूल जाते थे। किसी प्रकार कुमारी रंभा के दर्शन कुमार को न हो पाए। इसलिये उसने एक दिन शिव-मंडप के पास सम्मोहन राग बजाना आरम्भ किया जिसके फलस्वरूप नगर की सारी नारियाँ मुग्ध होकर उसके चारों ओर एकत्रित हो गई। योगी कुमार की दृष्टि रनिवास की दासी और मुदिता की सहेली गुनमंजरी पर पड़ी। कुमार ने एक गाथा पढ़ कर यह प्रकाशित कर दिया कि वह एक बाला के प्रेम में वियोगी होकर योगी हो गया है। गुनमंजरी ने लौटकर मुदिता से सारी बातें बताईं। इसे सुनकर चतुर मुदिता कुमारी के पास पहुँची और उससे कहा कि कल सरोवर पर स्नान कर शिव मंदिर में दर्शन करने चलो वहाँ तुम्हें तुम्हारे प्रियतम के दर्शन सम्भवतः हो जायेंगे। माता से आज्ञा लेकर कुमारी शिव पूजन के लिए गई। पूजा के उपरान्त कुमार के दर्शन किए, कुमार ने अपनी सिद्धि को सामने देख कर सुध बुध खो दी। इसके अनन्तर मुदिता के कहने पर कुमार ने अपना योगी वेश बदल दिया। कल्पलता के यहाँ से चले कुमार को एक साल कुछ महीने हो चुके थे उसकी सेना भी चम्पावती पहुँच चुकी थी।

स्वयंवर के दिन रम्भा ने सोम के गले में जयमाल डाली। दोनों का जीवन आनन्द से व्यतीत होने लगा। विरहिणी कल्पलता ने विद्यापति तोते को अपना सन्देश वाहक बनाकर चम्पावती भेजा। विद्यापति रम्भा के पास एक पेड़ की डाल पर जा बैठा। उसे देखते ही रम्भा के मन में इस सुन्दर पक्षी को पाने की लालसा हुई और वह उसके पीछे दौड़ने लगी। थोड़ी देर में वह तोता रम्भावती को बाग के एक एकान्त कोने में ले गया और वहाँ एक गाथा कही।

"विरहिनी विरह विकार न जानति नारि संजोगिनी।
धनि धनि जिमि अविकार विरला बूझत रंक दुख॥"

रम्भा प्रसन्नवदन तोते को लेकर रङ्गमहल में पहुँची। कुँवर जब तोते को देखने पहुँचा तब उसने दूसरी गाथा पढ़ी।

"नाइक मधुप समान है, मन सुगन्ध रस प्रीत।
पान सौंह बिन स्वाति जल त्रिया चरित्र की रीत॥"

इस दूसरी गाथा को सुन कर रम्भा के हृदय में शङ्का उत्पन्न हुई और उसने कुँवर से पूछना प्रारम्भ किया कि वास्तव में बात क्या है। सम्भवतः तुम मुझसे कुछ छिपाते हो। कुँवर ने तब कल्पलता से विवाह की बात बताई। इसपर रम्भा

बड़ी दुखी हुई और उसने कुमार को तुरन्त मानसरोवर चलने के लिये विवश किया। अतएव ससैन्य रम्भा के साथ सोन ने मानसरोवर की ओर प्रस्थान किया। कुछ मास चलने के उपरान्त वे लोग मायापुरी नगरी पहुँचे। वहाँ के राजा मदनदेव ने सोन को अपने राज्य से मानसरोवर की ओर जाने की स्वीकृति नहीं दी इसलिए दोनों में घमासान युद्ध हुआ, मदनदेव मारा गया और सोन मानसरोवर पहुँच कर कलपलता से मिला। रम्भा ने कलपलता की सेज सँवारी और बधाई गाई।

सूरसेन तीस वर्ष तक राज्य कर गोलोक सिधारे और सोन ने उसके बाद तीस वर्ष तक राज्य किया। इसी बीच इनके ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रसेन को अपने नाना विक्रमपाल का राज्य मिला जिसकी खुशी में बैरागर में नाटक खेला गया। एक नट ने संसार की असारता और ईश्वर की अखंडता को अपनी कला के द्वारा प्रदर्शित किया जिसका प्रभाव सोन पर बहुत अधिक पड़ा और उन्होंने अपने राज्य को अपने चारों पुत्रों में बाँट कर संन्यास ले लिया।

इस काव्य की रचना पुहकर ने जहाँगीर के समय में की थी। मसनवी शैली में लिखा हुआ यह एक शुद्ध प्रेमाख्यान है। इसमें कवि ने प्रारम्भ में निर्गुन और सगुन दोनों ब्रह्म की उपासना की है। ग्रन्थ प्रारम्भ के एक छप्पय में कवि ने वर्ण्य विषय भी लिखा है।

'छत्र सिंहासन पौहमि पति धर्म धुरन्धर धीर।
नूरदीन आदिल वली सबल साहि जहँगीर॥'

× × ×

अगुन रूप निर्गुन निरूप बहुगुन विस्तारन।
अविनासी अवगति अनादि अघ अटक निवारन॥
घट-घट प्रगट प्रसिद्ध गुन निरलेप निरंजन।
तुम त्रिरूप तुम त्रिगुन तुमहि त्रैपुर अनुरंजन॥
तुमहि आदि तुम अन्त हौ तुमहि मध्य माया करन।
यह चरित माय कहँलगि कहौं नारायन असरन सरन॥

रसरतन का अन्त यद्यपि शान्त रस में हुआ है फिर भी यह काव्य एक लौकिक प्रेमाख्यान है जिसमें शृंगार रस प्रधान है। बैरागर के राजकुमार सोन और चम्पावती की राजकुमारी रंभा की प्रेम कहानी इसका वर्ण्य विषय है। प्रेम के संयोग और वियोग की दशाओं का विस्तृत वर्णन करने एवं कथानक में आश्चर्य तत्व और लोकोत्तर घटना के सन्निवेश के लिये कवि ने अभिशप्त अप्सरा कलपलता की कहानी का आयोजन किया है।

वस्तुतः कहानी का प्रारंभ ही कुमार के जन्म की लोकोत्तर घटना से होता है। रंभा और कुमार सोम का प्रेम 'रति और कामदेव' से सम्बन्धित होने के कारण लोकोत्तर घटना पर अवलम्बित है। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कथानक के विकास में सहायक लगभग सभी घटनाएँ आश्चर्य तत्व और लोकोत्तर घटनाओं पर अवलम्बित हैं। कथानक के बीच बीच में आए हुए रसात्मक स्थलों का वर्णन लौकिक हुआ है इस प्रकार प्रस्तुत रचना लौकिक और पारलौकिक तत्वों का एक सुन्दर सामंजस्य उपस्थित करती है।

प्रबन्ध कल्पना और सम्बन्ध निर्वाह

'रसरतन' एक काल्पनिक आख्यान काव्य है इसकी घटनाओं का संगठन और कथा का विकास इतने सुचारु रूप से हुआ है कि कहानी के सौष्ठव के साथ साथ हमें काव्यसौंदर्य का भी आनन्द मिलता है, कारण कि मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों जैसे रंभा और कल्पलता का संयोग-वियोग, प्रेम मार्ग के कष्ट, पुत्र-प्राप्ति के लिये पिता की उलझन, परेशानी और प्रयत्न, विदा होती हुई कन्या का स्वजनों-परिजनों आदि की सीख आदि का वर्णन बड़ा स्वाभाविक मनोहारी एवं मनोवैज्ञानिक हुआ है।

कहने का तात्पर्य यह है कि रसरतन एक शृंगाररस प्रधान काव्य है, इसलिये इसके घटनाचक्र के भीतर जीवन दशाओं और मानव सम्बन्धों की अनेक रूपता नहीं मिलती फिर भी पातिव्रत, वीरता, जय-पराजय, आनन्दोत्सव, प्रेम आदि के जो स्थल आए हैं वे कहानी में रसात्मकता के संचार के लिये उपयुक्त हैं। इसलिये हम यह सकते हैं कि प्रबन्ध काव्य के लिये जिस घटना-चक्र की आवश्यकता होती है, वह हमें इस काव्य में मिलता है।

प्रस्तुत रचना की आधिकारिक कथा के अन्तर्गत रम्भा और कुमार सोम की प्रेम कहानी आती है। प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत कल्पलता अप्सरा का आख्यान, रति और कामदेव का संवाद एवं उनका रम्भा और कुमार का रूप धारण करना, चम्पावती के चित्रकार बीरचित्र का वृतान्त, कुमार के गले में पड़ी हुई माला में गुंथे हुए रम्भा के चित्र को कल्पलता के द्वारा देखे "जाने की घटनाएँ आती हैं।"

जहाँ तक कल्पलता की प्रेम कहानी का सम्बन्ध है वह एक स्वतन्त्र आख्यान है। आधिकारिक कथा से उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। कथा की गति के विराम में एक स्वतन्त्र घटना का आयोजन कवि के द्वारा किया गया है किन्तु कथानक के अन्त में कवि ने उसे मूल घटना से "विद्यापति" तोते द्वारा मिला दिया है। अस्तु हम यह कह सकते हैं कि

कुमार के प्रेम की दृढता को अङ्कित करने के लिए एवं कथावस्तु में रोचकता लाने के लिये ही कवि ने इसका आयोजन किया है। जहाँ तक अन्य घटनाओं का सम्बन्ध है सब किसी न किसी रूप में मूल घटना की गति में सहायक होती हैं। रति और कामदेव के सम्वाद एवं उनके द्वारा रम्भा और कुमार के रूप धारण करने की घटना से ही वास्तविक कुमार और कुमारी में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। बोध विचित्र के द्वारा अङ्कित कुमार और कुमारी के चित्र से दो अपरिचित प्रेमी एक दूसरे के वंश, निवासस्थान आदि से परिचित हो सके।

कार्यान्विति की दृष्टि से यह कथानक आरम्भ, मध्य और अन्त तीन विभागों में सुगमता से बाँटा जा सकता है। स्वप्न दर्शन से लेकर कुमार के चम्पावती प्रयाण तक कथा का आरम्भ, मानसरोवर से कुमार को अप्सराओं द्वारा ले जाने की घटना से लेकर कल्पलता के मिलन तक कथा का मध्य और स्वयंवर से लेकर नाटक के उत्सव तक कथा का अन्त कहा जा सकता है।

कार्यान्विति के गति के विराम में कल्पलता और रम्भा संयोग और वियोग एवं कुमारी को सखियों द्वारा दी जाने वाली सीख आती है। इसलिये हम कह सकते हैं कि कार्यान्वय और सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से यह एक सफल रचना है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख

इस प्रबन्ध में दो नायिकाओं का प्रेम अभिव्यजित हुआ है, इस कारण शृंगार का क्षेत्र बड़ा विस्तृत हो गया है। शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष एवं रति के वर्णन में विभिन्नता, सौम्य एवं चपलता और प्रगल्भता परिलक्षित होती है। कुमारी रम्भा के संयोग शृङ्गार में कवि ने विशेष मर्यादा का ध्यान रखा है। उसमें प्रगल्भता न होकर शालीनता है, इसके विपरीत अप्सरा कल्पलता के रति विवरण में उद्दाम यौवन की उफान है।

नारी-सौन्दर्य-विधान में प्राचीन परिपाटी में नवीन उद्भावनाएँ विशेष आकर्षक बन पड़ी हैं। यौवन के अंकुरित होने पर वयःसन्धि का वर्णन करता हुआ कवि काव्य-परिपाटी का ही अनुसरण करता है। नेत्रों की चपलता और विशालता, स्वाभाविक लज्जा और संकोच, नारी सौन्दर्य की एक अद्भुत वस्तु है। अस्तु इस कवि ने भी प्राचीन परिपाटी के कवियों के अनुसार उसका वर्णन किया है।

"तन लज्जा मुख मधुरता लोचन लोल विसाल।
देखत जोवन अंकुरित रीभत रसिक रसाल।।"
भौंह चक्र पन्छिम अनियारे। मद खञ्जन जनु वान सँवारे।।
श्रवन सींव लोचन अनियारे। पद्म पत्र पर भमर विचारे।।
कुण्डल किरन कपोलन भाई। छवि कवि पै कछु वरन न जाई।
मन्द हास दसनन छवि देखी। सुधा सीचि दारौं दुति लेखी।।

अधरों की लालिमा की उपमा अनेकों कवियों ने बिम्बाफल तथा मूंगे आदि से दी है, किन्तु इस कवि की कल्पना ने बडी दूर की कौड़ी लाई है। किसी कार्य को करने के लिये बीड़ा लेना बड़ी प्राचीन कहावत है इस कहावत का सुन्दर प्रयोग अधरों की लालिमा पर बडे सुन्दर ढङ्ग से किया गया है।

'पौढ़कर अधरन अरुनता केहि गुन भई अचान।
जनु जीतन को मदन पै लिये पैज कर पान।।'

'पैज कर पान' में अनूठा लालित्य है, मदन को जीतने के लिये जैसे इन अधरों ने बीड़ा उठाया हो इसीलिये वे इतने लाल हैं।

इसी प्रकार कटि क्षीणता पर कवि की 'नाज़ुक खयाली' देखने योग्य है। कुमारी की कटि इतनी क्षीण है कि भौतिक शक्ति से तो उसका अवलोकन हो ही नहीं सकता, उसे तो केवल वही देख सकता है जिसे दिव्य ज्ञान प्राप्त हो चुका हो—

'नैननि न आवे अरु मन में न आवे लंक।
चित हू न आवे जाते चित अवरेखिए।।
विरहो को बल विरहनी को जिलास हास।
दुखित हू के जीवहि ते छीनता बिसेखिए।।
जोगि की जुगनि जप जोति के ज्ञान जोई,
...तव तेरी कटि देखिए।'

इसी प्रकार त्रिवली की रोमावली के वर्णन में कवि ने सन्देहालंकार की झड़ी सी लगा दी है जिसमें चक्रवाक चंचु (कुच) से गिरी हुई शैवाल मंजरी (सिवार की लट) की उपमा बड़ी अनूठी बन पड़ी है।

'अमल कमल कुच कमल के नाल।
किधौं विमल विराजमान वैनी कैसी झाई है।।
चकवाक चंचु ते छुटी सिवाल मंजरी, कि।
नागिन निकसि नाभि कूप ते आई है।।

जमुना की धार तम धरि कि खान धरि।
किधौं अलि सावक की पंगति सुहाई है।।
पुहकर कहै रोम राजि यों विराजी आइ।
वरनी न जाइ कवि उपमा न पाई है।।'

कदली खम्भ से रम्भा के युग जंघों की उपमा कवि की दृष्टि में खोटी जँचती है वे तो प्राणनिधान हैं यौवन को चुनौती देने वाले हैं भला उनसे इस कठोर निर्जीव कदली खम्भ से क्या तुलना हो सकती है।

कञ्चन के खंभ रम्भ उपमा कहत कवि,
मेरे जान उभय सुभट नृप काम के।
कहँ कवि पुहुकर कि रम्भ करो लागे,
ये तो अति कोमल हैं मनि अभिराम के।।
चित्त वित्त धूत किधौं दूत सम आगम के,
प्रान निधान किधौं जंघ जुग बामा के।।

उन्नत उरोजों पर झीनी निर्मल चोली की शोभा और उसके नीचे झलकता हुआ कुछ स्पष्ट कुछ अस्पष्ट स्वस्थ मांसल प्रदेश कवि की कोमल कल्पना को जाग्रत करने में बड़ा सफल हुआ है। उसकी उपमाएँ अनूठी और कल्पना अद्भुत बन गई है।

चुपरि चुनाई चोली सेत श्री साफ छवि
छाजत कवीन मन उकति को धायो है।
मेरे जान हेम गिरि सिखरि उतंग विव,
तापर तुपार परि पतरो सो छायो है।।
झीने जल जलज कमल कली सी मानो,
अमल अनूप रूप रतन लजायो है।
महा मनि छटा पट अमित विराज मान,
किधो पूजि पट जुग ईसनि चढ़ायो है।।

मेरु की चोटी पर झीना तुषारपात, स्वच्छ जल की चादर में उमड़ती हुई कमल कली अथवा शिव पर चढ़ाया हुआ पटाम्बर की उपमा इस प्रसङ्ग में कितनी अनूठी और हृदयग्राही हैं। ऐसे ही वक्षस्थल पर पड़ी हुई मणिमाला का सौन्दर्य भी बड़ा प्यारा बन पड़ा है।

जैसे कामिनी के वक्षस्थल पर यह मोतियों की माला नहीं है वरन् सुमेरु पर्वत के दो शृंगों के बीच चंद्रमा ने भूला डाल रखा है अथवा कामदेव से रक्षा करने के लिये नवग्रह एकत्रित हो गए हैं। या काली केशराशि के बीच मोतियों से भरी माग ऐसी प्रतीत होती है मानों यमुना को फाड़ कर गंगा की स्वच्छधार बह रही हो[१]।

जहाँ हमें एक ओर कवि की उर्वरा कल्पना शक्ति का परिचय उसके उपमानों के नए नए प्रयोग में मिलता है वहीं इस कवि ने परंपरागत कवि-समय-सिद्ध उपमानों का भी प्रयोग किया है। जैसे नायिका के अधर विद्रुम के समान लाल, दाँत बिजली के समान चमकते हुए अथवा अनार के दानों के समान सुन्दर हैं।

संयोग शृंगार,

इन्द्रलोक की अप्सरा के नीरस जीवन में कुमार के आकस्मिक प्रवेश ने एक हलचल उत्पन्न कर दी। कुछ ही क्षणों के उपरान्त उसने कुमार को आत्मसमर्पण कर दिया। रंभा के संयोग-वर्णन मे कवि मर्यादा का अतिक्रमण कर गया। संभोग शृंगार के चित्र कहीं कहीं पर बड़े अश्लील हो गए हैं, फिर भी सर्वथा ऐसा नहीं कहा जा सकता। कुछ उक्तियाँ बड़ी मार्मिक और स्वाभाविक हैं, जैसे पति के प्रथम मिलन पर लज्जित और त्रसित नायिका का यह चित्र बड़ा सुंदर बन पड़ा है।

'नैन लाज डर त्रास बढि मदन दुरौ तन माँहि।
डुलति नारि नाहीं करै सकत छुड़ावत बाँहि॥'

कल्पलता के संयोग-वर्णन में रम्भा के संयोग से बड़ा अन्तर है। रम्भावती के सम्बन्ध में कही गई कवि की उक्तियाँ, बड़ी मर्यादित और शालीन हैं। उसमें अश्लीलता अथवा अमर्यादित वर्णन नहीं प्राप्त होते।

---

१. 'नगन की जोति उर लसै लर मोतिन की
चक चौंधहि होत मनि गन जाल जू।
कैधौं मखतूल झूल, झूलत हैं हिंडोरा,
मानो सिखर सुमेरु बीच वारिध को चाल जू॥
कैधौं नवग्रह सग मिलि संकर सहाइ होत,
समर समर काज आए तिहि काल जू।
पुहुकर कहै पीय प्रान तिय परम मोद,
रीझत निहारै छवि रसिक रसाल जू॥'
—रस रतन

विप्रलम्भ शृंगार

कुमार को स्वप्न मे देखने के उपरान्त रम्भावती विरह की व्याकुलता से पीड़ित हो चुकी थी। विरह की ज्वाला मे दग्ध रम्भावती की शारीरिक दशा का ऊहात्मक वर्णन जो सम्भवतः उर्दू की शैली से विशेषरूप में प्रभावित है, कवि ने प्रारम्भ मे किया है। जैसे, उसकी विरह-ज्वाला इतनी तीव्र थी कि बातें करने पर भी जीभ जलती थी, या तन की ताप से कमल के पत्र सूख जाते थे अथवा चन्दन जलकर क्षार हो जाता था या कपूर की शीतलता तलवार की धार के समान लगती थी।

जहाँ इन्होने एक ओर फारसी शायरी से प्रभावित होकर रम्भा की वियोगावस्था का वर्णन किया है, वहाँ रम्भा की वियोगावस्था का वर्णन भारतीय पद्धति के अनुसार वियोग की दसो अवस्थाओ का शास्त्रीय वर्णन भी प्राप्त होता है। इस वियोग वर्णन मे काव्यत्व की उतनी कुशलता नहीं दिखाई पड़ती जितना उनका पांडित्य प्रदर्शित होता है। उन्होंने रीतिबद्ध कवियो की तरह प्रत्येक अवस्था का गुण बता कर उसका उदाहरण रम्भा की वियोग दशा से दिया है। उदाहरणार्थ—

"विप्रलम्भ जिमि मूल है क्रम क्रम विस्तर साख।
दस अवस्था कवि कहत हैं तहाँ प्रथम अभिलाख॥"

अभिलाषा का गुण वर्णन करता कवि कहता है—

"सदा रहत मन चित्त मे मनते पड़े न वित्त।
ताहि कहत अभिलाष कवि इत उत चलहि न चित्त॥"

रम्भा इन्हीं अवस्थाओ में कभी प्रिय का चिन्तन करती, कभी उसकी अभिलाषा करती, कभी उसकी स्मृति में संलग्न दिखाई गई है। प्रियतम से मिलने की चिंता मे विचार करती है—

"किहि विधि मिलै प्रान अधिकारी
फिरि देखहुँ वह मूरति मैंना
सुधा सरोवर सीचौं नैना॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रीय ढंग पर कवि ने एक एक अवस्थाओ का नाम गिना कर विरह वर्णन किया है, जिसके कारण इस विरह वर्णन मे कोई सरसता नहीं रह जाती वरन् काव्य शास्त्र का वह एक अंग सा बन जाता है। किन्तु सर्वत्र हमे इसी शैली का अनुसरण नहीं मिलता। सूरसेन कल्पलता और कहीं कहीं पर रम्भा के वियोग वर्णन में हमे सरसता तथा हृदय पक्ष के भी दर्शन होते हैं। कल्पलता को सातो छोड़ कर कुमार चल दिया था। प्रातःकाल

कुमार को अपने पास न पाकर कल्पलता अवाक सी रह गई। हमारे हृदय को जब अकस्मात गहरी चोट पहुँचती है, तब हम किंकर्तव्य विमूढ़ होकर चित्रवत् हो जाते हैं। कल्पलता की इसी मानसिक दशा का वर्णन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है।

"कल्पलता जिय जानि कै प्रान नाथ पति गौन।
चित्र लिखी पुतरी मनौ अचिकि रही मुख मौन॥"

कल्पलता के इस 'मौन' में अनन्त हाहाकार और असीम वेदना छिपी है। केवल एक ही शब्द के द्वारा कवि ने कल्पलता की वेदना को महान और सजीव बना दिया है। इसी प्रकार प्रिय के चले जाने पर एक एक बात की स्मृति आती है और उसके साथ बीते हुए क्षणों के क्रिया व्यापार हृदय में उथल-पुथल मचाया करते हैं। इसीलिये सन्ध्या होते ही उसे याद आती है—

"रजनी भई चरन लिपटाती
सेवा करत संग लगि जाती।
जाती मैं न कपट की प्रीती
भई पतंग दीपक की रीती॥"

इस मनोदशा में कूट का अथवा ऊहात्मकता का अंश मात्र भी नहीं मिल सकता। प्रियतम की याद जहाँ दुखदाई होती है वहां विरह के क्षण को काटने के लिये उससे सरल साधन भी कोई उपलब्ध नहीं हो सकता। दूसरी बड़े महत्व की बात कवि ने दीपक और पतंग के प्रेम की समानता देखकर उत्पन्न कर दी है, जहाँ विरहिणी को रात्रि में दीपक पर मंडरा मंडरा कर जलने वाले पतंगों को देखकर अपनी दशा की याद आती है, वहां प्रियतम की कठोरता और छल भरे स्नेह की अनुभूति भी होती है। जिस प्रकार दीपक पतंग को अपने पास आने से नहीं रोकता और पतंग उससे लिपट कर क्षार हो जाता है, उसी प्रकार रंभा ने भी रात्रि में उसकी सेवा कर अपने जीवन को क्षार स्वरूप कर लिया। इस वर्णन में कल्पलता के हृदय की गहरी वेदना मुखर हो उठी है।

प्रियतम कितना ही निष्ठुर क्यों न हो किन्तु वह प्रिय पात्र सदैव बना रहता है, उसके दोष दोष नहीं दिखाई पड़ते। इस विरह से सौत का दुख कहीं श्रेयस्कर जान पड़ता है, इसी लिए विलप कर कल्पलता कह उठती है—

"जौ तुहि और नारि मन भाई। हमही क्यों न लियो संग लाई॥
जब ताई जीवन जग जीजै। निरमोही सों मोह न कीजै॥"

प्रेमी के लिये प्रियतम के अतिरिक्त संसार की कोई वस्तु आकर्षक नहीं रह जाती, वह तो प्रेम की पीर और प्रियतम की स्मृति में सब कुछ भूल जाता है।

संसार की प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व ही निर्मूल हो जाता है, यही कारण है कि सूरसेन को कुछ भी नहीं भाता था ।

"न लोभं न माया न चिंता न चैनं न सुद्धं न बुद्धं न चिया न बैनं ॥
न चालं न ख्यालं न खानं न पानं न चैतं न हेतं न अस्नानं न दानं ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि हमें पुहुकर के वियोग में कलापक्ष और हृदयपक्ष दोनों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है ।

भाषा

रसरतन की भाषा चलती हुई अवधी है किन्तु कहीं कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों के पुट से वह बहुत परिमार्जित हो गई है । जैसे—

"सगुण रूप निर्गुण निरूप बहु गुन विस्तारन ।
अविनासी अवगत अनादि अघ अटक निवारन ।
घट-घट प्रगट प्रसिद्ध गुप्त निरलेख निरञ्जन ।।"

सेना के संचालन एवं युद्ध के वर्णन में कवि ने भाषा में डिंगल का पुट देकर उसे ओजस्विनी बना दिया है ।

"पय पताल उच्छलिय रैन अम्बर ह्वै हच्चिय ।
दिग-दिग्गज थरहरिय दिव दिनकर रथ खिच्चिय ।
फन-फनिन्द फरहरिय सप्त सहर जल मुक्खिय ।
दंत पंति गज पूरि चूरि पव्वय पिसांन किय ।।"

अनुस्वारान्त भाषा लिखने की परिपाटी को भी कवि ने अपनाया है ।

"नमा देवां दिवानाथ सूरं । महां तेज सोमं तिहूँ लोक रूपं ॥
उदै जासु दीसं प्रदीसं प्रकासं । हियाँ कोक सोकं तमं जासु नासं ।।"

छन्द

इस काव्य का प्रणयन दोहा और चौपाई की शैली में हुआ है किन्तु इस छन्द के अतिरिक्त छप्पय, सोमकांति, घटक सारदूल, त्रोटक, पद्धरि, भुजङ्गी, सोरठा, कवित्त, मोतीदाम, मालती, भुजङ्ग प्रयात, प्रवनिका, दुमिला और सवैया छन्दों का प्रयोग भी बहुतायत से किया गया है ।

अलङ्कार

इस कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कार ही अधिक प्रयुक्त किए हैं ।

लोकपक्ष

जहाँ हमें इस काव्य में संयोग वियोग की नाना दशाओं का चित्रण मिलता है, वहीं हमे गार्हस्थिक जीवन को सुन्दर और सफल बनाने की शिक्षा प्राप्त होती है ।

नारी गृह लक्ष्मी है, उसी के सद्व्यवहार और कार्यकुशलता से दाम्पत्य जीवन सुखी हो सकता है, इसीलिए रम्भावती को स्वयंवर के पूर्व जो सीख दी गई है वह आज भी हमारे लिये उतनी ही उपयोगी है, जितनी की कवि के समय में या उसके पूर्व रही होगी।

कुलवधू को बड़ों का आदर और कुलदेवता की पूजा करनी चाहिए इससे उसका सौंदर्य और भी निखर उठता है। कुलवधू के लिये जहाँ बड़ों के सामने लज्जा की आवश्यकता है, वहीं पति के सामने उसे वशीभूत करने के लिये लज्जा का परिहार उतना ही आवश्यक है। यही नहीं, उसे सदैव पति के लिये आकर्षक बना रहना चाहिए, इसलिये पति के पास जाने के पूर्व, पत्नी को सर्वश्रृंगारों से अलंकृत और इत्रादि लगाकर सुगंधित होकर जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जहाँ स्त्री को उपर्युक्त बातों का ज्ञान आवश्यक है वहीं उसे रतिक्रीडा करने की विधि का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, इसके बिना वह अपने पति को वशीभूत नहीं कर सकती।

इतना होते हुए भी अगर वह पढ़ीलिखी, मृदु भाषी एवं गुणज्ञ नहीं है तो वह अपने पति को वश में नहीं कर सकती। इसलिये नारी को संस्कृत प्राकृत भाषाओं के ज्ञान के साथ साथ उसे छन्द, अलंकार एवं काव्य शास्त्र के अन्य अंगों का भी ज्ञान आवश्यक है। स्त्री के ये सारे गुण उस समय तक बेकार हैं जब तक वह मृदुभाषी न हो। जिह्वा ही उसके पास एक ऐसी वस्तु है जिससे वह दूसरों को अपने वश में कर सकती है। अस्तु एक सफल गृहिणी

---

१. प्रथम सिखावहि सुर गुर पूजा। सील सुभाव सिखावहिं दूजा॥

× × ×

दिठि कर लाज सिखावहि नारी। सुरति समय परिहरिये प्यारी॥

× × ×

प्रतिदिन मज्जन करि सुकुमारी। अधिक चोय उपजहि रुचिकारी॥
तन सोभित सिंगार बनावहु। विधि विधि अंग सुगंध लगावहु॥

× × ×

कोक कला जनु पुन्य कला। कहै बचन मोहै सुभकारी॥
दच्छिन अंग पुरिष कै बाँदै। बायाँ अंग तिया कै चढ़ै॥

(रस रतन)

× × ×

के लिये सुन्दर, सुशील, विदुषी, रति-रहस्यज्ञ एवं पतिपरायणा होना परम आवश्यक है।

---

१. काव्य संस्कृत प्राकृत जानो। अरु बहु रूपक छंद बखानो॥
सीपति नागर चतुर सुजाना। जो कछु भेद संगीत बखाना॥

× × ×

गुन मंजरि कहै सुनि प्यारी। गुन गाइक गुन जान निहारी॥
गुरु ते गुरु व पुरिस अरु नारी। बिनु गुन ससियों बिनु अधिकारी॥

× × ×

मन वच क्रम कीजै पति सेवा। पति ते और नियो नहिं देवा॥

× × ×

वस्य करन रसना रस दागी। और सकल वस कहाँ कहानी॥
मधुर वचन मधुरे सु बोलहु। मृदु विहँसत घूँघट पट खोलहु॥

—रसरतन

छिताई वार्ता

—नारायणदास कृत
रचनाकाल (अज्ञात)
लिपिकाल सं० १६४७

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

देवगिरि में राजा रामदेव यादव बड़ा प्रतापी नरेश हुआ। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन ने उसे लूटने की इच्छा से अपने सेनापति निसुरत खां को दक्षिण भेजा। निसुरत खां दल-बल सहित बीच के देशों को लूटता हुआ देवगिरि पहुँचा। आक्रमण से त्रस्त हो राजा रामदेव से प्रजा ने रक्षा की प्रार्थना की। राजा ने तुरन्त मन्त्रियों को बुला कर इस आसन्न संकट से बचने का उपाय पूछा। मन्त्रियों ने बताया कि या तो वह सुल्तान को कन्या देकर सम्बन्ध स्थापित कर लें या जाकर स्वयं उसकी सेवा में उपस्थित हों। राजा रामदेव निसुरत खां के अधीनस्थ राजाओं से मिला और मार्ग में बिना रुके सीधे दिल्ली पहुँचा। वहाँ उसने सुल्तान के भाई उलूग खां की मध्यस्थता से एक लाख (टंका) भेंट कर उससे मित्रता जोड़ ली। अलाउद्दीन ने भी बहुत सत्कार किया और उसे 'गयर' महल में बहुत सम्मान से टिकाया।

राजा तीन वर्ष तक दिल्ली में रहा। उधर देवगिरि में उसकी कन्या ब्याहने योग्य हो गई। रानी ने मन्त्रियों से परामर्श कर दिल्ली में रामदेव के पास सन्देश

१—इस रचना की एक प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के पास और दूसरी इलाहाबाद म्यूजियम में सुरक्षित है। नाहटा जी की प्रति आरम्भ में खण्डित है और म्यूजियम की बीच में, दोनों प्रतियों की कहानी एक ही है। नाम के सम्बन्ध में दोनों प्रतियों में कुछ अन्तर है। जैसे एक का शीर्षक है छिताई वार्ता तो दूसरे में छिताई कथा। ऐसे ही सुरसी और सौरसी दो नाम मिलते हैं। दोनों प्रतियों के आधार पर उक्त कथावस्तु प्रस्तुत की गई है।

भेजा। सन्देश पाकर राजा ने चलने की इच्छा प्रकट की। सुलतान से आज्ञा लेना आवश्यक था। लोगों ने राजा को मना किया कि अलाउद्दीन से कन्या के विवाह की बात मत कहना, पर रामदेव ने सत्यरक्षा की दृष्टि से विश्वास करके अलाउद्दीन से सारी बातें कह दीं। बादशाह ने मनोनुकूल आज्ञा दे दी तथा उपहार स्वरूप एक अच्छा चित्रकार भी उसके साथ कर दिया।

राजा को लौटा देख देवगिरि की प्रजा फूली न समाई। आते ही राजा ने चित्रकार को महल में चित्रों के निर्माण के लिये आज्ञा दे दी। महल देखकर चित्रकार ने उसे अनुपयुक्त ठहराया। अतः एक नवीन प्रासाद का निर्माण किया गया। चित्रकार ने इसमें चित्र अंकित करने प्रारम्भ किए। सयोग से एक दिन राजा की कन्या छिताई उसकी चित्रकारी देखने आई। चित्रशाला में प्रवेश करते ही उसका रूप देखकर चित्रकार अवाक हो गया। वैसा अलौकिक रूप उसने कभी न देखा था। उसने चुपचाप छिताई की छवि अंकित कर ली और अपने पास रख छोड़ी।

इसी बीच राजा ने योग्य वर ढूंढने के लिए ब्राह्मण को भेजा। उस ब्राह्मण ने ढोल समुदगढ़ (द्वार समुद्र) के राजा भगवान नारायण के पुत्र सुरसी को योग्य वर समझा और सम्बन्ध स्थिर कर लिया। विवाह धूमधाम से हुआ। ढोल समुद में छिताई और सौरसी आनन्द रहने लगे।

एक बार राजा ने दोनों को देवगिरि बुलाया। यहा आने पर सुरसी को मृगया का चस्का लग गया। कभी कभी उसके साथ छिताई भी जाती थी। रामदेव ने मृगया की बुराई समझा सुरसी को मना किया किन्तु वह न माना। एक दिन मृग के पीछे दौड़ते दौड़ते वह राजा भर्तृहरि की तपोभूमि में जा पहुँचा। कोलाहल से भर्तृहरि की समाधि टूटी। उन्होंने अहेरी को हिंसा कार्य से विरत होने का उपदेश दिया। सुरसी उन्हें उल्टे मारने चला। भर्तृहरि ने तपोबल से मृग की रक्षा कर ली और सुरसी को स्त्री को दूसरे के हाथ पड़ने का शाप दिया। शाप से सुरसी इतना व्याकुल हुआ कि मार्ग ही भूल गया। किसी प्रकार दूसरे दिन वह घर पहुँचा।

चित्रकार अपना कार्य समाप्त कर चुका था। देवगिरि आए उसे चार वर्ष हो गए थे। देवगिरि की शान-शौकत से वह भली भांति परिचित था। छिताई और सुरसी का विलास देखकर उसे ईर्ष्या हो रही थी। वह दिल्ली जाना चाहता था। उसने राजा से आज्ञा मांग ली और देवगिरि से अलाउद्दीन के लिये बहुत सी भेंट की वस्तुएं लेकर दिल्ली पहुँचा।

दिल्ली पहुँचकर उसने समस्त वस्तुएँ राजा को भेंट कीं। देवगिरि का भीमसेनी कपूर राजा को बहुत पसन्द आया। बादशाह द्वारा कपूर की प्रशंसा सुनकर देवगिरि की दो दासियां, जो उसके यहां पहले से थीं, हँसने लगीं। राजा ने इसका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि रामदेव के उपयोग में आने वाले कपूर के सामने यह तुच्छातितुच्छ है। चित्रकार ने भी इसका समर्थन किया। इसपर अलाउद्दीन को बड़ा विस्मय हुआ। सभा-विसर्जन के बाद राजा चित्रकार को लेकर 'गहर महल' गया, जहां चित्रकार ने देवगिरि का सारा हाल बताया तथा छिताई के स्वरूप की भूरि भूरि प्रशंसा की। बादशाह का मन डोल गया। चित्रकार ने छिताई का चित्र भी बादशाह को दिया, जिसने आग में घी का काम किया। छिताई को देखने की उत्कट लालसा बादशाह को सताने लगी और उसने तुरन्त सरदारों को बुलाकर सैन्य संघटन की आज्ञा दी। 'लल्लू खां' के हाथ शासन-प्रबन्ध देकर वह छ महीने में देवगिरि पहुँचा और समस्त देश को ध्वस्त कर डाला।

राजा ने मन्त्री पीपा को भेजकर आक्रमण का पूरा पूरा विवरण प्राप्त किया। दक्षिणी सेना ने डटकर मुसलमानों का मुकाबला किया किन्तु मुसलमान बढ़ते ही आए और उन्होंने किले के चारों ओर घेरा डाल दिया। छ महीने तक घेरे की स्थिति बनी रही। अन्त में रामदेव ने मन्त्रियों से परामर्श कर निश्चय किया कि सुरसी के साथ छिताई सुरक्षितरूप में ढोला समुद भेज दी जाए। सुरसी इसपर तैयार न हुआ अन्त में यह तय पाया कि सुरसी अकेले ढोला समुद जाकर सैन्य संघटन कर देवगिरि लौट आए। सुरसी ने इसे स्वीकार कर लिया।

सुरसी दरबार से विदा होकर रनिवास में छिताई से मिलने गया। छिताई पति का प्रवास सुन बहुत दुखी हुई। सुरसी ने उसे बहुत समझाया-बुझाया और चिह्न स्वरूप कंठमाला और वस्त्र दिए। वह पति के दिए वस्त्रालंकार लिए रात्रि में कुश की चटाई पर ही सोती और पास में कृपाण भी रखती थी। दिन में शिव का पूजन करती। इस प्रकार सात्विक रूप से वह काल-यापन करने लगी।

इधर सुरसी के चले जाने पर मुसलमानी सेना में विशेष दौड़धूप होने लगी। अलाउद्दीन को सन्देह हुआ कि छिताई सुरसी के साथ रणथम्भौर भेज दी गई है। राघवचेतन तुरन्त बुलवाया गया। अलाउद्दीन ने उसे बहुत डांटा कि चित्तौड़ की पद्मिनी वाली घटना यहाँ न होने पाए। न तो रामदेव मुसलमान होता है और न अपनी पुत्री ही मुझे देता है। यदि किसी भाँति वह निकल गई तो सब बिगड़ जायगा। जाओ, पता लगाओ कि छिताई गढ़ में है या नहीं। यदि चली

गई है तो तुरन्त समुद्र पार कर उसका पीछा करो। यदि गढ़ में हो तो किले को ढहा दो।

राघवचेतन बड़े संकट में पड़ा। चिंता के मारे उसे रात भर नींद नहीं आई। रात भर वह हंसारूढ़ पद्मावती का ध्यान करता और मंत्र जपता रहा। एकाएक झपकी लगने पर उसे देवी के दर्शन हुए और उन्होंने गढ़ का भेद लगाने का उपाय बता दिया। प्रातःकाल राघव प्रसन्नवदन अलाउद्दीन के पास गया और किले में दूत भेजने का विचार सामने रखा। सुल्तान उसकी सूझ पर बड़ा प्रसन्न हुआ। छिताई का पता लगाने के लिये धनत्री नाइन और मनमोहिनी मालिन बुलाई गईं। पहले इन्हीं दोनों को भेजा गया, किन्तु दुर्ग अभेद्य होने के कारण वे न जा सकीं। इसपर राघवचेतन संधिवार्ता के लिए दूत नियुक्त किया गया और उसी के साथ इन दोनों स्त्रियों के प्रवेश की भी योजना बनी। सुल्तान भी देवगिरि का किला देखने के लिए मचल गया। राघवचेतन के लाख मना करने पर भी उसने न माना और काला वस्त्र धारण कर राघवचेतन की पालकी के आगे वह पैदल ही चला।

किले में पहुँच कर राघवचेतन ने दूतियों को छिताई का पता लगाने के लिए भेज दिया और वह स्वयं राजा के पास गया। अलाउद्दीन किले की सैर करने चला गया। उसने बड़े-बड़े घुड़साल देखे और बहुत सी उत्तमोत्तम वस्तुओं से अपने नेत्र तृप्त किए। घूमते-घूमत वह राम सरोवर पर पहुँचा। इस सरोवर के दूसरे तट पर शिव और विष्णु के विशाल मन्दिर थे, जहाँ छिताई देवपूजन के निमित्त सखियों के साथ नित्य आती थी। संयोग से छिताई वहीं थीं। पेड़ों पर फलों और पक्षियों की शोभा देखते हुए बादशाह को शिकार की सनक सवार हुई। कमर से गुलेल निकाल कर उसने दो तीन पक्षी मार दिए। आवाज सुन कर छिताई के भी कान खड़े हुए और उसने अपनी सखी मैनरेह को भेद लेने भेजा और स्वयं मन्दिर में चली गई।

मैनरेह अलक्षित रूप से सुल्तान के पीछे पहुँची और उसकी गतिविधि देखने लगी। एक बार सुलतान ने पीछे हाथ करके अभ्यासवश खवास से गोली माँगी। मैनरेह ने क्षण भर में सारी बातें ताड़ ली वह प्रत्यक्ष होकर उसे डाटने लगी और वास्तविक परिचय पूछा। बादशाह ने डर कर सारी बातें साफ-साफ बता दीं और वहाँ से चले जाने के विचार को लिखित रूप में दे दिया। किले से छूटते ही वह कलारी हाट गया, जहां उसने राघवचेतन से मिलने का वादा किया था।

राजसभा में राघवचेतन ने राजा से सारी सपत्ति सुल्तान को सौंपने, गढ़

त्यागने और छिताई को समर्पित करने की बात कही। राजा इस पर बहुत बिगड़ा किन्तु 'बैरीसाल' के कहने पर दूत को अवध्य समझ छोड़ दिया। राघव चेतन *किसी प्रकार जान बचाकर किले के बाहर पहुँचा।*

अलाउद्दीन के साथ जो दूतियाँ किले में आई थीं वे सन्यासिनी के वेश में सिंहद्वार पर पहुँची और युक्ति से छिताई के पास तक चली गईं। उनको सन्यासिनी समझकर छिताई ने यथोचित सत्कार किया। बहुत सी बातों के के बाद सन्यासिनियों ने छिताई का म्लान मुख और कृशगात देखकर यौवन का पूर्ण लाभ उठाने की सलाह दी। छिताई को सत रूप में रहस्य का भान होने लगा। उन दोनों ने इसे ताड़ लिया और बातें बनाकर विश्वास बनाए रखा। छिताई के साथ जाकर उन्होंने वह स्थान भी देख लिया जहां वह नित्य-प्रति जाया करती थी। इस प्रकार किले का सारा भेद लेकर वह भी नीचे उतर गईं।

दूसरे दिन दक्षिण की ओर शिवजी के स्थान पर सुल्तान कुछ सैनिकों को लेकर आया जहां छिताई पूजन के हेतु जाती थी और उसे पकड़ ले गया। छिताई के पकड़े जाने की खबर चारों ओर फैली और उधर सुल्तान दिल्ली की ओर लौटा। दिल्ली में उसे समझाने बुझाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु निष्फल। अन्त में सुलतान ने उसकी ओर से अपनी पापदृष्टि हटा ली और उसे राघवचेतन की निगरानी में रख दिया। उसके दैनिक जीवन के व्यय के लिए पचास हजार टंका बांध दिया और नृत्य सिखाने के लिए पचास पातुरें भी रख दीं।

छिताई के पकड़े जाने का समाचार पाकर सुरसी बहुत व्यथित हुआ। वह सब कुछ छोड़ योगी हो गया। चन्द्रगिरि जाकर चन्द्रनाथ से दीक्षा ली और योगसाधना की। फिर वीणा ले राजा गोपीचन्द की भांति विरक्त होकर घूमने लगा। घूमते-घूमते उसकी भेंट जटाशंकर साधुओं से हुई जिनसे छिताई की तात्कालिक स्थिति का पता चला। उसकी खोज में चलते-चलते वह जमुना के तट पर स्थित चन्दवार नगर पहुँचा। उसकी वीणा से पशु-पक्षी भी मोहित हो जाते थे। स्त्रियाँ काम विह्वला हो जाती थीं।

वह वहाँ से दिल्ली की ओर बढ़ा। दिल्ली में उसकी वीणा की विशेष ख्याति फैली।

छिताई को पति के वीणावादन की विशेषता का ज्ञान था ही, उसने "सरसी" का पता लगवाने के लिए ही दिल्ली के प्रसिद्ध संगीतज्ञ जनगोपाल के यहाँ अपनी वीणा रखवा दी।

सरसी जब जनगोपाल के घर की ओर से निकला तो लोगों ने उससे छिताई की वीणा बजाने को कहा। उस वीणा के छूते ही उसे छिताई के मिलन का अनुभव होने लगा। उसने वीणा मे ऐसा मधुर स्वर निकाला कि सब मोहित हो गए। छिताई की एक दासी ने सारा हाल स्वामिनी से जा बताया। इसके उपरान्त सरसी की राघवचेतन से मुलाकात हुई। राघव योगी सरसी को लेकर दरबार मे आया। उसके चमत्कार से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने रनिवास मे भी सरसी को अपना कमाल दिखाने के लिए भेजा।

छिताई भी वहाँ मौजूद थी। उसके नेत्रो से अश्रुधार बहने लगी जो बादशाह के कन्धे पर गिरी। सुल्तान ने छान-बीन कर सारा हाल जान लिया और अन्त में सरसी को छिताई सौंप दी।

दिल्ली से चलकर सरसी अपने गुरु के चरण स्पर्श किए तदुपरान्त देवगिरि गया। पुत्री और जामता को पाकर राजा रामदेव बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ दिनों तक देवगिरि मे रहने के उपरान्त सरसी ढाला समुद सपत्नी लौटा और आनन्द से राज्य करने लगा।

कथा का ऐतिहासिक आधार

छिताईवार्ता प्रेमकाव्य होते हुए भी ऐतिहासिक महत्व से पूर्ण है। इसकी सारी प्रमुख घटनाएँ और व्यक्ति इतिहास के विवरण से मिलते हैं।

राघवचेतन जो पद्मावत मे भी मिलता है, ऐतिहासिक व्यक्ति जान पड़ता है। कुछ इतिहासकारों ने इसे मलिक नायक काफूर हजार दीनारी से और कुछ गुजरात के रायकर्ण के मन्त्री माधव से सम्बन्धित किया है। "किंकेड़" और "पारसनीस" के अनुसार, कर्णदेव ने जब माधव की पत्नी पर मोहित होकर, उसे अधिकार में कर लिया तब माधव ने अलाउद्दीन को गुजरात पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया था। जायसी का 'राघवचेतन' द्रव्य लोभ से अलाउद्दीन को प्रेरित करता है। हो सकता है कि 'माधव' ही नाम बदल कर राघव बन बैठा हो।

इतिहास में रामदेव और निसुरत खाँ के नाम भी मिलते हैं तथा अलाउद्दीन की देवगिरि पर चढ़ाई की घटना भी वर्णित है। अलाउद्दीन ने देवगिरि पर दो बार चढ़ाई की थी। यह कथा अनुमानतः अलाउद्दीन की दूसरी चढ़ाई से सम्बन्धित है।

इतिहास को रामदेव की कन्या का ज्ञान नहीं। कथा ने उसे छिताई के नाम से पुकारा है। यही नाम पद्मावत, वीरसिंहदेव चरित आदि में भी है। जान कवि ने इसे छीता के नाम से पुकारा है। इतिहास मे छिताई से मिलते-जुलते

'छिताई' नाम के नगर का उल्लेख है। रशीदुद्दीन जामिउत् तवारीख में लिखता है कि 'छिताई' होकर मावार से (इसकी राजधानी द्वार समुद है) जो सड़क आई है वह बाबल तक जाती है।

कथा में वर्णित नायक गोपाल¹ भी ऐतिहासिक व्यक्ति है।

इस प्रकार वार्ता की सारी घटना अगर ऐतिहासिक नहीं है तो भी चरित्र और मूल घटनाएँ ऐतिहासिक अवश्य ठहरती हैं²।

जायसी के पद्मावत की तरह प्रस्तुत रचना भी इतिहास और कल्पना के योग से निर्मित हुई है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इसके पात्र और घटनाएँ ऐतिहासिक हैं किन्तु कथा में आश्चर्य तत्व और कौतूहल का समावेश करने के लिये कवि ने काल्पनिक घटनाओं और ऐतिहासिक घटनाओं को सूत्रबद्ध कर कहानी के सौष्ठव को बढ़ा दिया है। उदाहरण के लिए भर्तृहरि के शाप की घटना कवि की स्वतन्त्र उद्भावना है। ऐसे ही गोपाल के यहाँ वीणा स्वराकर अपने पति के पता लगाने की बात भी कल्पित जान पड़ती है।

. रामदेव के यहाँ प्रयुक्त होने वाले 'कापूर' की चर्चा के द्वारा छिताई के सौन्दर्य और रामदेव के ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा की बात को कवि ने ऐसे सुन्दर ढंग से गुंफित किया है कि कथावस्तु में नाटकीय तत्व के समावेश के साथ-साथ अलाउद्दीन का स्वभावचित्रण भी हो जाता है। कामी और लोलुप अलाउद्दीन को अन्त में सहृदय और निष्काम अङ्कित कर कवि ने प्रस्तुत रचना में स्वभाव चित्रण का भी समावेश किया है। साथ ही यह रचना मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं में सद्भावना जगाने और यह अंकित करने का प्रयत्न करती है कि अलाउद्दीन जैसे 'कट्टर और क्रूर' मुसलमान के हृदय में भी जब कोमलता पाई जा सकती है तब हम अन्य मुसलमानों को भी प्रेम से अपना बना सकते हैं। इस प्रकार यह रचना सांस्कृतिक सामञ्जस्य के प्रयत्नों का भी प्रतीक है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

छिताई के नख-शिख वर्णन में कवि ने कवि-समय-सिद्ध परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का ही संयोजन किया है। जैसे बालों के लिये भौंरों की उपमा, मुख के लिये चन्द्रमा से तुलना आदि।

१. यह अलाउद्दीन के समय में बहुत बड़ा गवैया हो गया है।

२. विशेष जानकारी के लिए देखिए (नागरी प्रचारिणी पत्रिका) में प्रकाशित बटे कृष्ण जी का लेख—सं० २००३ व० ५१ पृ. १३७ से १४७ तक।

"कुटिल केस सिर सोहइ वाल, कच कंवरि जनि मधुकर माल।
मोती मांग मदन की वाट, राज नीक सम तिलक लिलाट।
सरद सोम ससि वदन प्रकास, मदन चाप सम भुहइ तासु।
मृग सावक सोहइ लोल, उपइ कंचन तिसो कपोल।
धन धन तेरी ये अंखि, भरही जाके जिउ की साहि।
वूकी हेम उन अमृत सांन, काक वकरी ने कीन वानि।"

वयःसन्धि का वर्णन भी इस काव्य में प्राप्त होता है किन्तु इस वर्णन में भी उरोजों आदि के लिए कवि ने शंभु और श्रीफल आदि से तथा नारी के अन्य अंगों की उपमा परम्परागत ही दी है जैसे—

"कुच कठोर जीव कर वड़े, जानहुँ नृप संधि हरन जै चढे॥
सुवन सुढार सुकंचन खंभ, श्रीफल सम सोहक सुथंभ॥
रहेत कुच कंचकी उचाइ, मनहु गूडरीदई तनाइ॥
गहिरी नाभि वखानइ कुन, मानहु काम सरोवर सुवन॥"

संयोग शृंगार

संयोग पक्ष में 'भोग-विलास' और 'केलि' का वर्णन मिलता है। प्रथम समागम के समय कवि ने सात्विक भाव और 'निर्लिम्भित हाव' का संयोजन किया है।

"छोरत कंचुकी लजाइ। फूकइ द्रिष्ट दिया बुझाइ॥
भौ विमान मुखि कंपइ देह। चल्यौ प्रसेद प्रथम सितनेह॥
अधर प्रकार कुच गहन न देइ। छुवन न अङ्ग छिताई देइ॥
घूंघट वदन तर हंडी कीउ। दोउ हाथ लगावत हीउ॥
कठिन गांठि दढ़ विधना दइ। छोरत जवहि सुरंसी लइ॥
नाना नाभि नारि उचरइ। तव चित्त चउप चत्रगनी करइ॥
संकइ सकुचइ वीरी न खाइ। रही पीठ दे हाथ छुड़ाइ॥"

उपर्युक्त हावों के वर्णन के उपरान्त कवि ने प्रेमाख्यानों में मिलने वाले संयोग शृंगार का परम्परागत वर्णन किया है जो अनावृत होते हुए भी कहीं-कहीं अमर्यादित भी हो गया है।

"चउरासी आसन की खांनि। दुलइ चतुर चतुर मनि गयान॥
जहाँ वार तिथि अङ्ग अनङ्ग। छुवत सुप्रयइ छिताइ अङ्ग॥
आसन सव नौ कमल विध वंध। विपरीत रति न चोज अति संध॥
कोकिल वयनि कोक गुन गनी। कछु वुधि सखिन पइ सुनी॥
दोउ चतुर सुरत रस रंग। वहुत उपजावइ अनंग॥"

वियोग पक्ष

जहां तक विप्रलंभ शृंगार का सम्बन्ध है वह नहीं के बराबर मिलता है। 'सुरसी' के बिछोह के उपरान्त भी विरहणी छिताई की नाना मानसिक अवस्थाओं का वर्णन न करके कवि कहानी के सूत्र को लेकर आगे बढ़ जाता है। इस प्रकार इस काव्य में वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक अंश अधिक मिलते हैं। मृगया में 'सुरसी' के एक दिन के लिए रास्ता भूल जाने के समय छिताई की विह्वलता और विरह जनित दुख की एक झांकी मिलती अवश्य है—

"भू कीन्हीं सेज भोग को साज। रह्यौ नाह बाहरि निसि आज॥
उझकि झरोखे लेहि उसासु। विख चन्दन चन्दन को आसु॥"

उपर्युक्त अंश में अपने पति के लिये व्याकुल एक पति-परायणा नारी का चित्रण और क्षणिक बिछोह से उत्पन्न विरह व्यथा का चित्रण बड़ा सुन्दर और हृदयग्राही बन पड़ा है। खेद की बात है कि कवि ने विप्रलम्भ शृंगार वर्णन की इस कुशलता का प्रयोग वियोग के दीर्घकाल के बीच नहीं किया है। इसके स्थान पर उसने 'सुरसी' के चले जाने के उपरान्त उसे एक धर्मपरायणा सती साध्वी के रूप में अंकित किया है। उसके ऐसे चित्रण काव्य में अगर सौष्ठव नहीं लाते तो तत्कालीन स्त्रियों की सामाजिक अवस्था, कर्तव्यनिष्ठा और पतिपरायणता के दृश्य अवश्य उपस्थित करते हैं। यही कारण है कि विप्रलम्भ शृंगार की न्यूनता होते हुए भी यह काव्य ऐसे स्थलों पर सरस बना रहता है और हृदय को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। कौन ऐसा है जो छिताई के प्रेमयोगिनी रूप पर मुग्ध न हो जायगा। छिताई की एक ऐसी पवित्र झांकी देखने योग्य है—

"कंठ माल जपमाली करी। पिउ पिउ जपत रहइ सुंदरी॥
सचल सीस सीलइ जलन्हाई। दिव घसि सिव की पूजा जाई॥
तुंअन पान रांनी परहर्यौ। कुस साथरौ छिताई कर्यौ॥"

छंद

प्रस्तुत रचना दोहा चौपाई के अतिरिक्त दूहा, दूहरा, वस्तु आदि छंदों में भी प्रणीत है।

दूहा—चेतन होइ विचारंत, किउ आंतु गउ सुधि।
किं सुरखुरु सुरितांन सु, कि हीय असुधि॥

दूहरा—आसा वैरी न कीजिय, ठाकुर न कीज मीन।
खिन तातौ खिन सीयरौ, खिन वयर खिन मीन॥

वस्तु—वहइ जोगी सुनहि रे मूढ, तोहि बुधि विधना हरी।
करहि पापु बन जीव मरइ, भलौ बुरौ जानंइ नहीं॥

जीउ अंदेस चित्त मांहि विचारूं
इउ मोपहि सुनि गयांनु चउरासी लख जीया जोनि ।।
तेगिन आप समांन ।।

अलंकार

हम ऊपर कह आये हैं कि नखशिख वर्णन आदि में कवि ने कवि-समय-सिद्ध उपमानों, उत्प्रेक्षाओं आदि का ही प्रयोग किया है, इसलिए इस रचना में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार ही प्रधानतः मिलते हैं।

भाषा

इसकी भाषा राजस्थानी है, पर कहीं-कहीं डिंगल का पुट भी मिलता है। यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि नाहटा जी से प्राप्त प्रतिलिपि उतनी ही अशुद्ध है जितनी इलाहाबाद म्युजियम की। शब्दों का तोड़-मरोड़ भी कुछ ऐसा है कि वास्तविक भाषा संबंधी निष्कर्ष देना दुस्तर कार्य है।

लोकपक्ष

छिताई वार्ता में लोकपक्ष शृङ्गार से अधिक मुखर है। भारत में कन्या का विवाह करना चिरकाल से पुण्य समझा जाता है किन्तु जिसके घर में कुंआरी कन्या ब्याहने योग्य हो वह चाहे राजा हो या रंक चिन्ता के कारण सो नहीं सकता, जब तक कन्या के उपयुक्त वर न मिल जाय—

"घर मांहि कन्या व्याहन जोग। अरु भ्रम करइ मीड़ीआ लोग।।
जाकै कन्या कुआरी होइ। निस भरि नींद कि सुई सोई।।
कन्या रिन व्यापै पीर। तिनकै चिन्ता होई सरीर।।"

किन्तु यह विवाह सम्बन्ध अपने से बराबर के स्तर वाले के साथ न करना चाहिए वरन् जिस घर में सज्जन बसते हों और पुरखों का नाम हो वहाँ करना चाहिए।

"पुरखा गति सजनाइ जिहां। तिनचइ कन्या दीजइ तिहां।।
व्याह वैर मित्री या प्रमान। एति न चाहीइ आप समान।।"

विवाह के समय में गाई जाने वाली गाली की प्रथा भी उस समय पाई जाती है।

"परदानी जरनगर के सोजउ, दीजइ गारि गारि के चौज।।
कोकिल वचन रतन जे नारि। सुधा समानि सुनावइ गारि।।"

इसके अतिरिक्त साधारण लौकिक व्यवहार से सम्बन्धित दो तीन सूक्तियाँ बड़े काम की मिलती हैं, जैसे प्रत्येक चीज की अधिकता आगे चल कर सदैव दुखदाई बन जाती है।

"अति सनेह थी होइ विडंग । अधिक भोग थी बाढइ रोग ॥
अति हांसी थे होइ विगारु । जि कुअर पंडव विग्रहार ॥
अति सरूप सीता को हरण । अधिक विरुद्ध रावण को मरण ॥"

उस युग की सबसे बड़ी एक प्रथा का इस काव्य में पता चलता है और वह है मकानों को चित्र से सजाने की प्रथा । इसी के कारण ही 'वार्ता' की सारी घटनाएँ हुईं । इसमें सबसे विशेष बात है घर की चित्रसारी में अंकित किए जाने वाले भोगासनों की प्रथा । छिताई जब महल को देखने आई तब उसकी सखियों ने उसे ऐसे चित्रों को दिखाया । अगर ऐसी प्रथा उस समय प्रचलित न होती तो कवि कभी भी इसका वर्णन न करता ।

"देखी कोक कला संति । चउरासी आसन की भांति ॥
आसन चित्र विविध प्रकार । सुभ विपरीत रंग रस सार ॥
आसन देखत खरी लजाइ । अञ्चल मुंह महि दीन्हइ मुसक्याइ ॥
सखी दिखावहिं पसारि । कही आहि अहु कहा विचार ॥"

इस प्रकार गार्हस्थिक जीवन, लोक व्यवहार, आचार, नीति, लोकप्रवृत्ति से सम्बन्धित उक्तियाँ इस काव्य के सौष्ठव और उपयोगिता को बढ़ाने में सहायक हुई हैं । अस्तु छिताई वार्ता साहित्य के अतिरिक्त सांस्कृतिक महत्व की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण रचना है ।

"माधवानल कामकन्दला"

कथा का स्रोत

माधवानल कामकन्दला की प्रेम कहानी आर्य गाथाओं में बड़ी प्रसिद्ध रही है, कितने ही संस्कृत और अपभ्रंश के कवियों ने इसे अपनी उत्कृष्ट रचनाओं का आधार बनाया है।

इसका मूल श्रोत क्या है, अब तक निश्चित रूप से पता नहीं चल सका। श्री कृष्ण सेवक कटनीं के अनुसार माधवानल की रचना सर्वप्रथम कवि आनंदधर ने संस्कृत में की थी। गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज से प्रकाशित माधवानल कामकन्दला की भूमिका में श्री मजूमदार जी भी इसके रचनाकाल को निश्चित नहीं कर सके हैं। उन्होंने इस कथानक की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "यह कहानी पश्चिमी भारत में बहुत प्रसिद्ध थी। बहुत दिनों के उपरान्त इस कथानक के आधार पर मराठी में रचनाएँ प्रारम्भ हुई। हिन्दी में *सबसे पहले आलम ने इसकी रचना हिजरी संवत् ९९१ में की*[1]।"

आलम ने भी किसी संस्कृत की कथा को सुना था और उसी के आधार पर इसकी रचना की थी कवि इस कथानक की भूमिका में स्पष्ट लिखता है कि–

"कछु अपनी कछु पर कृति चोरौं। जथा सक्ति करि अक्षर जोरौं॥
सकल सिंगार बिरह की रीति। माधो कामकन्दला प्रीति॥
कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी। भाषा बांधि चौपई जोरी॥

क्या यह कथा आनन्दधर विरचित थी अथवा किसी अन्य कवि की? कुछ कहा नहीं जा सकता। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (काशी विश्वविद्यालय) से इस कथानक के श्रोत पर हमने विचार विनिमय किया था। उनके अनुसार

---

1. "The story appears to have been popular mostly in western India and only at a very late period it came to be adopted *in marathi. The version of the story in Hindi by a Muslim poet Alam was composed in Hizri Nine ninty one."*
Gaekwad Oriental Series Vol. XCVIII Page 9.

इसका स्रोत विक्रम की पहली शती के लगभग हो सकता है। उनका कहना है कि माधव और कन्दला की कहानी सम्भवतः 'प्राकृत' और अपभ्रंश के सन्धि काल में रची गई थी 'गाथा' छन्द प्राकृत का छन्द है, और यह छन्द सभी आख्यानों में प्राप्त होता है किन्तु इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। उन्हीं के अनुसार संस्कृत की सिंहासन बत्तीसी में माधवानल कामकन्दला नहीं मिलती, किन्तु किसी हिन्दी अनुवाद में उन्होंने देखा है। बोधा ने भी सिंहासन बत्तीसी का उल्लेख किया है—

"सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालीदास बहु रुचि सह गाई॥
सिंहासन बत्तीसी माहीं। पुरिन कही भोज नृप पाहीं॥
पिंगल कह बैताल सुनाई। बोधा खेतसिंह सह गाई॥
रुचिर कथा सुन हे दिल माहिर। इश्क हकीकी है जग जाहिर॥"

× × ×

किन्तु हमें अभी तक कोई सिंहासन बत्तीसी नहीं प्राप्त हो सकी है, जिसमें यह कथा मिलती हो। कन्दला नाम की 'पुतली' अवश्य एक अंगरेजी की सिंहासन बत्तीसी में मिलती है, किन्तु उसके मुख से प्रस्तुत कथानक का परिचय नहीं प्राप्त होता।

श्री मायाशंकर याज्ञिक के संग्रह में एक संस्कृत की गद्य-पद्य-मय प्रति देखने को मिली। इसका लिपिकाल और रचनाकाल अज्ञात है। भाषा में भी स्थान-स्थान पर बड़ा अन्तर मिलता है। कहीं कहीं इस प्रति की भाषा में वर्तमान खड़ी बोली के शब्द भी मिलते हैं। हिन्दी में सर्वप्रथम आलम रचित माधवानल कामकन्दला प्राप्त होता है, किन्तु रचनाकाल, मूल कथा एवम् शैली में आलम रचित इस ग्रन्थ की प्रतियां भिन्न-भिन्न मिलती हैं।

मूल कथा और शैली के अनुसार आलम की रचना दो भागों में विभाजित की जा सकती है। संक्षिप्त और वृहद्।

नागरी प्रचारिणी के आर्य-भाषा पुस्तकालय में दो प्रतियां हैं। एक खण्डित है जिसका लिपिकाल और रचना काल अज्ञात है, दूसरी पूर्ण है जिसमें रचनाकाल ९९१ (सन् नौ सौ इक्यानवे) दिया है और प्रतिलिपिकाल १८१७। किन्तु लखनऊ में श्री मायाशंकर याज्ञिक की प्रति जो श्री उमाशंकर याज्ञिक के द्वारा देखने को मिली रचनाकाल ९५१ (सन् नौ सौ इक्यावन जबही। कथा आरम्भ कीन्ह यह जबहीं॥) मिलता है। इसका लिपिकाल सम्वत् १९३५ है और लिपिकार हैं भरतपुर निवासी चुन्नी जी। इन्हीं के पास संग्रहीत छोटी प्रति में सन् नौ सौ इक्यावन आही, मिलता है और तीसरी प्रति में 'नौ से इक्यावन

जबही, प्राप्त होता है। पंजाब यूनिवर्सिटी में भी एक प्रति है जिसका रचनाकाल श्री उमाशंकर जी ने मंगवाया था उसमें भी उनके अनुसार नौ सो इक्यावन दिया है।

तिथियों की इस भिन्नता के साथ वृहद् प्रति में मसनवी शैली में खुदा और पैगम्बरों की वन्दना मिलती है साथ ही जयंती अप्सरा के पूर्व जन्म की प्रेम कथा का वर्णन मिलता है किन्तु छोटी प्रति मे यह कथा नहीं है और न पैगम्बरों की ही वन्दना की गई है।

उपर्युक्त विश्लेषण का कारण यह है कि अवान्तर के कवियों ने दोनों कथाओं को अपनाया है कुछ कवियों में पूर्व जन्म की प्रेम कथा नहीं है और कुछ में वह मिलती है। आनन्दधर[1] की संस्कृत वाली रचना में पूर्वजन्म की प्रेम कथा नहीं मिलती। इसलिये यह सन्देह होता है कि आलम ने किसी अन्य कवि की रचना सुनी थी। या यह भी हो सकता है कि ९५१ में लिखी गई कथा उनके आधार पर हो किन्तु ९९१ में उसने मूल कथा को परिवर्तित कर दिया हो। यह केवल अनुमान ही है।

यह तो निश्चित ही है कि 'माधवानल' के दोनों रूप जनता में प्रचलित थे। गायकवाड़ सीरीज में दोनों प्रकार की रचनाएं संग्रहीत हैं। हो सकता है कि माधव के जीवन की घटना ने जनता को इतना मुग्ध कर लिया हो कि वह कंदला और माधव को दैवी स्त्री पुरुष के रूप में देखने लगी हो। लोक कथानकों में ऐसे परिवर्तन बहुत अधिक मिलते हैं। लोक रुचि इन लोक कथानकों में समय समय पर परिवर्तन लाने लगती है। यहां तक कि कोकशास्त्र में भी माधव का नाम लिया जाने लगा था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह को उलटते पलटते मुझे कोकशास्त्र से सम्बन्धित एक प्रति मिली थी। इस प्रति में विषय प्रवेश करता हुआ कवि लिखता है कि—"कोकदेव कहते हैं जो ऐसे प्रकार जाने, रूप माधव नल सारिषौ, भोग तौ माधवानल के सौ, मुख चन्द्रमा सारिषौ, धन लही अवचल, आसन गरुड़ के सौ, सरस्वती कैसी बानी, बुद्धि तौ गनेस की सी, पराक्रम विक्रमाजीत कै सौ होइ।"

उपर्युक्त अंश से यह स्पष्ट है कि माधव और विक्रमादित्य का नाम देव-पुरुषों के साथ लिया जाने लगा था। साथ ही वह सांसरिक सुख और समृद्धि के प्रतीक बन गए थे। ऐसी अवस्था में जन्मान्तरवाद का समावेश इस कथानक में हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है।

---

१. गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज में प्रकाशित।

कवियों ने माधव के प्रेम को आदर्श प्रेम का प्रतीक मान लिया था और विरहिणियों को ढाढ़स बँधाने के लिये नल, तथा उषा-अनिरुद्ध की कथा के साथ माधवानल की कथा भी सुनाने लगे थे। पुहुकर ने रसरतन में मुदिता के द्वारा राजकुमारी को माधवानल कामकन्दला की कथा भी सुनाई है।

यह कथा कवियों को इतनी प्रिय रही है कि अबतक हमें आठ छोटे-बड़े प्रकाशित और अप्रकाशित काव्य प्राप्त हुए हैं[1]।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत कथानक पौराणिक कथानकों के समान ही जनता में प्रिय था।

ऐतिहासिक आधार

प्रश्न यह उठता है कि क्या माधव से सम्बन्धित घटनाएँ कल्पित हैं या उनका कोई आधार भी है। प्रबन्ध काव्यों में कथानक कल्पित, ऐतिहासिक या पौराणिक होते हैं। अधिकतर यह देखा गया है कि साधारणतः प्रचलित गाथाएँ या तो पौराणिक होती हैं या ऐतिहासिक जो जनश्रुति के रूप में पूर्वजों की थाथी के रूप में हम तक चली आई है। यही दो प्रकार की गाथाएँ ही सर्वसाधारण के मनोरञ्जन एवं शिक्षण का आधार भी कवियों के द्वारा बनती हैं। प्राचीन हिन्दू गाथाओं का स्रोत वृहद्कथा कोष और कथासरित्सागर एवं महाभारत ही रहा है। सिंहासनबत्तीसी और बैतालपचीसी भी लोक गाथाओं के संग्रह कही जा सकती हैं, किन्तु इनको इतनी मान्यता नहीं दी जा सकती। उक्त प्राचीन संग्रहों में माधवानल की कथा नहीं मिलती।

कल्पित कथानक यह हो सकता है, किन्तु भारत में प्रचलित लोक कथाओं के आगे कल्पित कथानकों को जनता द्वारा इतनी मान्यता नहीं मिलती कि वह शताब्दियों तक जीवित रह सकें। कम से कम जिस युग में इसकी रचना हुई है उस समय का प्रवृत्ति ऐसी ही थी।

श्री कृष्णसेवक कटनी ने सन् १९३३ की अखिल भारतीय ओरियन्टल कान्फ्रेंस में माधवानल कामकन्दला पर एक लेख पढ़ा था जिसमें उन्होंने माधव और कन्दला को ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध किया है।

---

१. (क) माधवानलाख्यानम्-आनन्दधर (ख) माधवानल कामकंदला-आलम। (ग) माधवानल कामकंदला चउपई-कुशल लाभ (घ) माधवानल काम-कंदला प्रबन्ध गणपति (च) माधवानल-कथा दामोदर (छ) बिरहवारीश (माधवानल काम कंदला) बोधा (ज) माधवानल नाटक-राज कवि केसि।

उनका कहना है कि माधवानल का जन्मस्थान पुष्पावती नगरी अथवा वर्तमान बिलहरी है। यह नगरी मध्यप्रदेशान्तर्गत जिले में ८०° से ३०° पूर्व रेखांस तथा २३° से ५०° उत्तर अक्षास में स्थित एक प्राचीन नगरी है। इसका प्राचीन नाम पुष्पावती नगरी है। राजा कर्ण ने अवनति अवस्था में पाकर इसे फिर बसाया और इसका नाम बिलहरी रखा। राजा कर्ण कल्चुरी वंश के थे। ये चेदिराज राजा गंगेयदेव के पुत्र थे। इन्होने सन् १०४० से १०८० तक राज्य किया। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में राजा कीर्तिवर्मन ने राजा कर्ण को हराया और बिलहरी उनके हाथ मे चली गई। बारहवीं शताब्दी के आरम्भ मे जब गोविन्दचन्द्र कन्नौज के राजा हुए तो वह नगरी (बिलहरी) उनके राज में सम्मिलित हो गई। राजा कर्ण ने जो उन्नति के साधन उत्पन्न कर दिए थे उनके द्वारा क्रमशः इस नगरी की उन्नति हुई। साहित्य संगीत और कलाओं से इसने बहुत ख्याति प्राप्त की। ऐसे वातावरण में थोड़े ही काल में अर्थात् १२ वीं शताब्दी के *आदि में वहाँ अति सुन्दर गुणवान तथा संगीत और वाद्यकला में अतिशय* निपुण माधवानल नामक एक ब्राह्मण ने जन्म लिया। इनके पिता का नाम शंकरदास था। ये गोविन्दचन्द राजा के पुरोहित थे। छोटी सी अवस्था में ही माधवानल सारी विद्याओं में पारङ्गत हो गए। इसकी वीणा-वादन की कला पर नगर के नर-नारी मुग्ध हो जाते थे। एक दिन अपने पति को खाना परोसते *समय एक ब्राह्मणी माधव की वीणा पर मुग्ध होकर विचलित हो गई और* उसके हाथ से भोजन सामग्री गिर पड़ी। ब्राह्मण ने राजा को यह वृत्तात सुनाया और राजा ने माधव को स्त्रियों को विचलित करने के अभियोग में निर्वासित कर दिया।"

वहाँ से चल कर माधवानल राजा कामसेन की कामावती नगरी में पहुँचे। *इसका पता खैरगढ़ राज्य के डोंगरगढ़ नगर के समीप जो बिलहरी से लगभग२००मील* है लगता है। सम्भवतः डोंगरगढ़ ही प्राचीन कामावती नगरी है। कामकन्दला का भवन बिलहरी में उजाड़ दशा में अब भी देखा जा सकता है। वहां पत्थर के खम्भे आदि पुरानी शिल्पकला का नमूना दिखाते हैं। एक ऐसा पत्थर गायकुण्ड के घाट पर जो उसका जीर्णोद्धार करते समय लगाया गया है कन्दला के भवन का मालूम होता है। इस पर मरम्मत की तिथि पूस बदी ७ सम्वत् १३५५ खुदी है। उससे भी कामकन्दला के भवन की वय का कुछ आधार मिलता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि माधवानल का मुख्य स्थान पुष्पावती नगरी अर्थात् बिलहरी था। तथा कामकन्दला का स्थान वर्तमान खैरागढ़ रियासत के

डोगरगढ़ नामक नगर के समीप स्थित कामसेनपुरी (कामावती) नगरी था। डोगरगढ़ के पहाड़ पर एक महल नष्टप्राय अवस्था में कामकन्दला के महल के नाम से प्रसिद्ध है जो अति जीर्ण अवस्था में अब भी स्थित है। इस नाम के दूसरे महल का ध्वंसावशेष बिलहरी में भी है। बिलहरी के राजा मकरध्वज के बीजक से परिज्ञात होता है कि बिलहरी और डोगरगढ़ के बीच में आवागमन का सिलसिला था। कथाकारों ने लिखा भी है कि माधव १०० कोस चलकर कामसेन पुरी दस दिन में पहुँचा।

इन सब बातों से पाया जाता है कि डोगरगढ़ कामावती नगरी के नाम से प्रसिद्ध था और माधवानल यहां से अपनी प्रियतमा कामकन्दला के साथ बिलहरी गए। यह दोनों स्थान ऐतिहासिक महत्व के हैं[1]।

प्रश्न यह उठता है कि यह राजा विक्रमादित्य कौन थे? इसलिए कि विक्रमादित्य के विषय में भी इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। फिर क्या विक्रमादित्य ने पुहुपावती में कभी प्रवेश किया था? कामकन्दला के लगभग सभी आख्यानों में माधव का पुहुपावती लौटना मिलता है। बोधा के विरहवारीश में कन्दला के मिलने के उपरांत राजा विक्रमादित्य का माधव को बनारस का राज्य देना लिखा गया है। साथ ही साथ यह भी लिखा है कि कंदला के कहने पर विक्रमादित्य ने लीलावती के लिये ससैन्य पुष्पावती की ओर प्रयाण किया था। राजा गोविंदचंद का विक्रमादित्य से मिलना भी बताया गया है।

दूसरी बात विक्रमादित्य का शैव होना है। प्रत्येक आख्यान में शिव के मंदिर में माधव के द्वारा गाथा लिखने की घटना मिलती है। शिव पूजन के लिये आए हुए विक्रमादित्य उसे ही पढ़ कर माधव की पीड़ा को मिटाने के लिये उत्सुक होते हैं।

बोधा के विरहवारीश से विक्रमादित्य का बनारस से सम्बंध स्थापित होता है। उनके शैव होने में कोई सदेह नहीं है।

इन दोनों बातों पर श्री कटनी जी ने कोई प्रकाश नहीं डाला है। लेकिन पुहुपावती के पुनः बसाने वाले राजा कर्ण के सम्बन्ध में जिन्होंने सन् १०४० से १०८० तक राज्य किया था एक लेख देखने को मिला है जिसके अनुसार राजा कर्ण 'गंगेयदेव' के पुत्र थे। गंगेयदेव ने अपने को विक्रमादित्य की उपाधि से आभूषित किया था और इनका राज्य तेज भुक्ति (बुन्देलखंड) में था। तथा

1. Proceedings and Transactions of the seventh All India Oriental Conference, Baroda, December, 1933.

यह वामदेव (शिव) के अनन्य भक्त एवं पुजारी थे। इनका सम्बन्ध बनारस से भी था[1]।

उपर्युक्त बातों का कटनी जी के पुहुपावती से सम्बन्धित कथनों से साम्य बैठता है। साथ ही विरहवारीश में माधव को काशी का राज्य देने की घटना भी इस आधार पर सत्य प्रतीत होती है। बोधा स्वयं बुंदेलखंड निवासी थे, इसलिये इन्हे तत्कालीन इतिहास का ज्ञान था, ऐसी आशा की जा सकती है।

माधव के समय पुहुपावती पर राजा कर्णदेव के वंशजों का अधिकार नहीं था। कटनी जी के अनुसार ग्यारहवी शती में कीर्तिवर्मन ने उसे राजा कर्ण से छीन लिया था। हो सकता है कि १२ वीं शती मे राजा कर्ण के वंशज अपने को गंगेयदेव की विक्रमादित्य की उपाधि से आभूषित किए रहे हों और माधव कामवती से निकाले जाने के उपरान्त इनके राज्य में पहुँचा हो और उनकी सहायता से कन्दला को पाया हो। यह तीनों राज्य मध्यप्रान्त के अन्तर्गत ही पड़ते हैं।

इस ऐतिहासिक घटना को जनश्रुति ने विक्रम संवत् चलाने वाले विक्रमादित्य से सम्बन्धित कर दिया है, ऐसा अनुमान करने में कोई विशेष त्रुटि की सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती।

अस्तु माधवानल कामकन्दला को ऐतिहासिक घटना पर आधारित कथा मानने में हमें कोई सन्देह नहीं होता है।

---

1. "In the land of Tej-Bhukti now kuhwn as Bundlekhand, there once ruled a king named Gangeyadeva Vikramaditya. His only inscription that of Pivan. which mentions the name of Maheshvar seems to have been a Saiva record. But what appears to be exclusive evidence on the point is the statement of his son's. Benares grant that the latter meditated on the feet of Parama Bhattarak Maharajadhiraj-Paramesnvara Shri Vamdeva........ From A. D. 1042 the date of this record, several successors of karna also refer to themselves in their records as meditating on the feet of Vamdev."
—Some Aspects of Indian Belief:
By Dr. Hemchand Ray, M. A. Ph.D. (London), Page 355.
—The Seventh All India oriental Conference, Baroda, December, 1233.

माधवानल आख्यान की प्रतियों में प्रयुक्त सामान्य मूल घटनाएं,

माधवानल कामकन्दला आख्यान विविध कवियों के द्वारा लिखा गया है, इसलिये लोकरुचि अथवा कविरुचि के अनुसार कथानक में परिवर्तन और संशोधन भी मिलता है किन्तु प्रत्येक काव्य में आधार, मूल बातें और घटनाएं एक सी ही हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) माधवानल एक रूपवान सर्वगुण सम्पन्न पुहुपावती नगरी का ब्राह्मण है।

(२) अपनी रूप यौवन और संगीत कला की मोहनी शक्ति के कारण ही उसे पुहुपावती छोड़ना पड़ा है।

(३) पुहुपावती के अनन्तर वह कामावती नगरी जाता है।

(४) कामावती में राजा कामसेन के दरबार में संगीत पारखी होने के कारण ही वह प्रवेश पा सका है।

(५) दंशन करते हुए भ्रमर को उरोज पर से उड़ाने की कला पर मुग्ध होकर उसने कन्दला पर राजा कामसेन द्वारा प्रदत्त उपहारों को न्यौछावर कर दिया है।

(६) इस व्यवहार पर अपने को अपमानित समझ राजा ने उसे कामावती से भी निकाल दिया।

(७) इस घटना के बाद कन्दला और माधव का प्रेमालाप और कन्दला का आत्मसमर्पण।

(८) कन्दला को राजाज्ञा के भय से छोड़ माधव का उज्जैनी जाना।

(९) विक्रमादित्य का शिव-मन्दिर में माधव लिखित गाथा पढ़ना।

(१०) विक्रमादित्य का कन्दला को दिलाने का प्रण और प्रयास।

(११) कन्दला और माधव की विक्रमादित्य द्वारा परीक्षा और दोनों की मृत्यु।

(१२) बैताल द्वारा विक्रमादित्य का अमृत प्राप्त करना और दोनों को पुनः जीवित करना।

(१३) कामावती में पहुँच कर विक्रमादित्य का कन्दला को दिलाना और दोनों का मिलन।

कुछ आख्यानों में इन तेरह घटनाओं के अतिरिक्त पूर्व जन्म की कहानी भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के रूप में चलती है। यह पूर्व जन्म की कहानी जयन्ती नामक अप्सरा से सम्बन्धित है, जिसकी मूल घटनाएं निम्नांकित हैं :—

(१) जयन्ती का इन्द्र से अभिशप्त होना।

(२) मृत्युलोक में पुहुपावती का वन में शिला रूप में पड़ा रहना।

(३) माधव द्वारा शिलारूपिणी जयन्ती से विवाह और उसका उद्धार।

(४) जयन्ती और माधव का प्रेम।

(५) जयन्ती का पुनः अभिशप्त होकर मृत्युलोक मे नर्तकी कन्दला के रूप मे जन्म।

उपर्युक्त घटनाएं ही माधवानल कामकन्दला आख्यान के मेरुदण्ड हैं। इन्ही घटनाओं के ढाचे को काव्य से परिवेष्ठित कर कवियों ने उसे कल्पना के सुन्दर चित्रों से सजाया है।

विरहवारीश

(माधवानल कामकंदला)

—बोधा (बुंदेलखंडी) कृत।

रचनाकाल सं० १८०९ से १५ के बीच।

कवि-परिचय

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में स्वच्छंद काव्य प्रवृत्ति वाले कवियों की अत्यंत विशिष्ट काव्यधारा प्रवाहित होती रही। किन्तु उस धारा और उस प्रवृत्ति के कवियों पर इतिहासकारों ने बहुत कम ध्यान दिया, जिसके परिणाम स्वरूप, वाह्य वेश-भूषा पर ही दृष्टि रखकर इन कवियों को रीति काल के अन्तर्गत रख दिया गया है। काल विभाजन की इस गड़बड़ी ने, एक ही नाम वाले कवियों के अध्ययन में बड़ी द्विविधा उत्पन्न कर दी है। 'आलम' के सम्बन्ध में काफी वाद-विवाद हो चुका है। 'बोधा' के सम्बन्ध में भी ऐसी ही अनेक शंकाएं उत्पन्न होती हैं। किन्तु अन्य अनुसन्धायकों के लिये यह कार्य छोड़कर हम विरहवारीश में मिलने वाली सामग्री के अन्तर्साक्ष्य एवम् 'बोधा' के विषय में अबतक जो सामग्री उपलब्ध हो चुकी है उसके आधार पर इस कवि के जीवन-वृत्त का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

शिवसिंह सरोज में एक बोधा कवि सं० १८०४ में और दूसरे बोधा कवि बुन्देलखण्डी सं० १८५५ में मिलते हैं। श्री विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र के अनुसार "शिवसिंह सरोज" के सन संवत् उत्पत्ति के नहीं, उपस्थिति के समय के हैं। मिश्र-बन्धु विनोद में इन संवतों को जन्म काल माना गया है, श्री मिश्रबन्धु लिखते हैं कि "ठाकुर शिवसिंह जी ने इनका जन्म संवत् १८०४ लिखा है, जो अनुमान से ठीक जान पड़ता है। बोधा एक बड़े प्रशंसनीय और जगद्विख्यात कवि थे। अतः यदि ये सम्वत् १७७५ के पहले के होते तो कालिदास जी इनको छन्दहजारा में अवश्य लिखते। इधर सूदन कवि ने सं० १८१५ के लगभग "सुजान चरित्र" बनाया, जिसमें उन्होंने १७५ कवियों के नाम लिखे

हैं। इस नामावली मे प्रायः कोई भी तत्कालीन वर्तमान अथवा पुराना आदरणीय कवि छूटा नही रहा है, परन्तु इसमे बोधा का नाम नहीं है। इससे विदित होता है कि सं० १८१५ तक ये महाशय प्रसिद्ध नहीं हुए थे। फिर पद्माकर आदि की भाँति बोधा का अर्वाचीन कवि होना भी प्रसिद्ध है, अतः शिवसिंह जी का संवत् प्रामाणिक जान पड़ता है। जान पड़ता है कि बोधा ने लगभग सं० १८६० तक कविता की[१]।"

शाहाबाद के पंडित नकछेद तिवारी के द्वारा प्रकाशित "इश्कनामा" मे सबसे प्रथम बोधा का कुछ वृत्त दिया गया है। उनके अनुसार बोधा कवि (बुद्धिसेन) सरवरिया ब्राह्मण, राजापुर प्रयाग के रहने वाले थे। किसी घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण बाल्यावस्था ही में निज भवन को छोड़ बुन्देलखण्ड की राजधानी पन्ना में जा पहुँचे। इन्हें पन्ना महाराज बहुत मानने लगे और प्यार में इनका नाम बुद्धिसेन से बोधा हो गया।

इसके अनन्तर 'सुभान' नामक दरबार की "यामनी वेश्या" से उनके प्रेम की प्रख्यात कथा देकर उन्होंने बताया है कि इस अपराध पर इन्हें छ महीने के लिये देश निकाला दे दिया गया। इन्होंने सुभान के 'वियोगानल' में अपना तन-मन जलाते जङ्गल पहाड़ दरिया और अनेक शहरों की खाक छानी और इश्कनामा तथा माधवानल का आशय लेकर इन्होंने 'विरहवारीश' की रचना की।

नियमित समय व्यतीत होने के उपरान्त आप पन्ना पहुँचे। उस समय उनके अनुसार 'सुभान' भी उपस्थित थी। महाराज के कुशल-क्षेम पूँछने पर इन्होंने 'विरहवारीश' तरङ्गित किया। इस काव्य पर प्रसन्न होकर महाराज ने बोधा से कुछ माँगने को कहा। अन्त में महाराज को इस बात पर दृढ़ देखकर इन्होंने 'सुभान अल्लाह' कहा। महाराज ने इस पर सुभान को इनके साथ रहने की आज्ञा दे दी।

नागरीप्रचारिणी सभा की खोज में बोधा के नाम पर अबतक इतने ग्रन्थ मिले हैं।

१. विरही सुभान—दम्पति विलास
२. बाग वर्णन
३. बारहमासी
४. फूल माला
५. पक्षी मञ्जरी

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय संस्करण, द्वितीय भाग पृ० ७५८।

संख्या २ से पाँच तक के ग्रन्थ फिरोजाबादी बोधा के कहे जाते हैं और पहला "इश्कनामा" का दूसरा नाम है[1]।

विरहवारीश के रचयिता बुन्देलखण्डी बोधा हैं। अस्तु बुन्देलखण्डी बोधा की खोज में बिरही सुभान दम्पतिविलास या इश्कनामा की जो प्रति सन् १९१७ की त्रिवर्षी में मिली है, उसका पहला दोहा है—

'खेतसिंह नरनाह हुकुम चित्त हित पाइ।
ग्रन्थ इश्कनामा कियो बोधा सुकवि बनाइ॥'

इससे स्पष्ट है कि यह खेतसिंह के दरबारी थे। विरहवारीश में भी इन्हीं खेतसिंह की प्रशस्ति मिलती है, उसमें दरबार से देशनिकाले का दण्ड भी कथित है, कवि का पूरा नाम भी है और यह भी बतलाया गया है कि ग्रन्थ के निर्माण का कारण क्या है।

'बिछुरन परी महाजन कावा। तब बिरही यह ग्रन्थ बनावा॥
पंती छत्र बुन्देल को छेत्रसिंह गुनमान।
दिल माहिर जाहिर जगत दान युद्ध सनमान॥
सिंह अमान समर्थ के भैया लहुरे आहिं।
बुद्धिसेन चित चैन युत सेवौं तिन्हैं सदाहिं॥'
कछु मौतें खोटी भई छोटी यही विचार।
डर मान्यौं-मान्यौं मनै तज्यों देस निरधार॥
इतराजी नरनाह की बिछुरि गयो महबूब।
विरह सिन्धु बिरही सुकवि गोता खायो खूब।
वर्ष एक परखत फिरो हर्षवंत महराज।
लह्यो दान सनमान पै चित्त न चह्यो सुखसाज।
यह चिन्ता चित में बढ़ी चित मोहित घटकीन।
भौन ऐन मृगछौन सों तौन कह परवीन॥

इससे ज्ञात होता है कि छेत्रसिंह (खेतसिंह) पन्ना नरेश महाराज छत्रसाल के पंती अर्थात् पनाती (प्रपौत्र) थे और अमानसिंह के छोटे भाई थे। इतिहास में वंशवृक्ष इस प्रकार मिलता है।

---

१. फिरोजाबादी बोधा के विषय में देखिए श्री पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र का लेख 'बोधा का वृत्त' नागरीप्रचारिणी पत्रिका सं० २००४ वर्ष ५२ पृष्ठ १६ से २०।

इससे यह भी पता चलता है कि कवि का नाम *बुद्धिसैन* अर्थात् 'बुद्धिसेन' था। तीसरा यह भी प्रकट होता है कि कुछ खोटी हो जाने से राजा अप्रसन्न थे और इन्हें एक वर्ष तक उनकी 'सुमुखता' की प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। वियोग का कारण नरनाह की 'इतराजी' थी। अपडर के कारण यह राजा के सम्मुख वर्ष भर नहीं गए। छः महीने देश निकाले की किंवदंती निराधार नहीं, हाँ उसे एक वर्ष होना चाहिए था।

यही नहीं, इसका भी पता चलता है कि अनेक दरबारों में टक्कर खा लेने के अनन्तर खेतसिंह जी के दरबार में बोधा गए थे।

> "बड़ि दाता बड़ कुल सबै देखे नृपति अनेक।
> त्याग पाय त्यागे तिन्हैं चित में चुभे न एक॥

कहां कहां चक्कर काटा था, उन स्थानों की भी सूची एक कवित्त में दी गई है।

> "देवगढ़ चाँदा गढ़ा मंडला उजैन रीवां,
> साम्हर सिरोज अजमेर लौंनिहारो जोइ।
> पटना कुमाउं पैंधि कुर्रा औ जहानावाद,
> सांकरी गली लौं वारे भूप देखि आयो सोइ॥
> बोधा कवि प्राग औ बनारस सुहागपुर,
> खुरदा निहारि फिरि मुरक्यो उदास होइ॥
> बड़े बड़े दाता ते अड़े न चित्त मांहि कहूँ,
> ठाकुर प्रवीन खेतसिंह सो लख्यो न कोइ॥"

खेत सिंह कौन थे, इसका पता भी बोधा ने दिया है।

> "बुंदेला बुंदेलखण्ड कासी कुल मंडन।
> गहरवार पंचम नरेस अरि दल बल खंडन।

तासु वंस छत्ता समर्थ परनापत वुफिए।
तासु सुवन हिरदेस कुल आलम जस सुफिए॥
पुनी सभासिंह नरनाथ लखि बीर धीर हिरदेस सुव।
तिहि पुत्र प्रवल कवि कल्पतरु खेतसिंह चिरजीव हुव॥"

'बोधा' को बाला (प्रेयसी) कैसे मिली इसका भी विरहवारीश में उल्लेख है।

"जिकिर लगी महबूब सो फिर गुस्सा महराज।
विन प्यारी होवे सो क्यों मों मन को सुख साज।
सो सुनि गुनि निज चित्त में लिखि दिये वाला एक।
रहिए खेत नरेस के चरन सरन तजि टेक।
तव हौं अपने चित्त मे सकुचौं सोच वनाय।
मेरी ऐसी वस्तु कह काहि मिलौं लै जाय।
वचन यहै वनिता कही वे राजा तुम दीन।
भापा करि माधौ कथा सो लै मिलौ प्रवीन।
यों सुनि थिर हो हो कथी विरही कथा रसाल।
सुनि रीझे रीझें तजे खेतसिंह छितिपाल॥"

इस वाला के नाम और गुण का परिचय भी कवि ने दिया है।

"नवयौवन वनिता सुभ गुन सदन 'सुभान'।
यू ग न रस चसके वहुत प्रिय वे प्रीति विधान॥
अतन कथन के कथन यों केलि कथन परवीन।
विरह गिरह प्रेरित तहाँ विरही पति रसलीन॥
वाला वूझत वालमें सुन वालम सज्ञान।
कहा प्रीति की रीति है कीजै कत उनमान॥"

विरही सुभान, दम्पति विलास, या इश्कनामा और विरही वारीश के निर्माण-काल का समय नहीं मिलता किन्तु पं० विश्वनाथप्रसाद जी ने विरहवारीश की रचना सं० १८०९ के बाद मानी है। जो हमारे विचार से ठीक जान पड़ती है।

---

१. खेतसिंह की वंशावली पर अपने विचार प्रकट करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र लिखते हैं—"श्री सभासिंह की मृत्यु स० १८०९ में हुई। इनके तीन पुत्र थे। हिन्दूपत, अमानसिंह और खेतसिंह बड़े दानी थे। इनकी दान प्रशंसा में पराग कवि ने लिखा है—

"कलि मे अमान सिंह कर्ण अवतार जानो,
जाको जस छाजत छबीले छपाकर सो।"

कथावस्तु

कृष्ण के गोकुल से द्वारिका चले जाने पर गोपिकाएँ विरह से व्याकुल होकर उन्मादिनी की भाँति भ्रमती घूमती थीं उसी समय रति के साथ कामदेव ने प्रकट होकर उन्हें काम पीडा से उद्विग्न कर दिया। उस दशा से व्याकुल होकर गोपिकाओं ने मदन को शाप दिया कि कलियुग में तुम भी अपनी प्रियतमा के वियोग में इस प्रकार दुखी होकर तड़पते फिरोगे जिस प्रकार आजकल हमारी दशा है।

इस शाप के अनुकूल कामदेव माधव के रूप में पुष्पावती नगरी के राज-रोहित के यहाँ अवतरित हुआ और रति रेवती तट पर अवस्थित परमावती नगरी में राजा रत्नराय की कन्या के रूप में अवतरित हुई।

राजकन्या के लक्षणों को देखकर ज्योतिषियों ने बताया कि इसमें वेश्या के भी सभी गुण उपस्थित हैं इसलिये राजा ने इसे एक कटहरे में बन्द कर नदी में बहा दिया। इस बहती हुई बालिका को एक नट ने नदी से निकाला और अपने घर ले गया तथा उसे पालपोस कर बड़ा किया। और नादविद्या और नृत्य में पारङ्गत कर वह इस बालिका को कामसेन राजा के दरबार में ले गया। राजा ने इस बालिका को अपने राज्य की नर्तकी के रूप में अपने पास रख लिया और नट को बहुत धन धान्य देकर बिदा किया। कामकंदला वेश्या कामावती नगरी की अति प्रसिद्ध रूपवती नर्तकी थी।

गणितशास्त्र की प्रसिद्ध लीलावती ने एक दिन काशी में आए हुए ब्राह्मण से जो काशी के अन्य पंडितों को हरा चुका था शास्त्रार्थ किया और उसे पराजित किया। स्त्री द्वारा पराजित होने और नगर निवासियों द्वारा हँसी उड़ाए जाने

सभासिंह जी अमानसिंह को बहुत चाहते थे। उनकी सुशीलता और उनके विशिष्ट गुणों के कारण प्रजा भी उनके दैवी गुणों से प्रसन्न थी। इस लिये हिन्दूपत से छोटे होने पर भी राज्य के अधिकारी ये ही बनाए गए, पर सं० १८१५ में राज्य के लोभ से हिन्दूपत ने इन्हें मरवा डाला और वह स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया। बोधा ने हिन्दूपत का नाम नहीं लिया, 'अमानसिंह' को समर्थ अवश्य लिखा, पर महाराज नहीं लिखा। खेतसिंह को महाराज, नरेश आदि विशेषण बराबर दिए हैं। इस सम्बन्ध में चाहे जो भी अनुमान लगाया जाय, सरोज में जो सं० १८०४ बोधा कवि का काल दिया है, वह ठीक बैठ जाता है।'

—नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० २००४ वर्ष ५२ पृ० २२–२३।

पर इस ब्राह्मण ने लीलावती को वैधव्य का 'दुख भोगने का शाप दिया। शाप से दुखित होकर लीलावती ने बारहवर्ष तक कठिन तपस्या की और महादेव के प्रसन्न होने पर उसने महादेव से कामदेव के समान पति पाने का वरदान माँगा। महादेव ने एवमस्तु कह कर विदा ली।

लीलावती का दूसरा जन्म पुष्पावती नगरी में रघुदत्त नामक ब्राह्मण के घर हुआ। एक दिन यह कन्या अपनी सखियों के साथ दुर्गा मन्दिर में देवी के पूजनार्थ पहुँची। पूजा के उपरान्त वाटिका में टहलती हुई वह उस स्थान पर अकस्मात् पहुँची जहाँ माधव वाटिका में वीणा बजा रहा था। दोनों ने एक दूसरे को देखा और मुग्ध हो गए। सखियाँ लीलावती को अलग हटा कर ले गईं माधव इधर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडे। जब उन्हें होश आया तो बडी अव्यवस्थित अवस्था में घर पहुँचे। उस दिन से लीलावती और माधव एक दूसरे के लिये चिन्तित और व्याकुल रहने लगे।

एक दिन लीलावती की अवस्था को देखकर उसकी सखी सुमुखी बड़ी चिंतित हुई और लीलावती से इस दुख का कारण पूछने लगी। लीलावती ने अपने हृदय की वेदना और माधव के प्रति अपने अनुराग को उस पर प्रकट किया और उससे मिलने की उत्कट अभिलाषा बताई। पहले तो सुमुखी ने उसे बहुत मना किया लेकिन अन्त में वह माधव के पास लीलावती का संदेश ले जाने के लिए तैयार हो गई।

अतएव एक रात सुमुखी के प्रयास से लीलावती और माधव ने एक साथ आनंद से व्यतीत की और दूसरे दिन प्रातःकाल लीलावती को समझा कर घर लौट आया तथा उसके ध्यान में मग्न रहने लगा।

माधव का सौंदर्य और उसका वीणावादन इतना आकर्षक और हृदयग्राही था कि नगर की सारी स्त्रियाँ अपने गृह-कार्य को छोडकर उसकी ओर दौड पडती थीं तथा अपनी सुध-बुध खो देती थीं। स्त्रियों की इस दशा को देखकर पुरुषों में बडा असन्तोष फैल रहा था और एक दिन सबने एकत्रित होकर राज-दरबार में माधव पर अभियोग लगाया कि वह अपनी सम्मोहिनी शक्ति से स्त्रियों को वशीभूत करता फिरता है इसलिये नगर की स्त्रियां कुलटा होती जा रही हैं।

राजा ने माधव की सम्मोहिनी शक्ति और वीणावादन की परीक्षा लेने के लिये उसे अपने दरबार में आमंत्रित किया। माधव के पंचम राग ने रनिवास की रानियों को मदन से पीडित कर दिया। राजा स्वयं उस नाद पर अपनी सुधिबुधि खो बैठा। अन्त में इस परीक्षा के उपरान्त राजा ने माधव के निष्कासन की आज्ञा दे दी।

पुष्पावती को छोड़कर माधव लीलावती के वियोग में दुखी होकर बांधोगढ़ पहुँचा और एक पेड़ के नीचे बैठकर विश्राम करने लगा। इस वृक्ष पर एक सुआ रहता था जो बड़ा विद्वान था। यह सुआ माधव को उपदेश और आश्वासन देकर उसके दुख का शमन किया करता था। इस प्रकार बांधोगढ में माधव ने चतुर्मास व्यतीत किया जिसके अनन्तर उसने कामावती की राह ली। सुआ भी उसी नगरी में एक तमोली के घर जाकर रहने लगा।

एक दिन माधव अपनी वीणा लिये राजा की ड्योढ़ी में पहुँचा किन्तु दौवारिक ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। अन्दर मृदंग बज रहे थे और एक नर्तकी नृत्य कर रही थी। मृदङ्ग की धुन एवं नर्तकी के ताल को सुनकर माधव ने कहा कि स्वर भंग हो रहा है इसलिये नर्तकी का नृत्य ठीक नहीं हो पाता है। और बताया कि पूर्वाभिमुखी मृदंगी का अंगूठा मोम का है इसलिए स्वर-भंग हो रहा है।

दौवारिक ने इस अद्‌भुत ब्राह्मण की बात राजा को बताई। राजा ने इसकी परीक्षा की और फिर इसकी सचाई को देखकर उसने माधव को अन्दर बुला-भेजा। माधव को वस्त्रों के अतिरिक्त गजमुक्ता की माला उपहार स्वरूप भेंट की। माधव और कामकन्दला की चार आँखें हुई और कन्दला माधव पर मोहित हो गई। इसके उपरान्त कन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ। जिस समय कन्दला तन्मयता से नृत्य कर रही थी उसी समय एक भ्रमर आकर उसके कुच के अग्र भाग पर बैठ गया और दंशन करने लगा। कन्दला ने नृत्य में बिना किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम उत्पन्न किए हुए अपने शरीर की सारी वायु को बटोर कर कुच के अग्रभाग से छोड़ा जिससे भ्रमर उड़ गया किन्तु कन्दला की इस कला को माधव के अतिरिक्त कोई नहीं समझ सका। उसपर माधव ने राजा के द्वारा प्रदत्त गजमुक्ता की माला को कन्दला के गले में डाल दिया।

तदनन्तर कन्दला ने माधव की वीणा और गान सुनने की अभिलाषा प्रकट की। माधव ने भूल से अपना पञ्चम रागफिर अलापा और तान छेड़ दी। इस तान पर सारी सभा तथा राजा और कन्दला चित्रवत होकर सुधि-बुधि खो बैठे। फिर उसने ऐसा राग गाया की सारी मशालें बुझ गईं। इस पर कन्दला ने दीपक राग गाकर मशालें जला दीं। माधव ने घननाद गाया और बादल घिर आए कन्दला ने सारंग गाकर बादलों को तितर बितर कर दिया। माधव ने क्रुद्ध होकर ऐसा राग गाया कि कंदला सारे राग-रागिनी भूल कर डर से थर-थर कांपने लगी। कंदला की इस दशा को देख कर राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने माधव को अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। कंदला ने घर आकर अपनी चेरी गोविंदा के

दाहिने हाथ में अग्नि ले ली और राजा से कहा कि अपने शिविर में जाकर देखो माधव के बाएँ हाथ में छाले पड़ गये होंगे। शिविर में लौटकर राजा ने माधव के बाएँ हाथ में छाले देखे इस पर उसे माधव और कन्दला के सच्चे प्रेम पर विश्वास हो गया।

दूसरे दिन विक्रमादित्य ने कामसेन के पास दूत भेजकर कन्दला को देने या युद्ध करने का सन्देश भेजा। कामसेन ने युद्ध की घोषणा की। दोनों पक्षों में घोर युद्ध हुआ, जिससे दोनों ओर के अनेक योद्धा मारे गए। इस पर कामसेन राजा के पास सन्देश भिजवाया कि मेरे मल्ल मोढ़ामल्ल से अपने किसी योद्धा से मल्ल युद्ध करा दो। अगर मैं विजयी हुआ तो तुम उज्जैनी का राज्य मुझे देकर चले जाओगे अन्यथा मैं तुम्हें अपना राज्य और कन्दला दे दूँगा। इसपर विक्रमादित्य राजी हो गया और उसने अपने मल्ल रनजोर सिंह को मोढ़ामल्ल से युद्ध के लिए भेजा। रनजोरसिंह विजयी हुआ और कामसेन ने कन्दला को विक्रमादित्य को सौंप दिया। विक्रमादित्य ने माधव को बनारस का राज्य दिया एवं हय, रथ आदि दिए। इस प्रकार कन्दला और माधव का पुनर्मिलन हुआ और दोनों आनन्द-सागर में निमग्न हो गए।

माधव को एक रात लीलावती स्वप्न में दिखाई पड़ी। उसे देखते ही माधव लीलावती, लीलावती चिल्लाकर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। माधव की इस दशा को देखकर कंदला बड़ी चिन्तित हुई। उसके पूछने पर माधव ने लीलावती के प्रेम की कहानी कंदला को बताई। इसे सुनने के उपरान्त कंदला विक्रमादित्य के पास पहुँची और उससे माधव की दशा बताकर लीलावती को माधव के लिए प्राप्त करने की भिक्षा मागी।

कामकंदला के कहने पर विक्रमादित्य और कामसेन ने ससैन्य पुष्पावती की ओर प्रयाण किया।

राजा गोविन्दचन्द विक्रमादित्य से मिलने आए। गोविन्दचन्द ने लीलावती का स्वयंवर सहर्ष स्वीकार कर लिया और खुद्दत्त ने अपनी कन्या माधव को ब्याह दी। इसके बाद दोनों राजे अपने देश को लौट गए और माधव लीलावती और कंदला के साथ आनन्द से रहने लगा।

प्रेम-व्यंजना

विरहवारीश की कथा विरही और बाला के सवाद के रूप में अंकित की गई है जिसमें कवि ने प्रारम्भ में प्रेमपंथ और उसकी कठिनाइयों एवं बीच-बीच में प्रेमी के धर्म का प्रतिपादन किया है। जैसे प्रेम कोई स्थूल वस्तु नहीं, वह मृणाल के तार से भी झीना तार है जिस पर होकर प्रेमी को चलना पड़ता

है, इसलिये इस पंथ के पथिक को बड़ी कठिनाइयों एवं मानसिक सतुलन की आवश्यकता पड़ती है।

अति छीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दे आवनो है।
सुई वेह के द्वार सकै न तहां परतीत को टांड़ो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेजहुतें चढ़ि तापै न चित डुलावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है॥

ईश्वर न करे किसी से किसी का प्रेम हो जाय। यदि प्रेम हो तो फिर किसी से उसके प्रियतम का विछोह न हो। अन्यथा उसको राम के अतिरिक्त संसार में कोई सहारा नहीं रह जाता। ससार के सारे काम छूट जाते हैं। मृत्यु प्रियतम के बिछुड़ने से कहीं भली है।

"जासो नातो नेह को सो जिन बिछुरै राम।
तासों बिछुरन परत ही परत राम सो काम।
परे राम सो काम संसारी छूटै।
छूटै न वह प्रीति देह छूटै जो टूटै।
कहै बोधा कवि कठिन पीर यह कहिये कासों।
सो जिन बिछूरै राम नेह नातो है जासो॥"

एक बार प्रेम कर उसे तोड़ना क्या? बोधा के अनुसार उस नर देह को धिक्कार है जिसने एक बार प्रेम किया और उसे निबाहा नहीं।

"माधवविपय सनेह निबहै तो निबहै सही।
धरै रहै नर देह नातो का संसार में॥"

किन्तु प्रेम की अग्नि में बिना कुछ कहे, बिना उसे प्रकट किए ही घुट घुट मरने में ही आनन्द है। वे मनुष्य मूर्ख हैं जो अपने प्रेम को किसी पर प्रकट कर देते हैं।

"दान मन्त्र अभियान काम कामा संग त्रिय पगि।
पुनि प्रीत रीति बोधा सुकवि प्रगट करत जे मन्दमति॥
कीजै इकन्त ये मन्त्र सब भये प्रगट उपजत विपति।"

प्रेम का दूसरो पर प्रकट होना ही विपत्ति का कारण बनता है किन्तु उस पन्थ में पड़कर लोकलाज इहलोक परलोक घर और गाँव एवं शरीर तक न्यौछावर कर देना पडता है। जो यह कर सकता है. वही सच्चा प्रेमी है।

"लोक की लाज शोक परलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोई।
गाँव को गेह को देह को नातो सो नेह पै हतो करै पुनि सोई॥

बोधा सो प्रीति को निबाह करै घर ऊपर जाके नहीं शिर होई।
लोक की भीत धरा तजौ मीत तौ प्रीति को पैड़े परै जिन कोई ।।"

संसार के प्राणी इस प्रेम की पीर को नहीं समझ सकते । वे केवल मास की जीभ ही चलाना जानते हैं ।

'कोऊ कहा कहिहै सुनि है काहू की कौन मनै नहिं भावत।
बोधा कहे को परेवो करे दुनियाँ सब मांस को जीभ चलावत ।।'

और सुखमय जीवन को व्यतीत करने वाले प्रेम की पीर को जान ही क्या सकते हैं, विरही की पीर को तो केवल विरही पहचान सकता है ।

'ब्याउर की पीर कैसे बांझ पहिचानै।
कैसे ज्ञानिन को बात कोऊ नर मानिहैं ।।
कैसे कोऊ ज्ञानी काम कथन प्रमान करै,
गुर को स्वाद कैसे बाउरे बखानि है ।।
कैसे मृग नैनी भावै पुरुष नपुंसक को।
कविको कवित्त कैसे शठ पहिचानि है।
जाने कहा कोऊ जापै बीत्यो न वियोग,
बोधा विरही की पीर कोई विरही पहिचानि है ।।"

इसलिए विरही को कभी भी अपनी व्यथा किसी पर भी प्रकट न करना चाहिए ।

'बोधा किसूसों कहा कहिये जो विथा सुन फेर रहे अरगाइ कै।
या तो भलो मुख मौन धरो के करो उपचार हिये थिर थाइ कै ।।
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहूँ जो कहै रंच दया उर लाइकै ।।
आवत हौं मुख लौं बढ़ि के पुनि पीर रहै हिय में ही समाइ कै ।।

वास्तव मे विरही के लिए घुट-घुट कर मरना ही शेष रह जाता है । मृत्यु से कोई भी नहीं बच सकता । ससार मे प्रत्येक रोग की औषधि है किन्तु कटाक्षों से घायल मनुष्य का कोई भी उपचार सम्भव नहीं है ।

'मिखी को जार्‌यो जियै सिंह को विदार्‌यो जियै,
बरछी को मार्‌यो जियै याको भेद पाइये।
गरल को खायो जियै नीर को बहायो जियै,
सापहू को काटो जियै यम हूँ को डाटो जियै ।।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

नारी का रूप और यौवन ही प्रेम का प्रथम सोपान है, इसलिये साहित्य में चाहे जिस देश का भी हो उसके अङ्गों, उपाङ्गों का वर्णन प्रत्येक काव्य में प्रधान रहता है। किन्तु इस वर्णन की परम्परा हिन्दी साहित्य में लगभग एक सी है, क्षीण कटि, बड़ी आँखें, उन्नत उरोज, त्रिवली और उसकी रोमावली का वर्णन और उपमानों की परम्परा लगभग प्रत्येक काव्य में एक सी ही मिलती है। हिन्दी की इस परम्परा को बोधा ने भी अपने नखशिख वर्णन में परम्परागत अपनाया है। अज्ञात यौवना और प्रौढ़ा का चित्रण भी इनमें पराम्परागत मिलता है। उनकी उपमाएँ भी पुरानी परिपाटी की हैं। जैसे, नायिका का मुख चन्द्रमा के समान है, उसकी चाल मस्तानी है, आँखें हिरनी के समान काली हैं, बालों की श्यामता सर्प के बच्चों के समान काली है। मुग्धा नायिका अज्ञात यौवना के रूप में अपने से ही खिलवाड़ करती दिखाई पड़ती है।

'है द्विजराज मुखी सुमुखी पीन कुचाहु गरूरी गररी गति।
है हिरनाक्षय बाल प्रवीनिय ज्यों द्युति दामिनि की करि छानिय ॥'

× × ×

है न वड़ी अति प्रीति भरी त्रिय तीक्षण भौंहहूँ कटाक्ष कर्‍योविय ॥'
खेलति-सी उलती मग डोलहि कंचुकि आप कसै अरु खोलहि।
हार उतारि हिये पहिरै पुन पाव धरै लहियौं न उराधन ॥'

कुचों के सौंदर्य वर्णन में भी कवि ने परम्परा को ही अपनाया है।

'हाटक बरन कठिन उन्नत कुच गोल-गोल गद कारे।
कमल वेल गेंद नारंगी चक्रवाक युग वारे ॥'

परम्परा से बद्ध इस कवि की कल्पना भृकुटी और कटि के वर्णन में नवीन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं को लेकर प्राचीन में भी नवीन का रस संचार करती हुई दिखाई पड़ती है। ठोढ़ी पर पड़े हुए गड्ढे को देखकर कवि की कल्पना जागरूक हो उठती है और वह कहता है कि क्या राहु ने अमृत के लाभ के लिये चन्द्रमा के धोखे में नायिका के मुँह को दबाया है जिसके कारण उसकी उँगली का निशान पड़ गया है।

"मुकुर कपोल गोल गद कारे, गाड़ेन परी नवीनी।
जनु शशि ग्रसत राहु रस कारण गरुड़ आंगुरी दीनी ॥"

किसी कोमल वस्तु को हाथों से पकड़ कर दबोचने में ऊँगली का चिह्न पड़ जाना स्वाभाविक ही है, केवल एक ही शब्द से कवि ने कपोलों की कोमलता और उनके सौंदर्य को अद्भुत बना दिया है।

सुन्दर चाद के समान लाल बिन्दी ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्द्रमा में वीरबहूटी सुशोभित हो रही हो।

> "लसत बाल के भाल में रोरी बिन्द रसाल।
> मनो शरद शशि में बसो वीर बहूटी लाल॥"

इसी प्रकार कटि की क्षीणता भी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है।

> "कमल मृणालहू ते छीन योगी कैसी आशा याई रूप मानियतु है।
> सुमन सुगंध कवि अङ्क न अरथ जैसे गणित को भेद सखियों बखानियतु है॥
> योधा कवि सूत के प्रमान ब्रह्मज्ञान जैसे चलत् हलत यो प्रमानियतु है।
> दृष्टि में परे ना यों अदृष्टि कटि तेरी प्यारी है वै है तो विशेष उनमान जानियतु है"

संयोग शृंगार

जिस प्रकार ग्रीष्म में तप्त भूमि के वक्षस्थल पर वर्षा की प्रथम बूंदे पड़ते ही पृथ्वी एक ठंडी सोंधी उसास ले उठती है, उसी प्रकार विरह वियोग से पीड़ित दो हृदय जब भाग्य अथवा परिस्थिति की अनुकूलता के कारण सन्निकट हो जाते हैं तब उनसे फूट पड़ने वाला आनन्द-प्रवाह मर्यादा और सामाजिक बंधनों का अतिक्रमण कर नैसर्गिक रूप में अपनी गति से बह निकलता है। वह रुक नहीं सकता, रोका नहीं जा सकता। प्रेयसि और प्रियतम का प्रथम मिलन उससे उत्पन्न आनन्द और साथ ही साथ नारी के आत्मसमर्पण के पूर्व की स्वाभाविक लज्जा, झिझक, झुंझलाहट और उल्लास संयोग शृंगार का एक पक्ष इनकी रचना में बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित हुआ है। प्रियतम के आलिंगन से उसके नोक-झोंक से झिझक कर भागने तथा दूर हटने की क्रिया, किलकिंचित हाव के रूप में कवि ने संयोजित किया है।

> "तिय चाहत बांह छुड़ाय भजो। पिय चाहत है कबहूँ न तजो।
> कसि कै सिसकै रिस चित्त धरै। ननकार विकारन ओर करै।
> जबहीं पिय की बांहु पियनाथ गहै। तबहीं तिय वासों छोड़ कहै।
> पग के छुवतै अकुलात खरी। मुख ये निकसै सखि हाय मरी।
> कर छूटत बाल उठ धाय चलै। तब माधव पीन उरोज मलै॥"

किन्तु उद्धत प्रियतम मानता ही नहीं और नारी घर और बाहर के लोगों के सकोचवश शोर भी नहीं मचा सकती।

"पुर लोगन को डर वाल हिये। बिगरै सो रंचक शोर किये।
पिय सों विनवै जिन वांह गहौ। तज और सबै हठ सोय रहो।
हंसिये खेलिये करिये बतियां। रतिनाथ न हाथ धरौं छतियाँ॥

किन्तु मदन ज्वर से पीड़ित मानव भय और लाज एवं संकोच को तिलांजलि दे देता है। उसके भीतर जाग्रत पशु किसी प्रकार शमन होना जानता ही नहीं। उसकी इस मुद्रा पर भयभीत होकर विवश नारी कांप उठती है।

'अति कोपित कंथ भयो तबही थहरान लगी वनिता तबहीं।

फिर भी वह अपनी लज्जा रूपी कोष की रक्षा करने के लिये सभी प्रयत्न करती है।

'पटुचाप रही कसि जंघ दुवो। पिय सों विनवै जिन अङ्क छुवौ।
बलकै करसों कुच चाप रही। पिय तब घंघरा की फूंद गही।
झकझोरत छोरत छोर किये। लपटी भय लाजत बाल हिये।
कर में पारद जोर किये। नवढ़ा तिय को रस ज्यों चखिये।'

किन्तु आत्मसमर्पण की अवस्था पहुँच ही जाती है नारी में भी तो वासना की भूख होती है। लज्जा के आवरण में छिपी हुई चिनगारी, पुरुष की उद्दतता से कुरेदी जाने पर अपनी स्वाभाविक चमक से निखर उठती है।

'घुंघरू घायल से बिहरैं। जनि श्रोणित स्वेद प्रवाह ढरैं।
कुच शूर भले रणमाह लरैं। दोउ जंघ सुजानहुँ ते न टरैं॥'

सोहाग रात का यह चित्रण जितना ही सजीव बन पड़ा है, उतना ही सजीव प्रेमी और प्रेयसि के बीच होने वाले प्रेम 'संग्राम' को भी कवि ने माघ मास के उमड़े हुए बादलों के रूपक में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है।

'घन घोर घुंघरुन के शोर छाए। घटा से चटा के उमड़ मैन आए॥
खुले केश चारो दिशा श्यामतासी। दिपे देह दीपत तामें छटता सी॥
परै मोतियाँ ज्यों गिरै बूँद भारी। मची स्वेद की कीच यों देहसारी॥
तहाँ इन्द्र पिनाक सी बांकि भोंहै। तिन्हों के परे खौर त्रै रेख सोहै॥
परै पांयते ओर से वज्र भारी। धरा सी तहाँ जोर धरकै है नारी॥
कपै शैल से दोउ उरोजै। वली सों चली है दुर्यों तो मनोजै॥
तहाँ भूरिआ चूड़ियाँ चारु बोलै। मनों कोकिला मेघ झिल्ली किलोलै॥
हते प्रेम संग्राम योधा बखानों। माघ मास कैसो तमाशो बखानो।

और फिर इस संग्राम के योद्धा और घायलों की आवाज पर भी कवि का ध्यान जाने से नहीं छूटा है।

"क्वारें जैत वारे के वरे या कुच
मल्लयुद्ध के करैया कहूँ टारे न टरत हैं।

सुभट विकट 'जुरे' जंघ बलवान
ते भुजान सों लपटि ना नेकु बिहरत हैं ॥
बोधा कवि भृकुटि कमान नैना,
बानदार तीक्ष्ण कटाक्ष सर झेलसे परतु हैं।
दम्पति सों रति बिहार बिहरत तहाँ,
घायल से पायल गरीब बिहरतु हैं ॥

प्रथम मिलन की झिझक मिट जाने के उपरान्त नारी का खिलवाड़, रति के लिए झूठी झुंझलाहट दिखलाना एवं मान करना तथा 'सुद्धी' करने की धमकी आदि देने की स्वाभाविक क्रीड़ा और प्रियतम का इस पर रूठ कर चल देना और फिर कामनी का मनाना आदि नाना मनःस्थिति का चित्रण भी बड़े ललित और मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित हुआ।

अति अनखोहैं लोचन कीन्हें । चरन खैंच कंधन से लीन्हें ।
चरन उठाय अतिहि अनखाई । पिय को सौंह अनेक दिवाई ।
उभकन झमकन कही नहिं मानत । बरबट मान समासो ठानत ।
छूटी जात नाहि बसन सम्हारत । टूटी प्रीति सुरते उचारत ।

× × ×

कही न बात बालम की मानी । चली रूस अतिहि खिसियानी ॥
तब माधव बीणा लीना । चल्यो रिसाय हिये रस भीना ॥
'जय श्री राम विप्र उचारी । कृपा करत रहिये सुन प्यारी ॥
सुनके बाल मंद मुसक्यानी । डगर चल्यो माधो द्विज ज्ञानी ॥
भपट बाल बहियाँ गहि लीन्हीं । बूझी कितको यात्रा कीन्हीं ॥
अब यह गुसा माफ कर दीजे । चलिये बहुरि अमायस कीजे ॥

विप्रलम्भ शृंगार

इस कवि ने जहाँ सम्भोग शृंगार का कोना-कोना छान डाला है, वहाँ इसके विरह वर्णन में भी बड़ी सजीवता दिखाई पड़ती है। संयोग में जो वस्तुएँ सुखकर होती हैं, वही वियोग में दुखदाई बन जाती हैं। प्रकृति के नाना दृश्यों का प्रभाव जहाँ संयोग में सुख की सृष्टि करता है वहीं वही दृश्य वियोग में दुख को और भी प्रगाढ़ और स्थाई बना देते हैं। वसन्त ऋतु के आने पर वियोगिनी कितनी दुखी होती है, यह 'बटपारन' शब्द से पूर्ण व्यंजित हो जाता है।

'बटपारन बैठि रसालन पैं कोयली दुख दाय करें ररिहैं।
बन फूले हैं फूल पलाशन के तिनको लखि धीरज को धरिहैं ॥

कवि बोधा मनोज के ओजन सो विरही तन तूल भयो जरिहैं।
कछु तन्त नहीं बिनु कंत भट्ट अबकी धौं वसन्त कहा करिहैं ॥'

काकिल की काकली से विकल होकर नायिका ब्रह्मा की मूर्खता पर क्रुद्ध होकर अपनी झुंझलाहट व्यक्त करती है।

'मुख चार भुजा पुनि चार सुनैं हद बांधत वेद पुरानन की।
तिनकी कछु रीझ कही न परै, इहि रूप या कोकिल तानन की॥
कवि बोधा सुजान वियोगी किये, छवि खोई कलानिधि आननकी।
हम तौ तबही पहिचानी हती चतुराई सबै चतुरानन की॥

कलमुही काकिल को इतना सुन्दर कठ दिया। सुजान प्रियतम को वियोगी किया। ब्रह्मा के सारे कार्य हो खोटे हैं, परिस्थितियों के वश होकर जब मनुष्य हतबुद्धि हो जाता है, तब उसे ईश्वर के विधान मे ही कमी प्रतीत होने लगती है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है, जो फन्दला के द्वारा कवि ने व्यक्त किया है। इसी प्रकार बाग-तड़ाग में खिले हुए कमल और पलाश के फूल वियोगिनी के लिये अंगारे जैसे जान पड़ते हैं।

'प्रफुलित कञ्ज फुले जल माही। मनहुँ पुन्न वड़वा के आंहीं॥
देखत दहत वियोगी लोचन। विनु सहाय ब्रजपति दुख मोचन॥
दशहुँ दिशि पलाश छवि छाई। मनहुं सकल वन लाइ लगाई॥
यह निधूम दवागिनि सोई। पान कीन्ह गिरधारी सोई॥'

इसी प्रकार जिस पक्षी का बड़े प्यार से पाला था वही अब वियाग में बैरी बन गया है।

'पाली हती मयूर अलो हौं चाहि के
सौंत भई अब क्रूर विरह वस पावस निशा।

बादलों की घुमड़ पर जब मार प्रसन्न होकर नाच उठता है, तब वियोगिनी का हृदय प्रसन्न न होकर दुख से भर जाता है। ऐसे ही प्रावस की काली रात काटे नहीं कटती। उसे वह प्रलय की घटा के समान अनन्त जान पड़ती है।

'महाकाल कैंधों महाकाल कूटै। महाकालिका के कैंधों केश छूटै॥
कैंधों धूम धारा प्रलय काल वारी। कैंधों राहु रूप रैन कारी॥'

सावन के दिनों में जब सयोगिनी नारिया प्रसन्न बदन गलबाही डाले हुए घूमती फिरती हैं अथवा प्रियतम के साथ हिंडोला झूलती हैं तब वियोगिनी का हृदय दुख और ईर्षा से कराह उठता है।

'गल बांही डौलैं इगराती। नवल नारि जोवन मदमाती॥
दंपति मिलै हिंडोरा झूलहिं। मोहि विरहा की शूल न भूलहिं॥'

मनुष्य पीड़ा की अधिकता में अपनी सुध-बुधि खो देता है। उसे जड़ और चेतन का ध्यान नहीं रह जाता। वह पशु-पक्षी पेड़ पौदों से अपने मन के प्रश्न का उत्तर चाहता है और उनके न बोलने पर झुँझला उठता है।

'बिछुड़े का दिल मन में आवे। अरे नीम तू क्यों न बतावे॥
क्यों पीपल तू थल हल डोले। इमली क्यों न बाउली बोले॥'

प्रेम की रीति कुछ विचित्र है। प्राणों का घातक बहेलिया भी मृग को मार कर उसे अपने सर पर चढ़ा कर ले चलता है, किन्तु प्रियतम इतना निष्ठुर है कि घायल कर के सुध भी नहीं लेता।

'बध कुरंग को बहेलिया लावत शीश चढ़ाय।
मेरी सुधि लीन्हीं न तू हिये नैन शर लाय॥'

केवल प्रियतम की आशा और उसके नाम पर ही विरहिणी बाला जीवित रहती है। वियोग में भी प्रियतम का संयोग अग्निशिखा के रूप में उसके जीवन दीपक को प्रज्वलित किए रहता है।

माधौनल तुव नाम दीपक राग समान तिन।
जगत दिया लौं बाम इहि संयोग जीवत रहत॥

वह जीवित रहते हुए भी मृतक के समान रहती है। इसलिए उसे चाँदनी रात और ऐश्वर्य के सारे सामान दुःख ही देते रहते हैं।

''चांदनी रात जरी की जरी तकिया अरु गेंडुआ देखि रिसाती।
राती हरी पियरी लगी भालरैं केसर धरी घिरी नहिं खाती॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरहवारीश में संयोग और वियोग का चित्रण बड़ा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हुआ है। उसमें प्रेम के मानसिक और शारीरिक पक्ष का सन्तुलन इतनी कुशलता से किया गया है कि कहीं अनौचित्य की छाया भी नहीं पड़ने पाती, वरन् कवि द्वारा निर्मित 'शब्द चित्र' सजीव और मनोहारी बन पड़े हैं।

भाषा-शैली

इस काव्य की रचना विरही और बाला के संवाद के रूप में की गई है, जो नौ खण्डों में वर्णित है। कवि ने स्वयं एक छप्पय में कथा और उसके खण्डों का वर्णन प्रारम्भ में दे दिया है।

'प्रथम शाप कन बाल द्वितीय अरुण्ड खण्ड गन।
पुनि कामावत देश वेस उज्जैन गवन मन॥
युद्धखण्ड पुनि गाढ़ रुचिर शृंगार बखानो।
पुनि बहुधा वन देश न उस वर ज्ञान बखानो॥

कही प्रीति रीति गुन की सिफत नृप विक्रम को सरस यश।
नौ खण्ड माधवा कथा में। नौ रस विद्या चतुर्दश ॥'

कथा के पूर्व गणेश की वन्दना है। गणेश की वन्दना के उपरान्त श्रीकृष्ण की वन्दना कवि ने की है। तदनन्तर कवि ने राजा छत्रसिंह का परिचय तथा अपने देश छोड़ने तथा स्थान-स्थान पर भ्रमण करने का उल्लेख किया है। इसके उपरान्त प्रेम तथा उसके पथ की कठिनाइयों का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कथा का प्रारम्भ किया है।

भाषा चलती हुई ब्रज है, जिसके बीच-बीच में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे कुलिश, व्रज, धृक, अमृत, पिनाक, उन्नत, विष, वल्लभा, द्रुम, करपत आदि। इसके साथ ही उर्दू और फारसी शब्दावली की छटा भी दिखाई पड़ती है। जैसे, महबूब, दिल-माहिर, जाहिर, एतराजी, गुस्सा, इश्क, आशिक, दगा, दगादार, शहर आदि।

भाषा भाव के अनुकूल कोमल एवं कठोर, गम्भीर एवं चंचल होती चलती है। शब्द-चयन बड़ा लालित्यपूर्ण एवं भावव्यंजक है, जैसे—

'सरकि सरकि सारी सरखि सरखि चूरी मुरकि मुरकि कटि जाय यो नवेली की।
बोधा कवि छहर-छहर मोती छहरात थहर-थहर देह कंपित नवेली की ॥'

यही कोमल पदावली युद्ध वर्णन में कठोर और भावानुकूल बन जाती है। जैसे—

इतहि वीर हम्मीर हंकित। हूंक सुनत पुरहूत कंपित ॥
धराधर-धराधर धर धरकत धर। भूमि शैल दिग्गीश धर ॥
वजत तरपड़ शुंड भट-भट। शूल खड्ग कृपान खट्-खट् ॥
भरत शोणित वुन्द भऋन। पड़े शोड़ित कुंड रुंडहि ॥
भक-भक भभकंत सुंडह। सरासर सरसंत सरवर ॥'

इसी प्रकार नृत्य करते समय तबले के थाप और घुँघरू से निकले हुए बोल शब्द चयन के द्वारा बड़ी सुन्दरता से व्यक्त हो सके हैं।

'था-था-था थुगादिक थुकंत शुङ्गी शुनि शुगिरट ॥
फं-फं-फं फुगादिक फुकंत बोलत संगीनट ॥

साधारण चलती हुई भाषा का भी एक नमूना देखिए—

तिय की गही पियने बाँह। तब तिय कही नाहीं नाँह ॥
मोंको दरद दोइहैं मित्त। ऐसी आनिये नहिं चित्त ॥'
नहीं कहत बारम्बार। टूटत जलज मणिय हार ॥
कुच के छुवत भुकि भहरात। तकिया ओर टरकत जात ॥'

नित्यप्रति की कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी हमें इनमें मिलता है। जैसे—

'धोबिन सों जीतैं नहीं मलत खरी के कान।'

× × ×

परछाइयों को खोट का घर को खोटो दाम।

× × ×

उगलत बात बनै ना सांप छंछूंदर की कथा।

दक्खिनी हिन्दी का परिचय भी इनकी भाषा मे प्राप्त होता है।

'नशा कभी न खाते हैं। अये हम इश्क मदमाते हैं॥
गए थे बाग के ताईं। उनै वे छोकरी आई॥''
उन्हीं जादू कुछ कीन्हा। हमारा दिल कैद कर लीन्हा॥

अथवा

इश्क दिलदार सों लागा। हमने दिल दर्द अनुरागा॥
खड़ी फुलवारियाँ खेलैं। जम्हीरी हाँथ सों भेलैं॥

अलङ्कार

इस कवि ने समय की परिपाटी के अनुकूल सादृश्यमूलक अर्थालङ्कारों का प्रयोग किया है, जिसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और सन्देह, तथा लोकोक्ति विशेषरूप से पाए जाते हैं।

उपमा—है द्विजराज मुखी सुमुखी अति पीन कुचाह गरूरी गरदी गति॥

× × ×

'नीवी के छुवत प्यारी उलथि पलथि जात
जैसे पवन लगे लोट जात वेली ज्यों चमेली की॥

उत्प्रेक्षा—'कनक कुलिश से चारु कुच गहे मरोरत कंत।
मनहुँ लङ्क को शीश गहि हिलरावत हनुमंत॥"
लसत बाल के भाल में रोरी बिन्द रसाल।
मनो शरद शशि में बसी वीर बहूटी लाल॥

लोकोक्ति—'लीलावती के बैन सुन माधो चुप हो रह्यो।
उगलत बात बनै न सांप छंछूदर को कथा॥'

सन्देह—'महा काल कैधों महाकाल कूटैं।
महाकालिका के कैधों केश छूटैं॥
कैधों धूम धारा प्रलय काल वारी।
कैधों राहुरूप कैधों रैन कारी॥

शब्दालंकारों में छेक और वृत्यनुप्रास बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है।

'सुमन सुगंध कवि अंक न अरथ जैसे
गणित को भेद सवियो वखानियतु है।'

× × ×

तै तो हेरी हरिण ओर हरिण हर्‌यो हरि ओर
हरि हेरो विधि और गुसा यो विचार्‌यो है।'

छन्द.

इस काव्य में दोहा और चौपाई प्रधान है, किन्तु अन्य छन्दों का प्रयोग भी किया गया है। जिसमें त्रोटक, सोरठा सधारका, दुविला, दंडक, छप्पय, सुमुखी, कुंडलिया, तोमर, गाथा, हरिगीतिका और मोतीदाम प्रधान हैं।

त्रोटक—'सुरझी फिरना उरझी जबतें। हरि ही अनुराग रही जियतें॥
बिलखै सिगरी न लखै पिय को। कलपै तलफै न लखैं पिय को॥
हरी हो हरि हो हरी हो रटनी। दम ऊरध लैं दमसी भरती॥
निशिवासर यो करुणा करती। मूर्च्छा लहि हा कहि भू परती॥
कबहूँ वन कुञ्जन में विहरैं। लखि केलि सहेठ बिलाप करैं॥
कबहूँ गज झुंडन देखि डरैं। हरिजू बिन को वन माहि चरैं॥'

सोरठा—'हिय ते बिछुरे नाह हिम ऋतु इमि आगत जगत।
उलटो एक पनाह शीत दिवस दाहैं करत॥'

सधार का छन्द—'शिर जर्द पाग बिलसत सुवेश।
रहि जुल्फ जुल्फ घुँघरारि वेश॥
उर सुमन हार तुर्रा जरीन।
कुम कुम त्रिपुण्ड भृकुटी परीन॥

दुविला छन्द—कटि पीत पट्ट शुभ देख। कछनी सुरंग विशेख॥
कल बीच मुक्तमाल पग पउड़ी लही लाल।

दंडक—चौखटा नबेली जहाँ पौन को न गौन ऐसो,
ठौर मन भावती सो हेत को निवाहिये।
चाहिये मिलाप बिसारिये न एको बेर,
मिलवे को कोटि कोटि बाते अवगाहिये॥
बोधा कवि अपने उपाय में न कमी कीजै,
दुसतुम्रेलन की दुष्ट पै न चाहिए।
समय पाय बन जाय कीजै सौ उपाय आली,
दूसरों न जानै तो इश्क सराहिये॥

छप्पय—कह चकोर सुख लहत भीत कीन्हा रजनी पति।
कह कमलन कह देत भान सह हेत कीन्ह अति॥
घुन कहं कहाँ मिठास लकुट भूरी टकटोरत।
दीपन संग पतग आय नाहक शिर फोरत॥
नहिं तजत दुसह यद्यपि प्रगट बोधा कवि पूरी पगन।
है लगी जाहि जानत वही अजब एक मन की लगन॥'

छन्द सुमुखी—लीलावती ने यह सुधपाई। माधव को निकरावत राई॥
जग भय छोड़ के कुल कान। नृप पै चली अतिहि रिसान॥
कर गहि माधव को लीन्ह। इहि विधि निंह ठां कीन्ह॥
को समरत्थ लखि इहिवार। देहैं माधवहि निकार॥

छंद नराच—गहैं सुबांह विप्र की सकोप बात यों कहै।
बताव मीति मोहिं तोहिं काढ़ि देन को कहै॥
शाप देउ तासको सुनु सो हाल ही करौ।
उतार शीश देहते हजूर राइ के धरौ॥

दुमिला—वह को विंदा जो बाल।
तिहि रची सेज विशाल।
पुनि सजे भूषणवेश।
विलसू जवार सुदेश।
तितदंपति हिये उठाइ।
वह गई झट पगलाय।
तब माधव उनमान।
रति करी तजि कै कान॥

तोमर—द्विज पूछयो शुक काहि। टिकिए कहाँ पुरमांहि।
तब यों कह्यो परवीन। नृप बाग चाह नवीन॥

गाथा—हो कंदला परवीनं। तुव वियोग भय दुख लीनं॥
छिना-छिना छिन दीन। बुद्धि रटत माधव योगी॥

मोतीदाम—चल्यो दल दीरघ विक्रम समाज। उठे वड़ि मत्त मतंग राज।
ररै रण मार बढ़ा हिय जोर। कवित्तन मंडित भाटन शोर॥
कंपै जिमि भूमि चलै दलपात। लखै दिशि चार ध्वजा फहरात॥
रिग्यौ सिगरे दिन तापुर मांझ। भई पुर बाहिर आवत सांझ॥

हरिगीतिका—गुण ग्राम बधिक सुजान आशिक पायके सुखपाय हैं।
मृगछाल हाल बिछाय तापर राग सुंदर गाय हैं।

यह समुझि कै मजबूत दोनों देह भिक्षा देत हैं।
न समान तिनके आनधन मृगउ यहै गति लेत हैं।

इस प्रकार स्वच्छन्द प्रेमाख्यानों की परम्परा में बोधा का विरहवारीश भाव, भाषा, छन्द, अलंकार-योजना, घटना के संविधान हृदय ग्राही शाब्दिक चित्र, मनोवैज्ञानिक भावाभिव्यक्ति और काव्य सौष्ठव की दृष्टि से एक सफल रचना है। स्वच्छन्द प्रेमाख्यान होने के कारण तथा तत्कालीन काव्य में रीतिबद्ध काव्यों की शृंगारमयी रचना के प्रभाव से हमें विरहवारीश के संयोग पक्ष में रति विषयक कुछ ऐसे वर्णन मिलते हैं जो आज कल की दृष्टि से अश्लील या अमर्यादित कहे जा सकते हैं।

श्लील और अश्लील का प्रश्न उठता अवश्य है किन्तु किसी भी कवि की आलोचना करते समय हमें तत्कालीन काव्य-प्रवृत्तियों एवं कवि के क्षेत्र को न भूल जाना चाहिए। प्रेम काव्यों में प्रेम का सयोग और वियोग अवस्था का चित्रण ही मुख्य रहता है। हमें देखना यह है कि कवि अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है। हमारा अपना विचार है कि बोधा ने अपने काव्य में इस दृष्टि से असाधारण सफलता पाई है और प्रेम काव्यो की कोटि में यह किसी भी काव्य से कम महत्व का नहीं कहा जा सकता। वरन् यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि स्वच्छन्द प्रेम काव्यों में विरहवारीश सर्वोत्कृष्ट रचना है।

माधवानल कामकन्दला

गणपतिकृत

रचना काल सं० १५८४

कवि-परिचय

कविवर गणपति के पिता का नाम 'नरसा'[1] था। आप जाति के कायस्थ थे। आपका निवास स्थान नर्मदा तट पर 'आम्र पद' में था। इनकी रचना के अन्तर्साक्ष्य से केवल इतना ही पता चलता है। कवि का पूर्ण जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

एक समय सरस्वती के तट पर शुकदेव जी शिव की कठिन तपस्या में रत थे। वेदव्यास ने कामदेव को बुला कर उससे शुकदेव जी को तपस्या से डिगाने की प्रार्थना की, इसलिए कि गार्हस्थ जीवन में वह शुकदेव जी को रत देखना चाहते थे ताकि उनका वंश आगे चल सके। कामदेव ने अपने दल बल के साथ शुकदेव पर चढ़ाई की किन्तु तमाम प्रयत्न करने के उपरान्त भी वह असफल रहा। अपने पति को इस प्रयास में विफल देखकर रति ने उसे ढाढ़स बधाया

---

१. 'कवि कायस्थ कथा कहइ, नरसा सुत गुणपति।
ढाढर कंटइ ढुकड, आम्रदरि अधिवास।
मध्यपंथि मही नर्मदा, बल कृणि जलरासि ॥ १६॥
प्रथम अंग।
'नरसा सुत गणपति कहइ अग थया ए आठ।
सुधइ स्वामिनी शारदा, पोतइ दीधु पाठ ॥२१६॥
दीमइ दस गाऊ मही, दस गाऊ मरथान।
दश गाऊ पणि नर्मदा, आम्रपद्र स्वस्थान ॥२१७॥
कवि न्याति कायस्थ वड़, वालिमि विख्यात।
पूरू ऐ पद सम्धता, दीह थया दह सात ॥२२१॥
'अष्टम सग'

और कामदेव तथा रति ब्राह्मण तथा वेश्या के रूप में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ शुकदेव जी तपस्या कर रहे थे। उन्होंने शुकदेव जी के सामने ही विहार प्रारम्भ कर दिया। शुकदेव एक ब्राह्मण को वेश्या में रत देख कर बड़े क्रुद्ध हुए। इस पर उन्होंने कामदेव और रति से वादविवाद किया। ब्राह्मणरूपी कामदेव ने कामी प्रसंग को ही जीवन की अमूल्य निधि घोषित किया। शुकदेव ने अन्त में दोनों को मृत्यु लोक में जन्म लेने का शाप दे दिया और यह भी कहा कि तुम लोग अपने माता पिता से सर्वदा अलग रहोगे। एक स्थान पर न ठहर कर भटकते फिरोगे। तथा कामपीड़ा से पीडित और व्याकुल रहोगे।

इस शाप के फलस्वरूप कामदेव का जन्म कुरंगदत्त ब्राह्मण के यहां हुआ। एक दिन मृग के रूप में एक यक्षिणी ब्राह्मण की कुटिया के पास घूम रही थी। पञ्चवर्षीय माधव को अकेला देख कर वह उसे उठाकर लङ्का की ओर भागी। राजा गोविन्द चन्द उसी समय आंखेट के लिए गए थे। उन्होंने इस हिरणी के पीछे घोड़ा डाल दिया और उसे मार डाला। एक पञ्चवर्षीय बालक को हिरणी के पास देखकर वे बड़े चकित हुए। बालक ने रो कर अपना हाल बताया। किन्तु वह अपने पिता का नाम और स्थान न बता सका। गोविन्द चन्द इस बालक को पुष्पावती ले गये और अपने पुरोहित रुद्रदत्त को उसे सौंप दिया। बालक का नाम माधव रखा गया। उसने थोड़े ही समय में सारी विद्याएं जान लीं। युवक होने पर वह नित्य प्रति महल में पूजा कराने जाया करता था। महाराज गोविन्द चन्द की पट्ट महाराणी रुद्र देवी उस पर आसक्त हो गयीं। उन्होंने एक दिन अपना प्रेम उस पर प्रकट किया किन्तु माधव ने उन्हें मा सम्बोधित कर इस प्रेम को वर्जित एवं कृतघ्न बताया।

रुद्र देवी ने माधव के इस व्यवहार पर क्रुद्ध होकर उससे प्रतिशोध लेने की ठानी। और कोप भवन में जा पहुंचीं। राजा के पूछने पर उन्होंने बताया कि माधव बड़ा कामी है उसकी कुदृष्टि रनिवास के प्रत्येक नारी पर पड़ती है। आज उसने हमारे साथ भी कुत्सित व्यवहार करना चाहा था। राजा इसे सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ और माधव को अपने राज्य से निकाल दिया।

पुष्पावती को छोड़ कर माधव अमरावती नगरी पहुँचा जहाँ रामचन्द्र राज्य करता था। इस नगरी की सारी प्रौढ़ाएँ एवं नवयौवनाएँ उस पर आसक्त हो गईं। उसे देख कर स्त्रियों के गर्भपात हो जाते थे तथा अपने पति के पास जाना पसन्द नहीं करती थीं। इस कारण से दुखी होकर प्रजा ने राजदरबार में माधव को देश से निकाल देने की प्रार्थना की। अकारण ही किसी विप्र को देश निकाला देने में राजा को बड़ा संकोच होता था। इसलिए प्रजा की बात को

सत्यता की परख करने के लिये माधव को दरबार में बुलाया गया और काला तिल बिछा कर पटरानी के साथ बीस स्त्रियों के साथ बैठाया गया। माधव के सामने आते ही ये स्त्रियां कामान्ध हो गई और अपने को सम्हाल न सकीं। जब ये उठीं तो उनके पीछे तिल चपके हुए थे। इसको देखकर राजा को जनता की बातों पर विश्वास हो गया और उन्होंने माधव को अपने राज्य से चले जाने की आज्ञा दी। माधव इस प्रकार पुष्पावती नगरी पहुँचा जहाँ कामसेन राज्य करता था।

इधर रति का जन्म 'पातीशाह' सेठ के यहाँ हुआ। सेठ जी के चार पुत्र थे। पुत्री जन्म पर उन्होंने बड़ा समारोह किया। इस समारोह में 'बीभू' वेश्या उसके यहा नाचने आई। यह वेश्या सामुद्रिक विज्ञान की ज्ञाता थी। बालिका के लक्षणों को देख कर उसने जान लिया कि यह बालिका वेश्या होगी। निःसन्तान होने के कारण इस बालिका को चुरा ले जाने की अभिलाषा उसमें जाग उठी और वह एक दिन उसे चुरा कर कामावती नगरी भाग खड़ी हुई। इस बालिका को नृत्य, गान आदि चौदहों विद्याओं में पारंगत कराकर बीभू ने कामकन्दला को राजा कामसेन के दरबार की प्रमुख नर्तकी बना दिया।

कामवती नगरी में एक दिन राजदरबार में सङ्गीत सभा हो रही थी जहा से मृदंगों की गम्भीर ध्वनि आ रही थी वहीं माधव भी पहुँचा किन्तु द्वारपाल ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। थोड़ी देर के बाद माधव द्वार पर खड़ा ही खड़ा सारी सभा को मूर्ख कहने लगा। द्वारपाल के पूछने पर माधव ने बताया कि मृदङ्ग बजाने वाला बहरा है इसलिए नर्तकी के नृत्य पर स्वर भग हो रहा है और दक्षिण की ओर जो तुरही बजा रहा है उसके अंगूठा नहीं है और वीणाकार के दो दात नहीं हैं। इस कारण स्वर भंग होने से नर्तकी का नृत्य ताल सुर से मिल नहीं रहा है। द्वारपाल ने यह बात राजा से बताई। परीक्षा कर लेने के उपरान्त राजा कामसेन ने माधव को बुलवा भेजा और बड़ा आदर सत्कार किया। इसके अनन्तर कामकन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ कन्दला बडी तन्मयता से नृत्य कर रही थी अकस्मात एक भ्रमर आ कर उसके कुच पर बैठ गया उसके दंशन से नर्तकी को पीड़ा होने लगी। कन्दला ने नृत्य में किसी भी प्रकार की बाधा आये दिए बिना उसे 'न्यास पवन' प्रकट कर उड़ा दिया।

"शिर चलाइ शोणित घणउँ प्रमदा पीड़ी अपार।
न्यास पवन प्रगड़उ करी ऊडाडिउ तिणि वारि॥"

इस कला पर प्रसन्न हो कर माधव ने राजा द्वारा प्रदत्त सारे आभूषणों

आदि को कन्दला पर न्योछावर कर दिया। माधव के इस व्यवहार को राजा ने अपना अपमान समझा और उसे निष्कासित कर दिया।

इसके उपरान्त माधव उज्जैनी में राजा विक्रमादित्य के यहाँ पहुँचा और शिव-मन्दिर में गाथा लिखा जिसे पढ़ कर विक्रमादित्य बड़ा चिन्तित हुआ और उसने माधव को बुलवाया। माधव का वृतान्त सुनने के पश्चात् अपने दल बल सहित विक्रम ने कामावती पर चढ़ाई कर दी और कामसेन को युद्ध में हरा कामकन्दला को माधव को दे दिया। इस प्रकार माधव और कन्दला फिर सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु प्रारम्भ में अन्य रचनाओं से भिन्न है। कवि ने माधव और कन्दला के पुर्नजन्म को शुकदेव के शाप से सम्बन्धित किया है। बीभू वेश्या का प्रसंग भी कवि की स्वतन्त्र उद्भावना है। काव्य के अष्टम अंग में माधव और कामकन्दला के विलास का संयोजन कर रचयिता ने एक नवीन परिपाटी का अनुसरण किया है। हिन्दी साहित्य में बारह मासे का आयोजन केवल विरह पक्ष में ही पाया जाता है। किन्तु इस कवि ने संयोग और वियोग दोनों के सम्बन्ध में 'बारह मासा' लिखा है जिसके कारण इस काव्य में प्रकृति चित्रण अन्य काव्यों से अधिक प्राप्त होता है। कवि ने बीच-बीच में अन्य प्रसङ्ग जैसे वामाचार प्रयोग, तांत्रिक प्रयोग, वेश्या व्यवसाय, द्रव्य महात्म, तिथि विधि निषेध, ब्राह्मण निन्दा, परपुरुष भोग प्रसंशा, तीर्थ गणना, नर्मदा स्तुति, आदि का संयोजन कर तत्कालीन धार्मिक विश्वासों एवं नीति का प्रतिपादन किया है। कतिपय उपर्युक्त प्रसङ्गों की पुष्टि के लिए पौराणिक दृष्टान्त भी स्थान-स्थान पर दिए गये हैं। इसके अतिरिक्त समस्या विनोद की प्रथा का वर्णन तीन स्थानों पर लगभग दो सौ दोहों में किया है। इस प्रकार प्रबन्ध में प्रेम की तीव्रता और अन्यता के साथ-साथ यह काव्य जन साधारण के जीवन पर भी प्रकाश डालता है। इसमें कहानी के सौष्ठव के साथ-साथ सौन्दर्य का सामञ्जस्य मिलता है।

इस काव्य की विशेषता प्रारम्भ की स्तुतिमें भी लक्षित होती है। साधारणतः हिन्दू कवि सरस्वती या गणेश की वन्दना के उपरान्त अपने काव्य का प्रारम्भ किया करते थे, किन्तु इस कविने इसके स्थान पर कामदेव की स्तुति की है जो वर्ण्य विषय की सूचना प्रारम्भ में ही दे देती है।

इस प्रकार गणपति का माधवानल कामकंदला प्रबन्ध लोक गीतों और सिद्धहस्त अलङ्कारिक वर्णनात्मक काव्यों की शैली का मिला जुला रूप उपस्थित करता है।

सम्बन्ध निर्वाह और कल्पना

कथानक के सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से आलोच्य कथानक दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला आधिकारिक और दूसरा प्रासङ्गिक।

आधिकारिक कथा के अन्तगत माधव और कामकंदला की प्रेम कहानी आती है जो उनके पूर्व जन्म से सम्बन्धित है। कामदेव और रति के शाप की घटना, रुद्र देवी की प्रेम याचना, माधव का निष्कासन, कामावती में माधव और कदला का मिलन, तथा माधव का कंदला को पाने का प्रयत्न इसी मूल कथा के अन्तगत आती हैं।

वीझू वेश्या से सम्बन्धित घटना, कुरंगदत्त के यहाँ बालक माधव का पहुँचना, मृदङ्गियों का बहरा होना, भ्रमर के दशन की घटना, विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा एवं वैताला द्वारा अमृत लाभ प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत आते हैं।

जहाँ तक आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का सम्बन्ध है कवि ने बड़ी कुशलता से दोनों का गुम्फन किया है। कोई भी घटना आवश्यकता से अधिक वर्णित नहीं है। उदाहरणार्थ रुद्र देवी को ही लीजिये। कवि ने उसके रूप और प्रेम चेष्टाओं का वर्णन केवल माधव के प्रति उसकी भावना को प्रदर्शित करने के लिए ही किया है। माधव के पुष्पावती से चले जाने के उपरान्त उसका उल्लेख आगे कहीं-नहीं मिलता, कामावती में कदला को राजदरबार में सौंप देने के उपरान्त वेश्या का वृत्तान्त समाप्त हो जाता है ऐसे ही अन्य घटनाओं के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता है। प्रबन्ध-निपुणता यही है कि जिस घटना का सन्निवेश हो वह ऐसी हो कि कार्य से दूर या निकट का सम्बन्ध भी रखती हो और नए-नए विशद भावों की व्यंजना का अवसर भी देती हो।

कार्यान्वय की दृष्टि से शुक के शाप से लेकर कामावती में माधव और कदला के मिलन तक कथा का प्रारम्भ, माधव के कामावती से प्रयाण से लेकर विक्रमादित्यके प्रण तक मध्य और अमृतलाभ से लेकर दोनों के विवाह और आनन्दमय जीवन तक का वर्णन कथानक का अन्त कहा जा सकता है। आदि अश की सब घटनाएँ मध्य अर्थात् माधव और कंदला के प्रेम की अनन्यता की ओर उन्मुख है, इसी के बीच आए हुए वेश्या व्यवसाय, बन आदि के वर्णन विरह के बाहर मार्ग, पौराणिक दृष्टान्त, नारी चरित्र वर्णन, नर्मदा स्तुति, तीर्थ स्थानों आदि की गणना मध्य का विराम कहा जा सकता है। अमृतलाभ के उपरान्त घटना का प्रवाह फिर कार्य की ओर मुड़ जाता है। इस प्रकार कार्यान्वय के सभी अवयव इस काव्य में मिलते हैं।

सम्बन्ध-निर्वाह के अन्तर्गत गति के विराम का भी विचार कर लेना आवश्यक है। यह कहना पडता है कि इस प्रबन्ध में कथा की गति के बीच-बीच में अनावश्यक विराम बहुत हैं जो प्रबन्ध की रसात्मकता में सहायक नहीं होते जैसे स्वरों और व्यञ्जनों के अनुसार पेड़ों की गणना, विषधरों के नाम, तीर्थाटन से लाभ, और उनकी गणना, पौराणिक दृष्टांत आदि। कन्दला के शृंगार-वर्णन में आभूषणों के नामादि भी अनावश्यक से जान पड़ते हैं। फिर भी सन्तुलित दृष्टि से देखा जाय तो इन आवश्यक अशों के होते हुए भी कथा की रसात्मकता में कोई विशेष अन्तर नहीं पडता।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि गणपति का माधवानल प्रबन्ध सम्बन्ध-निर्वाह की दृष्टि से अच्छा है।

काव्य-सौंदर्य

नखशिख वर्णन

कामकन्दला के नखशिख वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है जैसे—

'जंघा कदली' थम्भसम, अमर तणइ मनि आस।
स्मर मन्दिर सिउ मिढीई मयण तणउ तहां वास।
तुम्ब नितुम्ब रह्यां बही, संचरतां सम शृंग।
कटि जाणइ मुली करी, ऊठण धरइ अनंग।
नाभि विवर अति रूयड्ढ, उपरी त्रिणि प्रवाह।
मुनिवर माघ प्रयाग मांहां, जे नाह्इ ते नाहिं।

इस प्रकार नासिका की उपमा कवि ने दीपक की लौ से दी है, जिसे कवियों ने अधिकतर नहीं अपनाया है। इस प्रकार गणपति के लिए हम कह सकते हैं कि वह नवीन उपमानों के प्रयोग में भी सिद्धहस्त थे।

'दीप शिखा, सोविन सली, तेल तणह् ते धार।
.निरखी निरखी नासिका, जग सहि करइ विचार॥'

इस कवि ने जहां नायिका का नखशिख वर्णन किया है वहीं नायक का नखशिख वर्णन भी किया है जो साधारणतः अन्य काव्यों में नहीं पाया जाता। माधव के रूप-वर्णन में भी कवि ने परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है जैसे—

"कदली गर्भ जिसीकया, यंत्रकला सी जेम।
मूरति को मोहन कला, विदय वधारण प्रेम।

नाभि विवर अति रूअडुं, धण नली आरइ पेटि।
उन्नत उर विशाल पण भेल तह सकइ न भेटि।

कामकंदला के नखशिख वर्णन के पूर्व कवि ने मुग्धा अज्ञात यौवना नायिका का भी वर्णन किया है। नित्यप्रति होने वाले अपने शारीरिक परिवर्तनों को देखकर बालिका कन्दला चकित और चिंतित हो गई। उसने समझा कि उसे कोई बीमारी हो गई है जिसके कारण उसका शरीर और मन ठीक नहीं रहता। अस्तु वह अपनी मा के पास पहुँची और कहने लगी—

"माई मझनइ ऊपनी, अैक असम्भम व्याधि।
रिदयंइ रसोली विइ थइ, मन नही मोरि साधि॥
चंचल चरी ठमि न रहइ भमहि भमंति न भग्ग।
कर सरला, कटि पातली, मंद थया मोरा पग्ग॥
पेट थयुं पणि पातलुं, त्रिवली वलइ सुलीह।
राति जाइ तु तिम वली, अधिक थाइ दीह॥
तुंवा त्रहियां विहू गंभा, समा न चालिउं जाई।
नाभि अम्हारी निर्निनित, आई ऊंडी थाई॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने नायक-नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में कवि परम्परा का ही अनुसरण किया है जिसमें वयःसंधि आदि के वर्णन भी प्राप्त होते हैं।

संयोग-शृङ्गार

सयोग पक्ष मे कवि ने समस्या विनोद का ही वर्णन किया है[१]। पहेलियो के रूप मे प्रश्नोत्तर छपे हुए दस-बारह पृष्ठों तक चले जाते हैं। ऐसे स्थल पुस्तक मे तीन स्थान पर आए हैं, किन्तु समय की परिपाटी के अनुसार 'केलि-युद्ध' आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है।

'बूंब देऊं छऊं वंमणा, मुकी दिइ मुफ मीत।
कर जोड़ी निलवटि करउ, चतुर चोरती चित्त॥
अथवा
कुच मर्दन, कप्पइ अधर, लिइ चुरासी लाग।
सुहड़ यथा समंरगणि, भड़ता को इन भाग॥

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त इस काव्य में प्रेम का मानसिक पक्ष अधिक निखरा है। जैसे प्रथम मिलन की रात्रि मे कन्दला कहती है कि हे प्रियतम,

१. माधवानल कामकन्दला, गणपति। पृ० १०८।

विधाता ने मेरे साथ बड़ी खोट की है। अगर उसने मुझे कोटि बाहें दी होतीं तो मैं उन सबसे जी भर कर आलिंगन करती।

'माधव मुझ माही कर, खरी विधाता खोड़ि।
आलिंगन अति भीड़ती, जउ कर सरजत कोड़ि।।'

अथवा

अगर दैव ने कृपा कर सहस्त्रों नेत्र दिए होते तो तुम्हारे रूप को देख कर परम सुख पाती।

'देतउ दैव कृपा करी, सहस नयन मुझ सार।
पेखी पेखी पामती, हुँ त्रपति लगार ।।

किन्तु इनसे अधिक मार्मिक उक्तियां उस रात्रि के प्रति हैं जिस रात्रि को उसका प्रियतम उसे मिला है। सयोगिनी कन्दला चाहती है कि यह रात्रि कभी भी समाप्त न हो अन्यथा उसका प्रियतम उससे बिछुड़ जायगा। इसलिए वह रात्रि से प्रार्थना करती हुई कहती है कि मेरी सखी तू चार युग तक इसी प्रकार बनी रह। अन्यथा सूर्य के निकलते ही मेरी आंखों से अश्रु बहने लगेगें।

'रजनी सजनी माहरी तु रहिजे जुग चियारि।
दिण्यर दीसन्तु रखै, नीसत नयणां वारि।'

उसकी मनोकामना है कि अरुण बरुण मुर्ग आदि सभी मर जाएं और सूर्य का रथ बन मे पड़ा रहे कोई उसे निकालने वाला न मिले।

'आज मिटै उच्चैश्रवा, वरुण अरुण पणि दोइ।
रवि रथ रहिउ वनि पड़िउ, केड़ि मकरि सिउ कोइ।'

इसी प्रकार वह विन्ध्याचल से प्रार्थना करती है कि तुम आज आकाश में इस प्रकार अड़ जाओ कि सूर्य न निकल सके ओर हमारा काम बन जाए।

'विन्ध्याचल वाधे तुं धणुं अम्बर अड़के आज।
आदित्य नहं ऊगी सकइ, सरह अम्हारा काज।।'

पुस्तक के अन्त मे कवि ने 'सुख का बारहमासा' माधव-बिलास के रूप मे वर्णित किया है। फागुन मे माधव ओर कन्दला होली खेलते ओर आनन्द मनाते हैं, सावन में ये लोग झूला झूलते रहते हैं। इस 'बारहमासे' में प्रकृति चित्रण तो उतना नहीं मिलता जितना कि स्त्रियों की वेश-भूषा हाव-भाव एवं शैय्या को फूलों से सजाने का वर्णन मिलता है[1]।

---

१. 'फागुण केरा फगगन्टा, फिरि फिरि गाइ फाग।
चङ्ग बजावइ चङ्ग परि, आलवइ पञ्चम राग।
हरखि रमइ हुतासनी निरखी निर्मल चन्द।

विप्रलंभ शृंगार

संयोग पक्ष की तरह प्रस्तुत रचना का वियोग पक्ष भी बड़ा मार्मिक सुन्दर और हृदयग्राही बन पड़ा है। कंदला की मानसिक स्थिति के चित्रण में कवि ने प्रकृति के सारे क्रियाव्यापार एवं नित्य प्रति के जीवन में सम्बन्धित वस्तुओं का संयोजन करके उनके प्रति नायिका की मानसिक प्रतिक्रिया का आयोजन किया है जैसे दीपक, चन्द्रमा और सूर्य। दीपक के प्रकाश को देखते ही नायिका को अपने प्रियतम के साथ बीते हुए सुखद क्षणों की स्मृति हरी हो उठती है और व्याकुल होकर वह कह उठती है कि ऐ दीपक तू मुझे क्यों जला रहा है, तू तो स्वयं जलता है तेरा स्नेह जलता है और तेरी बत्ती तक जलती है फिर भी तू दूसरों को जलाने में नहीं चूकता। तू क्यों मुझे दग्ध कर रहा है मैं तुझ पर पानी डाल दूँगी नहीं तो हवा से तुझे बुझा दूँगी।

> 'दाखिन राखूं दीवड़ा का दहइ मुझ शरीर।
> पवन कारी परहो कहूँ उपरि नामूं नीर।
> तेल वलइ वाती वलइ आपि वलइ अपार।
> वलतु वल अधिकुं करइ, मुझनइ मार खहार।"

पृष्ठ १९०।

इसी प्रकार सूर्य से प्रार्थना करती हुई वह कहती है कि ऐ सूर्य अबलाओं को दुखी करने का काम किसी शूरवीर का नहीं है तू मुझे क्यों और दग्ध कर रहा है मैं तो स्वयं ही विरह की ज्वाला से जली जा रही हूँ।

> 'सहस किरण सर सुधि करि, देही वधारिसि दाहि।
> शूर धरइ नहीं सूर को, अबला ऊपरि आहि।'

पृष्ठ १८०।

इसी प्रकार वह चन्द्रमा से कहती है—

> 'पापी तूं भीळइ नहीं परमेश्वर परतक्ष।
> पूनिम निशि पीड़ियाँ आहे, वलतु करिउ विपक्ष।'

पृष्ठ १८३।

विरह में विरहिणी को कोयल, पपीहा, मोर आदि किसी का भी स्वर अच्छा

साधइ सुरता तथा सुवच वाधइ अति आनन्द।
हींडोला हरखइं चढ़ी, हीचण लगी हेलि।
उलालइ अंबर भवनि, माधव दीठइ केलि।।'

पृष्ठ ३१८ व १९।

नहीं लगता। कोयल की बोली पर वह चिहुँक कर कहती है कि ऐ कोयल तू काली तो है ही पर तेरा स्वर भी काल के समान है :

'कोइल तू काली सही, स्वर पणि ताहरु काल।
प्रिउ पाखइ पेखी प्रिया, प्राण हरइ तत्काल।'

इसी प्रकार वह पपीहे से कहती है कि ऐ पापी पपीहे तू क्यों पी पी की रट लगाए है। मैं अपने 'पी' को जपती हूँ तू अपने जगदाधार को जप और पुकार—

'पंखी हूँ पीउ पीउ जपुं, तू जपि जगदाधर।
जपतां जपतां आपणी स्वामि करस्इ सार।'

पृष्ठ १८८।

शीतल मन्द समीर का स्पर्श 'कन्दला' के विरह को उद्दीप्त करता रहता है इसलिए वह पवन को अपना दूत बनाकर माधव के पास सन्देश भेजते हुए कहती है कि हे पवन प्रियतम से जा कर कहो कि तुम अपनी प्रियतमा को छोड़ कर चले आए हो वह तुम्हारे विरह में तड़प रही है—

पवन संदेस पठावउं, माहरू माधव देसि।
तपन लगाड़ी ते गयु, मुझ मूकी परदेसि।

पवन तुम अंतर्यामी हो मेरे मन की बात समझ सकते हो अगर मैं कुछ कहती हूँ तो वह भला नहीं लगता चुप रहती हूँ तो मृत्यु के समान कष्ट होता है।

'कहिता दीसइ कारियूं, मौन्य करू तु मृत्यु।
अन्तरयामी तूं थई, गिरुया कीजइ गत्य।'

कवि ने 'बारहमासे' में प्रकृति के उद्दीपन रूप का सयोजन किया है। सयोगिनी नारियों के हर्ष और उल्लास एवं प्रकृति के सौंदर्य को देख कर विरहिणी दुख से व्याकुल हो कर कह उठती है कि हे 'फागुन' के महीने तू नष्ट हो जाता तो अच्छा था जिस समय मेरा प्रियतम मेरे पास नहीं है उस समय तुम्हारे आने का क्या काम था :—

'कालि ज वहु क्रीड़ा करी, आज तिजनी आस।
माधव मुझ मूकी गय, फटि रे फागुन मास।
तरु-तरु त्रुटइ पन्नड़ा, गिरि-गिरि त्रुटइ वाहु।
फागुन कागुण ताहरू, नीगमिउ मोह नाह।'

इसी प्रकार सावन की झड़ी से व्याकुल हो कर वह कह उठती है ऐ श्रावण तू श्रावण नहीं वरन् रावण के समान है, परनारी चोर मालूम होता है,

रात्रि में तारों के दर्शन नहीं होते, दिन में सूर्य नहीं दिखाई पड़ता और विरहिणी की वेदना दिन दिन तीव्र होती जाती है :—

'श्रावण नहीं रावण सही तूँ परनारी चोर।
मुझ नइ जोवा, मोकलिउ, मृगला नइ भशि मोर।
दिहि न दिणयर दीसीह, निशि तारा शशि हीण।
वेदन वाधइ विरहिणी, खिणि-खिणि थाइ खीण'

कहने का तात्पर्य यह है कि इस काव्य में संयोग और वियोग पक्ष का सुन्दर संतुलन मिलता है। कवि की भावव्यंजना की शैली में मार्मिकता है एवं ऊहात्मक वर्णनों का आश्रय न लेकर कवि ने प्रकृति के संवेदनात्मक रूप का आयोजन किया है एवं सीधी सादी भाषा में कवि ने संयोगिनी और वियोगिनी नारी की मानसिक और शारीरिक अवस्थाओं के चित्रण में असाधारण सफलता पाई है।

प्रकृति-चित्रण

प्रस्तुत रचना में प्रकृति-चित्रण अन्य काव्यों से सबसे अधिक मिलता है कारण कि इसमें कवि ने तीन बारहमासों के संयोजन के अतिरिक्त जंगल, पेड़ों और पौदों एवं विषधरों तथा पर्वतों का वर्णन किया है।

यह प्रकृति-चित्रण तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है पहला वह जिसमें कवि ने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए पेड़ों, विषधरों आदि के नाम गिनाए हैं और दूसरा वह जिसमें संयोग और वियोग में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अंकन किया गया है। 'आलम्बन' रूप में प्रकृति का चित्रण तीसरी कोटि में आता है।

प्रथम प्रकार के वर्णन में लालित्य की सर्वथा शून्यता है उदाहरण के लिए पेड़ों की गणना ही लीजिए कवि ने अड़तालीस स्वरों और व्यञ्जनों के आधार र पेड़ों की एक नामावली लगभग चौदह पृष्ठों में दी है[1]। ऐसे ही गैरिक धातु

---

१. आंबा अरलू आंबिली, उंबर नइ अखोड।
आंबो पल्लव अतिभला, अंबरि अड़ता छोड।
आउलि अरणी अगथीआ, अंकुलि अरही आक।
ऐलचि अर्जुन आमली, अमृत फल ऊणाक।
कल्पद्रुम नइ केतकी, कटल कटल कुरुष्ट।
कमरख अनइ कालुंबरी केसर सुर सन्तुष्ट।
कतक कलव का भाईउ, केलि किराटु कग्ग।
काली चित्रा काकड़ा, खीग समाडी खग्ग।'
पृष्ठ २४३—२५६।

वर्णन में केवल उनकी गणना ही मिलती है[1]।

माधव के पथ में पड़ने वाले वन की भयानकता का चित्रण इतिवृत्तात्मक होते हुए भी प्रभावोत्पादक है जैसे कहीं वन की गहनता के कारण सूर्य नहीं दिखाई पड़ता, कहीं काटों की झंखाड़ है, कहीं पर दावाग्नि पेड़ों के ऊपर दौड़ती हुई दिखाई पड़ती है, रात्रि में न चांद दिखाई पड़ता है और न दिन में सूर्य[2]। कहीं पर वर्षा हो रही है तो कहीं पर रीछ बाघ, भालू आदि घूम रहे हैं कहीं विषधर नागों की फूत्कार से वनस्पति जल जाती है कहीं अजगर घामिग, आदि सर्पों की जातियां दिखाई पड़ती हैं[3]।

वन की इस भयानकता के अतिरिक्त कवि की दृष्टि वहां की रमणीयता पर भी पड़ी है जैसे पहाड़ों से निर्झर फूट कर बह रहे हैं जिनमें कछुए मछलियाँ तैरती हुई दिखाई पड़ती हैं और मोर चातक आदि नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे हैं। एक पर्वत की श्रेणी आकाश को चूमती है तो दूसरी की खोह

---

१. 'थाटद बालू विंधिगरस, वेवक बली पसाम।
पाणी टंपी पर्वत, हूंइ हेम प्रमाण।
कमठ कया पारा तग, कन्या वैडि धाइ।
मणि मोदेरो ऊमटइ, जेणि अमर पद थाय।'

पृष्ठ २५६—२५७।

२. 'किहि दिणयर दीसइ नहीं, किही कोल्हरी जाय।
किहिं किहिं काटे कम्पडा, माल माल्ता भराय।
किहिं किहिं तरु, उपरि चढ़ी, उतरन्तु बइ अग्नि।
किहिं किहिं चढि कोलेवडे, बाड़व परिपरि विग्न।
दिवस नवि रमणी दीसइ, आभि न इन्दु अदीस।
काई चालइ कौतुक गमी, काई चालइ भयभीत।

पृष्ठ २५९।

३. 'किहि-किहि दव दीसइ बल्या, किहि-किहिं वरसइ मेह।
किहि-किहिं रमता पारधी, किहिं नागइ तेह।
किहि-किहि बाघ वरु वग, रोझ रीझड़ा जाय।
किहिं-किहिं रमता मेगला, केड़ि केसरि धाय।
किहिं-किहिं कालीनागना राति उमटइ राफ।
वनस्पति प्रज्वलि पड़इ, तेहना मुंहनी बाफ।

पृष्ठ २५७—२५८

पाताल को छूती हुई मालूम होती है[1]।

उपर्युक्त उद्धरण में कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय प्राप्त होता है।'

उद्दीपन विभाव के रूप में प्राकृतिक व्यापारों का चित्रण संयोग और वियोग पक्ष के अन्तर्गत मिलता है जिसका परिचय पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी कुछ स्थल मिलते हैं जिनमें कवि ने पात्रों की रागात्मिका वृत्ति का साम्य प्राकृतिक व्यापारों से स्थापित किया है जैसे ग्रीष्म ऋतु में आकाश पृथ्वी और घास जल रही है, विरहिणी की तपन भी उसी प्रकार की है जिस प्रकार वैशाख' में बालू दग्ध होती रहती है[2]। ऐसे ही जिस प्रकार पानी के बिना पृथ्वी सूखी और नीरस रहती है या चन्द्रमा के बिना रात्रि श्रीहीन प्रतीत होती है उसी प्रकार 'पूस' के दिनों में माधव के बिना कन्दला शुष्क नीरस और श्रीहीन दिखाई पड़ती है[3]।

भादों के दिनों में गंगा-यमुना की तरह नेत्र निरन्तर अश्रुप्लावित रहते हैं। फिर भी विरहिणी की शरीर रूपी नाव तिरती नहीं दिखाई पड़ती। उसके लिए तो

---

१. 'नगि-नगि नीझरण वहइ, माहि जडूका मच्छ।
कातरिया नइ कच्छिला, आड़ा अवइ लक्ष।
मोर कलाइ मंडता चातक चोरइ चीत।
किन्नरवासी कोकिला, म्राव न चूकइ मीति।
कीरहा वायग विभला, आगलि ऊड़ी जाय।
वाटइ दीसइ बागली, ते डंग्रि टगाय।
सीचाणा समली बली, गृध्रुणि गयणि भमंति।
सारसडी साचर परि क्षिणि-क्षिणि जाइ खंति।

पृष्ठ २५८।

एक पर्वत अम्बरि थड्या, खोहिणि खोह पताल।
शृंग शिखर सोहमणा, जाने जिमपुर पालि।
एक पर्वत उपरि चढ़इ, एक उतरइ हेठि।
काम क्रोध मद मरतु जिम राउ रमइ आखेटि।

पृष्ठ २६०।

२. 'आम जलइ, धरती जलइ दिनि दिनि जलती घास।
भायग माहरइ भेट्यु, वारू भई वैशाख।
३. 'मेह विना जिम मही थली शशिहर विना प्रदोष।
तिम माहरइ माधव विना, पाछइ पालइ पोस।

चारों ओर जैसे सूखा ही सूखा है[१]।

इस प्रकार प्रस्तुत रचना में वस्तुओं के बीच सादृश्यभावना भी अत्यन्त माधुर्यपूर्ण और स्वाभाविक मिलती है।

भाषा

इस ग्रंथ की भाषा नागरिका अपभ्रंश तथा शौरसेनी उपनागरिका पश्चिमी अपभ्रंश है। वय्याकरणों ने अपभ्रंश के तीन भेद नागरिका, उपनागरिका और व्राचड किए हैं। इस रचना की भाषा में श, ष, स, न, ण स्वर मध्यमवर्ती व्यंजन के लोप और उसके स्थान पर य श्रुति का विकास जैसे दिनकर, दिणयर आदि तथा प्रत्यय डा, ड़ा और पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग में ड डी के प्रयोग जैसे हियड़ा, बेलडी, णाइ, नट आदि नागरिका के ही उदाहरण कहे जा सकते हैं परन्तु कहीं कहीं पर श, न आदि ध्वनियों के प्रयोग से भाषा पर उपनागरिका का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

अलंकार

अलंकार के क्षेत्र में कवि ने परम्परागत सादृश्यमूलक उपमा अलंकार का ही प्रयोग किया है।

छंद

संपूर्ण रचना दोहा छन्द में प्रणीत है।

लोकपक्ष

प्रस्तुत रचना अपने काव्य सौष्ठव के अतिरिक्त तत्कालीन कतिपय धार्मिक रीति-रीवाजों, वेश-भूषा एवं वेश्या समुदाय के जीवन से सम्बन्धित उक्तियों के कारण लोकपक्ष की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

हिन्दू प्रेमाख्यानों पर पड़ने वाले प्रभाव शीर्षक अध्याय में यह इंगित किया जा चुका है कि इन प्रेमाख्यानों पर तान्त्रिकों और वाममार्गियों का प्रभाव भी पड़ा था। प्रस्तुत रचना इस कथन का सबसे पुष्ट प्रमाण है। माधव के रूप और लावण्य ने कामावती की सारी स्त्रियों को वश में कर लिया था। वे उसे पाने के लिये बड़ी व्याकुल रहती थीं। कुछ स्त्रियों ने तंत्र और मंत्र के द्वारा उसे वशीभूत करने का प्रयत्न किया था। उसके इस प्रयास का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि कोई स्त्री अभिमंत्रित सूत्र को अपने घर पर बांधती थी कोई सूर्यमुंडी याग नवल की जड़ को लेकर चावलों के साथ फेंकती थी। कोई

---

१. गंग यमुना परिनयनड़ा, वहइ निरन्तर पूरि।
तरट नहीं तन नावडी, करती झूरिम झूरि।

मन्त्रों का जाप करती थी। कोई शंकर की आराधना सखी सहेलियों के साथ करती थी[1]।

उपर्युक्त वाम मार्गीय और तान्त्रिक विश्वासों के अतिरिक्त पौराणिक और सनातनी धार्मिक विश्वासों पर जन साधारण की जो आस्था थी उसका परिचय भी प्राप्त होता है। जब विरह से व्याकुल माधव तपस्वी के पास गया तब उसने माधव से अपने पूर्वजन्म के पापों के निवारण के लिए 'अड़सठ' तीर्थों का भ्रमण करने के लिए कहा और हर एक की दशा एवं उनका माहात्म्य बताया[2]। इस अंश में भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। तीर्थ स्थानों में भ्रमण करने और वहाँ के ऋषि मुनियों से सतसंग करने में भारतीय सदैव मोक्ष का सीधा मार्ग मानते आए हैं। इस रचना में कवि के भौगोलिक ज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है।

भारत वर्ष में नदियों का माहात्म्य सदा से रहा है। गंगा-यमुना सरस्वती गोमती जिस प्रकार उत्तर भारत में अपनी पवित्रता एवं अध्यात्मसुख प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार दक्षिण भारत में नर्मदा का माहात्म्य कहा जाता है। कवि नर्मदा तट का निवासी था इस कारण उसने बड़ी तन्मयता से नर्मदा की स्तुति माधव के द्वारा कराई है[3]। यह स्तुति भारतीय पौराणिक विश्वास का सुन्दर उदाहरण है।

---

१. 'शंकर पूजइ संचरी, सही सहेली साथ।
पेखि रिपि रीसामणिया, ज्योगिम जु जुगनाथ।
प्रमदा जे पीतांवर्णी, भग भोगवइ न एह।
अबला-अबला अवरनी, साधि मकइ किम तेह।
वेद भणइ ते वरणना, अक्षरि-अक्षरि मन्त्र।
जेम लगइ जे जिउड़ी, जागइ ज्योतिष जन्त्र।
सूझी सुझी सणगइ; सुगर्यो तेह विचार।
याग नवल कि जब लगइ, अक्षत मूकत वारि।'

पृष्ठ १४९...१५०।

२. वीर बड़ी वाराणसी, तीरथ राज प्रयाग।
निरखे नैमुष नइ गया, कम्क्रुक्षेत्रिह सुहाग।
पुष्कर पेखि प्रयास पण, कालिञ्जर कास्मीर।
विमलेश्वर वरजा वली, गंगा सागर तीर।

पृष्ठ १३६।

---

३. 'नमो नमो तूं नर्मदे जल कैवल्य कल्लोल।
चौद वादर धासन थया, भोमवेना भूगोल।

आज भी जनसाधारण विशेष तिथियों पर किसी कार्य के करने अथवा न करने पर विश्वास करता है। यह भावना कवि के युग में विशेष दृढ़ थी ऐसा जान पड़ता है क्योंकि उसने तिथि के विधि-निषेध के अन्तर्गत १३ दोहों में विभिन्न तिथियों के माहात्म्य का उल्लेख किया है जैसे देव, दशमी, एकादशी के दिन विष्णु का विशेष महात्म्य होता है, कलियुग में त्रयोदशी चतुर्दशी देवताओं के दिन हैं, अमावस्या और पूर्णिमा को पति-पत्नि का संसर्ग न होना चाहिए आदि[1]। यह अंश कवि के ज्योतिष ज्ञान के भी परिचायक हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के समय में ब्राह्मणों की दशा आज कल की भांति बड़ी शोचनीय हो गई थी। वे लोभी तथा निर्दय हो गये थे, ब्राह्मण-निन्दा के अन्तर्गत कवि के यही विचार मिलते हैं। उसने अपनी बात की पुष्टि के लिए नारद, विश्वामित्र, भृगुऋषि, दुर्वासा आदि ऋषियों के पौराणिक दृष्टान्त भी दिए हैं[2]। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कवि ब्राह्मण समुदाय का विरोधी था। दूसरे स्थान पर उसने ब्रह्मजीवन के कर्म का निर्देश किया है। वह कहता है कि ब्राह्मण का कर्म है कि वह लालची न हो, स्त्री के प्रति उसे आसक्ति न हो। शील और सदाचार से वह रत रहे, संसार से उदासीन रहे, तिथियों दिनों और नक्षत्रों पर वह सदैव मनन करता रहे एवं ६ मास में कभी एक बार चारपाई पर शयन करे[3]।

इस अंश मे सामाजिक कुरीतियों के प्रति कटु आलोचना करने की निर्भीकता

शंकर स्नेद थिक्की सरी, स्वर्ग मृत्यु पातालि।
चारि पदारथ पूरवइ, कामधेनु कलि कालि।
तिल तिल मारग तिर्थनु, पढ़त न लब्भइ पार।
ब्रह्मा हरि हर शारदा, यद्यपि करइ विचार।'

पृष्ठ २६०–२६१।

१. देव दसमी एकादशी, हरि वासर जे होइ।
पुण्य प्रथम ते पारणह, द्वादसवी दिनि जोइ।
कलियुग आदि त्रयोदशी, चादशी ईश अनंत।
आमा नइ पुनिम प्रगट नारि न देखइ कंत।

पृष्ठ १४७–१४८

२. 'माधवानल काम कन्दला 'गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज'

पृष्ठ १४३—१४४।

३. वही पृष्ठ १४४—१४६।

सेवन भी करती हैं। पुराणों में अहिल्या, इन्द्राणी, मन्दोदरी, तारा आदि इसका प्रमाण हैं[1]।

यहाँ यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि परपुरुष-भोग की प्रशंसा वेश्याओं से कराई गई है और उन्हीं के द्वारा पौराणिक दृष्टान्त भी दिए गए हैं अस्तु सामाजिक दृष्टि से यह हानिकर नहीं है किन्तु स्त्रियों के प्रति कवि के विचारों के रूप में यह प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं, फिर भी इस कथा को युग के सामाजिक आदर्श के रूप में न ग्रहण करना चाहिए।

कवि ने एक स्थान पर होली के उत्सव का भी वर्णन किया है। जो आज भी उसी प्रकार मनाया जाता है जिस प्रकार कवि के समय में मनाया जाता था। जैसे फागुन के समय लोग गाते बजाते निकलते थे। रंग-बिरंगे कपड़े पहनते थे एवं अबीर गुलाल की धूल उड़ती थी। ऐसे ही सावन में झूला-झूलने की प्रथा का भी संकेत मिलता है[2]।

इस प्रकार गणपति के माधवानल प्रबन्ध में बौद्धों की वाममार्गी साधना, सनातनियों की पूजा, अर्चना, आराधना एवं तीर्थाटन का माहात्म्य पौराणिक दृष्टान्त के साथ-साथ नीति का प्रतिपादन, गणिकाओं का जीवन और उनके व्यवसाय का विशद वर्णन तथा उस समय की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और साधरण जीवन का चित्रण मिलता है। इसके साथ ही साथ तत्कालीन वेश-भूषा और होली के उत्सव का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसलिए प्रस्तुत रचना भाव-व्यंजना की दृष्टि से ही नहीं वरन् तत्कालीन सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्व-पूर्ण है।

---

१. वही। पृष्ठ १५८।
२. वही। पृष्ठ ३१३।

माधवानल कथा

—दामोदर कृत

—रचनाकाल...

लिपिकाल सं० १७३७

कविपरिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथा-वस्तु

पुष्पावती नगरी के राजा गोविंदचंद की साम्राज्ञी रुद्र महादेवी अपने परम रूपवान पुरोहित माधवानल पर आसक्त हो गईं और उन्होंने एक दिन अपने हृदय के भाव उसपर प्रकट किए किन्तु माधव ने इस ओर ध्यान न दिया। रुद्रदेवी की ही तरह पुष्पावती की सारी नारियाँ उस पर मोहित थीं। वे माधव के लिए इतनी विकल रहती थीं कि कोई भी गर्भवती नहीं होती थीं एवं गर्भवती नारियों के गर्भपात हो जाते थे। नगर के पुरुषों को इस पर बड़ी चिन्ता हुई और सबने मिलकर राजा से माधव को देश से निकाल देने का अनुरोध किया। राजा ने माधव के इस असाधारण प्रभाव की परीक्षा कर लेने के उपरान्त ही कुछ करने का सोचा। इसलिए उन्होंने काला तिल फैलाकर उसपर रानियों को लाल रंग की साड़ियाँ पहना कर बैठाया और माधव को निमंत्रित कर अपने रनिवास में ले गया। माधव को देखते ही सारी रानियाँ स्खलित हो गईं और काले तिल उनके पृष्ठ में चिपक गए। इसे देखकर राजा ने माधव को तुरन्त निष्कासित कर दिया।

पुष्पावती को छोड़कर माधव अमरावती नगरी पहुँचा और अपनी वीणा बजाते हुए राजदरबार में पहुँचा। राजा जैचन्द उसकी वीणा पर मोहित हो गए और उसे बड़े आदर सत्कार से अपने यहाँ रखा।

राजा का मन्त्री मनवेगी माधव को अपने घर ले गया। मन्त्री की स्त्री गर्भवती थी माधव को देखते ही वह स्त्री इतनी मोहित हो गई कि उसका गर्भपात हो गया। अपनी स्त्री की इस दुर्दशा को देख कर मन्त्री मनवेगी बड़ा

चिन्तित हुआ साथ ही साथ नगर की अन्य स्त्रियों की भी यही दशा हो रही थी इसलिए मन्त्री राजा के पास पहुँचा और उसने अपना तथा प्रजा का दुख राजा के सामने प्रकट किया। इस पर राजा ने माधव को तीन बीड़े भेज दिए। अस्तु माधव अमरावती को छोड कर कामावती नगरी पहुँचा जहां राजा कामसेन राज्य करता था।

एक दिन राजा कामसेन के यहां कामकन्दला नर्तकी का नृत्य हो रहा था। नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। माधव भी राजद्वार पर पहुँचा किन्तु दौवारिक ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। थोड़ी देर बाद माधव सारी सभा को मूर्ख सम्बोधित करने लगा। इस पर दौवारिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा के पास उसने इसकी सूचना पहुँचाई। राजा ने जब इसका कारण पुछवाया तब माधव ने कहलवा भेजा कि जो बारह मृदंग बज रहे हैं उनमें से एक के अंगूठा नहीं है इस कारण स्वर टूट रहा है।

राजा ने इस बात की परख की और उसकी सचाई ज्ञात होने पर उसने माधव को अन्दर बुलवा भेजा। माधव नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित होकर दरबार में आ बैठा। तदनन्तर कन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ जिस समय कन्दला बड़ी तन्मयता से नृत्य कर रही थी उसी समय एक भ्रमर आकर उसके कुच के अग्र भाग पर जा बैठा। उसके दंशन से कन्दला को पीड़ा होने लगी किन्तु नृत्य में किसी भी प्रकार का व्याघात उत्पन्न किये बिना ही कन्दला ने अपने कुचों को हिला कर उस भ्रमर को उड़ा दिया।

कन्दला की इस कला को माधव के अतिरिक्त कोई भी नहीं समझ सका इसलिए माधव ने राजा द्वारा प्रदत्त सारे आभूषणों मुद्राओं आदि को कन्दला की प्रशंसा करते हुए उसे उपहार रूप में दे दिया। विप्र के इस व्यवहार ने राजा को क्रुद्ध कर दिया और उसने माधव को देश से निकल जाने की आज्ञा दी।

माधव को पथ से कंदला अपने घर ले गई वहाँ एक रात व्यतीत करने के उपरान्त माधव कंदला के वियोग में भटकता इधर-उधर घूमता था। एक दिन रास्ते में माधव को एक ब्राह्मण मिला। इस ब्राह्मण ने माधव की दशा देखकर उसे बताया कि तुम उज्जैनी जाओ उज्जैनी के राजा विक्रमादित्य तुम्हारे दुख दूर करेंगे।

अस्तु माधव उज्जैनी पहुँचा और शिव मन्दिर में उसने 'गाथा' लिखी जिसे पूजा के उपरान्त विक्रमादित्य ने पढ़ा और बड़ा दुखी हुआ तथा इस दुखी विरही ब्राह्मण के दुख को दूर करने के लिए उसने व्रत लिया। भोग विलासिनी

वेश्या ने शिव-मण्डप में इसका पता लगाया। तदुपरान्त माधव की कहानी सुनने के बाद विक्रम ने कामावती पर चढ़ाई कर दी। कामावती में जाकर विक्रम ने कंदला की परीक्षा ली और बताया कि माधव नाम का विप्र विरह में मर चुका है। इसे सुनकर कंदला की मृत्यु हो गई। माधव की मृत्यु भी कंदला की मृत्यु सुनकर हो गई। तदुपरान्त विक्रम ने आत्महत्या का विचार किया। बेताल ने प्रकट होकर राजा को इस कर्म से रोका और पाताल लोक से लाकर अमृत दिया। दोनों को फिर जीवित किया गया।

इसके बाद कामसेन से युद्ध हुआ। कामसेन हारा। माधव को कंदला मिली और दोनों फिर सुख से रहने लगे।

दामोदर रचित माधवानल कामकंदला में पुनर्जन्म की कहानी नहीं मिलती। माधव और कंदला का प्रेम इहलोक सम्बन्धी अङ्कित किया गया है। कुशल-लाभ, आनन्दधर और गणपति की तरह इन्होंने भी रुद्रदेवी की आसक्ति का वर्णन किया है। पुष्पावती से आने के उपरान्त कवि ने माधव का अमरावती में रुकने एवं 'मनोवेगी' मंत्री की पत्नी के गर्भपात की घटना का आयोजन कर माधव की मोहिनी शक्ति का अधिक विस्तार से वर्णन किया है।

उपर्युक्त परिवर्तन के अतिरिक्त कथानक की सारी घटनाएँ प्रचलित कथा-नुसार ही हैं।

इस प्रति के रचनाकाल का पता नहीं चलता इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी रचना 'कुशललाभ' की रचना के पूर्व हुई है या बाद। किन्तु दोनों प्रतियों में कुछ अंश समान मिलते हैं। जैसे—

अति रूपइ सीता गही, रावण गर्यइ पमाण।
अति दानंइ बली चांपीउ, भूपति ऐह निर्वाण॥

ऐसे ही संस्कृत का निम्नांकित मालिनी छन्द भी जैसा का तैसा उद्धृत मिलता है।

सुखिनः सुखनिधानं, दुःखितानां विनोदः।
श्रवणहृदयहारी, मन्मथस्याग्रदूतः॥
अति चतुर स्वभावः वल्लभः कामिनीनाम्।
जयति जयति नादः पंचमश्चोपवेदः॥

प्रचलित लोककथा होने के कारण एक ही रचना में दूसरे की रचना के अंशों का समावेश हो जाना सम्भाव्य है। यह बातें इस बात का प्रमाण हैं कि हिन्दुओं के प्रेमाख्यानों की कथाएँ लोकगीतों में साहित्यिक रचनाओं के पूर्व बहुत अधिक प्रचलित थीं।

कुशललाभ की तरह दामोदर ने भी नीति और उपदेशात्मक उक्तियों का आयोजन किया है। यह उक्तियाँ कथानक की घटनाओं से ऐसी गुम्फित हैं कि पाठक कथा के रसात्मक स्थलों में आनन्दलाभ के साथ-साथ ज्ञानार्जन भी कर सकता है। जैसे माधव के राजा द्वारा निष्कासित किए जाने पर कवि का यह कथन कि 'राजा यदि प्रजा का सर्वस्व हर ले या माँ अपने पुत्र को विष दे तो इसमें दुख और वेदना की कोई बात नहीं होती। नीति और उपदेशात्मक कथनों के उदाहरण निम्नांकित हैं।

अपने गुणों का बखान करना मनुष्य को उसी प्रकार शोभा नहीं देता जिस प्रकार नारी की 'स्वान्तः काम चेष्टाएँ अशोभनीय प्रतीत होती हैं।'

निज मुख खोलि आप गुण, बुधजन नवि बोलंत।
कामनी आप पओधरा, ग्रहइ एनव शोभंत।

अथवा जिस मनुष्य को नारी का सौंदर्य संगीत और मधुर वचन अच्छे नहीं लगते वह या तो पशु है या योगी।

गीत सुभाषित नारिनी लीला भावइ जेह।
चीत नवि भेदइ ते पंसु अथवा जोगी ते॥

प्रबन्ध-कल्पना

इस रचना की आधिकारिक कथा का उद्देश्य कामकन्दला और माधव का विवाह कराना है। पुहुपावती से माधव के निष्कासन से लेकर कामावती तक इस कथा का प्रारम्भ, कामावती से विक्रमादित्य के प्रण तक मध्य और प्रण से लेकर दोनों के मिलन तक कथा का अन्त कहा जा सकता है। मध्य में गति के विराम के अन्तर्गत कवि ने संयोग-वियोग की नाना दशाओं का रसात्मक वर्णन किया है।

प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत भ्रमर के दंशन की घटना, अमृतलाभ, कामावती में नृत्य समारोह आदि आते हैं। प्रत्येक प्रासंगिक घटना कथावस्तु को कार्य की ओर ले जाने में सहायक हुई है जैसे भ्रमर के दंशन की घटना के कारण ही माधव और कन्दला में प्रेम उत्पन्न हुआ, अमृतलाभ के द्वारा ही दोनों प्रेमी पुनर्जीवित हो कर मिल सके।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि प्रबन्ध-कल्पना, सम्बन्ध-निर्वाह और कार्यान्वय के अवयवों के सन्तुलित सामंजस्य की दृष्टि से यह एक सफल काव्य है।

- - -

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख वर्णन

रूप वर्णन के अन्तर्गत कवि ने नायिका के सौन्दर्य-चित्रण मे परंपरागत उपमानों का ही सयोजन किया है जैसे कदला के अधर प्रवाल की तरह लाल हैं वह चन्द्रवदनी एवं मृगनयनी है, उसके दाँत अनार के दानों की तरह हैं और जंघा कदली के खम्भ के समान हैं।

अगर करीर के पेड मे पत्ते नहीं निकलते, चातक के मुख में स्वाति का बूँद नहीं गिरता और उल्लू सूर्य को नहीं देख पाता तो इसमें वसन्त सूर्य अथवा स्वाति नक्षत्र का क्या दोष है।

ऐसे मनुष्य का भाग्य नहीं बदल सकता चाहे सूर्य पश्चिम मे उगे और अग्नि शीतलता प्रदान करने लगे[1]।

नीति और उपदेशात्मक उक्तियों के सामाजिक राजनैतिक और नैतिक पक्ष पर कुशललाभ की रचना मे विवेचन किया जा चुका है यहाँ यह कह देना काफी होगा कि इन रचनाओं मे मिलने वाली ऐसी उक्तियाँ तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक भावनाओं एवं प्रवृत्तियो का अंकन करती हैं जो इन काव्यों के लोकपक्ष के मूल्याकन की दृष्टि से बड़ी महत्त्व पूर्ण हैं।

संयोग शृंगार

संयोग शृंगार में कवि ने प्रेमी और प्रेमिका के मिलन का बड़ा शालीन वर्णन किया है उसमें न तो कहीं अश्लीलता की छाया है और न मर्यादा का उल्लंघन, जैसे—

> कामा ते रङ्गइ भरी, आवी माधव सेज।
> नाना विधि रङ्गइ रमइ, हइडर अति धणउ हेज।
> एक ऐकनइ वीड़ली। हाथे हाथ दैयेत ॥
> अवर पुरुष मुं वापड़ो। ऐहवा भोग करेत ॥

विप्रलम्भ शृंगार

इस रचना मे विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन दो स्थानों पर मिलता है एक माधव के पुष्पावती से चले जाने पर वहाँ की नारियों का दूसरे प्रोषितपतिका नायिका के रूप में कन्दला का। दोनों वर्णन बड़े सरस और हृदय ग्राही बन पड़े हैं। जैसे एक स्त्री घर के आगन मे, दूसरी कमरे में, तीसरी चौखट पर माधव की

---

१. 'करमइ रुखींउ जो टलइ। पैर ऱ्हलइ जो टाह।
पच्छिम दपीअल ऊगमें। सीतल होई दाह॥'

स्मृति में आँसू बहा रही थी[1]। अथवा इन स्त्रियों के लिए रात्रि वर्ष के समान और दिन दस महीनों के समान लम्बा मालूम होता था[2]।

ऐसे ही कन्दला अपनी सखियों से कहती है कि सखी मेरा प्रियतम सौ योजन दूर रहने पर भी क्षण में मेरे पास और क्षण में मुझसे दूर चला जाता है[3]। जागते सोते प्रियतम के ही ध्यान में डूबी रहने वाली नायिका का इतना सुन्दर शब्दचित्र अन्य रचनाओं में कठिनाई से ढूंढे मिलेगा। ऐसे ही कन्दला माधव का दर्शन करना चाहती है किन्तु सशरीर उसका मिलना कन्दला को असम्भव जान पड़ता है अतः वह सोचती है कि अपने शरीर को जला कर वह राख कर दे और उसी राख से प्रियतम को पत्र लिख भेजें। माधव के नेत्र उन अक्षरों को देखेंगे और वह उनकी दृष्टि के स्पर्श का सुख लाभ करेगी[4]।

प्रियतम कंकरीले और कंटीले रास्ते पर भटकता फिरे और कंदला घर में चारपाई पर आराम से सोए यह उसे सहन नहीं हो सकता...।

माधव चाल्यो रे सखी। कंकरीआली वाट॥
माधव सुयइ साथरइ। हुँ किम सुँउ खाट॥

वियोगिनी के लिए चांदनी रात्रि, शीतल मन्द समीर और चन्दनादि शीतल वस्तुएँ शीतलता न प्रदान कर उसके दुख को और भी बढ़ाती रहती हैं[5]।

कहने का तात्पर्य यह है कि कंदला के वियोग वर्णन में कवि ने परंपरा का अनुसरण तो किया है किन्तु उसके वर्णन प्राचीन होते हुए भी नवीन प्रतीत होते हैं।

---

१. एक रुवइ घर आगणइ। एक रुवइ आवास।
एक रुवइ घर मेड़ीइ। दैइवइ पाडीउ ताम॥

२. रमणी वरसा सौ हुइ। दिवस हुआ दस मास।
सूनी काया दढार हुइ। नवि जमिइ कन्थ विलास॥

३. जब सूती तब जागवे। जब जागूं तब जाइ।
जोजन सोते प्रीआ वसइ। क्षिणि आवइ क्षिणि जाइ॥

४. हंइहु वाली मसि करु। अक्षर लखाउं सोइ।
ते कागल पीउ वाचस्यइ। दृष्ट मेलावउ होइ॥

५. चन्दा चन्दन, केली वन, पवन सुसीतल नीर।
देख सखी! भुज पीउ बिना, पाँचइ दहइ सरीर॥

माधवानल नाटक

—राजकवि केस कृत

रचनाकाल सं० १७१७

कवि-परिचय

कवि का जीवनवृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु आलम की छोटी प्रति के अनुकूल है[1]।

कथा के प्रारम्भ में मंगलाचरण है जिसमें शिव को वन्दना की गई है। शिव की वन्दना के उपरान्त कवि ने दुर्गा की वन्दना की है और गुरु माहात्म्य पर अपने विचार दिए हैं।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख

कवि ने रूप सौन्दर्य वर्णन में परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का सयोजन किया है किन्तु वे स्वतःसिद्ध से जान पड़ते हैं, ऊपर से लादे हुए नहीं।

काले-काले बालों के बीच सजी हुई सुमनराशि पर उत्प्रेक्षा करता हुआ कवि कहता है कि नायिका के इस शृङ्गार में ऐसा प्रतीत होता है मानों काले बादलों में पानी की बूँदे चमक रही हों। बालों के बीच चमकता हुआ बेंदा ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलों में बिजली चमक रही हो[2]।

---

१. देखिए परिशिष्ट—माधवानल कामकंदला—'आलम'।

१. चीकने चिहुर बार बारनि सुमन पुंज
मानौं मेघ माल जलबुंद उमहति है।

× × ×

चौका की चमक चक चौंधतु चतुर चित्ति
दामिनि चौंधत कछुक बिहंसाई॥

संयोग शृंगार

यद्यपि कवि ने रति का सीधा वर्णन नहीं किया है तथापि उसके सुरतान्त वर्णन में शृङ्गारिकता की कमी नहीं। रति के उपरान्त नारी के वस्त्रों की अस्त-व्यस्त अवस्था का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'टूट गई लर मोतिन की सब सारी सलोट परी अधिकाई।
छूटी लटें अंगिया वर चंदन अंगनि अंग महा सिथलाई॥
राति रमी पति के संग सुंदरि फूलनि मांग लरी विथुराई।
फूली लता मकरध्वज की फरि फूल गये मनु पौन फुलाई॥"

किन्तु इस काव्य में इतिवृत्तात्मक वर्णनों की अधिकता है, यही कारण है कि इसमें संयोग और वियोग की नाना दशाओं का चित्रण नहीं प्राप्त होता। वियोगावस्था के चित्रण का तो नितान्त अभाव प्राप्त होता है। यहाँ यह बात और कह देनी आवश्यक प्रतीत होती है, कि कवि ने इसका शीर्षक नाटक रखा है, लेकिन इसमें नाटकीय तत्त्व का लेश मात्र भी नहीं प्राप्त होता। इसे एक वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक पद्यबद्ध काव्य कहना अधिक उपयुक्त होगा।

भाषा

प्रस्तुत रचना की भाषा ब्रज है जिसमें उसका चलता हुआ रूप प्राप्त होता है।

कहीं-कहीं पर इस कवि की भाषा बड़ी ओजपूर्ण प्राप्त होती है। उज्जैन नरेश विक्रमादित्य की सेना के चलने का प्रभाव डिङ्गल मिश्रित भाषा में बड़ा प्रभावोत्पादक बन पड़ा है।

'दव्वी कनु-कनु दब्बि संक सकुरिग उरग थल।
कमठ पिट्ठ फल मलिग दलिग वाराह दाढ़ बल॥'

छंद

प्रस्तुत रचना में दोहा-चौपाई छन्द के अतिरिक्त भुजंगी, त्रोटक, सवैया, दण्डक, भुजगप्रयात, सोरठा, मोतीदाम, नागस्वरूपिनी छन्द भी प्राप्त होते हैं।

हमारे विचार से अगर कवि ने कथा के विकास में नाटकीय शैली का प्रयोग कर इतिवृत्तात्मक अंशों की कमी की होती तो यह काव्य एक सुन्दर प्रभावोत्पादक काव्य होता।

माधवानल कामकन्दला

(संस्कृत और हिन्दी मिश्रित)

रचयिता—

रचनाकाल १६०० वि० के पूर्व।

यह प्रति हमें याज्ञिक जी के संग्रह में श्री उमाशंकर याज्ञिक द्वारा देखने को मिली थी। प्रस्तुत प्रति उनके अनुसार लालचदास के भागवत दशम् स्कन्ध की प्रति के साथ थी और उसी का एक भाग है। दोनों लिपिकार एक ही हैं। मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ २८९ पर लालचदास हलवाई का नाम मिलता है जो रायबरेली निवासी बताया गया है। इस कवि का कविता काल १५८७ है।

'पन्द्रह सो सत्तासी पहियाँ। समै बिलम्बिन कहनो तहियाँ॥
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरि वासर रजनी उजियारी॥
सकल सन्त वह नावई माथा। वलि वलि जैहों जादव नाथा॥
राय बरेली करनि अवासा। लालच राम नाम के आसा॥'

किन्तु पं० मायाशंकर जी की प्रति में सम्वत् पन्द्रह सो मिलता है—

'संवत पन्द्रह सौ औ जहियां। समय विलंब काम भा तहियां॥
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरि वासर रजनी उजियारी॥
सोनित नग्र सुधर्म निवासा। लालच तुअ नाम की आसा॥'

इस प्रकार लालचदास श्रोनित पुर नगर का निवासी मालूम होता है। श्रोनितपुर नगर के सम्बन्ध में श्री नन्दलाल डे एम० ए० बी० एल० लिखते हैं कि 'कुमायूं में केदारगंगा के पास श्रोणित नगर अवस्थित है जो ऊकीमट और गुप्त काशी से छ मील दूर है। इसी श्रोणितपुर के बारे में श्री पण्डित शालिकराम वैष्णव ने उत्तराखण्ड रहस्य के पृष्ठ १७२ पर लिखा है, 'भीरी रुद्र प्रयाग केदारनाथ में गुप्त काशी के पास दो मील पश्चिम की ओर मुख्य सड़क से बाहर फेगू नाम के ग्राम में एक दुर्गा जी का मन्दिर है। इस स्थान का नाम स्कन्द-पुराण में फेतकारिण पर्वत लिखा है। उपर्युक्त फेगू ग्राम से एक मील आगे उसी

पर्वत पर वामसू नामक ग्राम है। यह स्थान वाणासुर के तप का स्थान था। यहीं पर उसने अजेयत्व प्राप्त करने के लिये महादेवी की तपस्या की थी। इस कारण उसका नाम वामसू हुआ। इस स्थान पर यादवों से युद्ध हुआ था उस युद्ध में रक्त की नदियाँ बहीं थी, इसीसे वह अब तक शोणितपुर[1] नाम से विख्यात है।

रायबरेली और शोणितपुर वाले लालचदास में तिथि के अनुसार ८७ वर्ष का अन्तर पड़ता है दोनों का निवास स्थान भी भिन्न है। यह तो याज्ञिक जी से पता नहीं चल सका कि किस लालचदास की पोथी से उन्हें यह रचना प्राप्त हुई थी किन्तु यदि दो लालचदास मान लिये जाएँ तो प्रस्तुत ग्रंथ की रचना सं० १५०० से लेकर संवत् १६०० के बीच कहीं ठहरती है।

कथावस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु आलम की छोटी प्रति के अनुकूल है, केवल दो परिवर्तन मिलते हैं। कामावती से निष्कासित माधव जब भटक रहा था, तब उसे एक पथिक मिला जो विक्रमादित्य की एक समस्या लेकर कामावती में, कामसेन के पास जा रहा था। माधव ने उसकी समस्या पूर्ति कर दी। यही ब्राह्मण उसे उज्जैनी ले गया।

माधव को ढूंढ़ने के लिये भोगविलासनी वेश्या मन्दिर में गई और उसने सोते हुए माधव पर पैर रखा माधव ने कहा कन्दला अपना पैर मेरे गात्र से हटाओ। भोगविलासनी ने माधव को इस प्रकार पहचाना और विक्रमादित्य से बताया।

प्रस्तुत रचना संस्कृत में है किन्तु बीच बीच में अपभ्रंश और हिन्दी के दोहे भी मिलते हैं जिनकी भाषा परिमार्जित है। संस्कृत के अंश कहीं कहीं आनन्दधर की पुस्तक से मिलते हैं। जैसे,

> 'उदयति यदि भानुः पश्चिमायां दिशायां,
> विकसति यदि पद्‌म पर्वताग्रे शिलायां।
> प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति
> वह्निः... ....भावनी कर्मरेखा ॥

1. "The ancient Sonitpur is still called by that name and is situated in Kumaon on the bank of the river Kedar Ganga or Mandakni about 6 miles from Ookinath and Guptakashi. Guptakashi is said to have been founded by Bana Raja within Sonitpur."

—Indian Antiquary, November, 1924.

अथवा

किं करोमि किं गच्छामि रामो नास्ति महीतले ।
कान्ता विरहजन्दुष्काए को जानाति माधवाः ॥

स्वतन्त्र रूप से संस्कृत के गद्य का प्रयोग भी इसमें मिलता है ।

'स्त्री संभोगांतरं लोकेन सौख्यं न रसायन् कारणनां कृतेत्वर्थः युग पद्मानागांतरे। घृत सारं रसनां भुङ्गनाः साहतस्त्वयन् ।'

डिंगल भाषा का भी रूप इस काव्य मे देखने को मिलता है ।

'हियड़ा फटि पशाउ करि केता दुख सहेसि ।
पिय माणस विछोहड़े तू जी विकाइ करेसि ॥'

इस सस्कृत, डिंगल अपभ्रंश मिश्रित भाषा के बीच हिन्दी के दोहरों में ब्रजभाषा के भी दर्शन होते हैं । जैसे,

'एहि जनि जानहु प्रीति गइ दूरप्पन के पास ।
दिन दिन होइ चउग्गनि जोलहि घट मह श्वास ॥'

× × ×

नासा कीर सुहावनी सुक्रउदेजनु कीन्ह ।
देपत वेसरी मन हरै गजमुक्ता फल दीन्ह ॥
कटि सो है केसरि सरिस जंघ जो कदली आहि ।
चलन गयन्दह जीतियो कंठ्यो कोकिल ताहि ॥

यह रचना वर्णनात्मक शैली में प्रगीत है, कन्दला के सौन्दर्य वर्णन के अतिरिक्त और कोई सरस स्थल नहीं मिलता ।

वीसलदेवरासो

नरपति नाल्ह कृत

रचनाकाल सं० १२१२

कवि परिचय

कवि नरपति नाल्ह कौन था, यह जानने के लिए हमे अन्यत्र कोई सामग्री अभी तक हस्तगत नहीं हुई है। कुछ लोगों का यह अनुमान है कि यह कोई राजा था, ठीक नहीं जान पड़ता। उसने स्वयम् अपना परिचय कहीं कहीं 'व्यास', रसायण आदि लिख कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कवि कोई भाट था। 'नरपति' इसका नाम है तथा नाल्ह उसका कौटुम्बिक नाम जान पड़ता है। राजपूताने में अभी तक नरपति महीपति आदि नाम मिलते हैं जिन्हें अब 'नापा' या 'महपा' कहते हैं[1]। अस्तु यह कहा जा सकता है कि नरपति नाल्ह राजा न होकर भाट थे।

रचना काल

कवि नरपति नाल्ह के वीसलदेवरासो का निर्माण काल 'बारह से बहोतराहा मझारि' लिखा है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने सन् १९०० की हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज मे इसे १२२० शक सवत् माना है। लाला सीताराम ने अपने 'वार्नाक्युलर सेलेक्शन' नामक पुस्तक में इसे १२७२ विक्रम सवत् माना है जो ठीक नहीं जान पड़ता। क्योंकि गणना करने पर विक्रम संवत् के १२७२ मे जेठ बदी नवमी बुद्धवार को नहीं पडती। कवि ने स्पष्ट शब्दों में 'बारह सौ बहोत्तराहा मझारि' के उपरान्त 'जेठ बदी नवमी बुद्धवार' भी कहा है। अस्तु हमारे विचार से शुक्ल जी का कहना कि इसकी रचना सवत् १२१२ मे हुई ठीक जान पडती है[2]।

---

१. सत्यजीवन वर्मा के अनुसार।

२. विशेष जानकारी के लिए देखिये वीसलदेवरासो सत्यजीवन वर्मा द्वारा संपादित।

कथावस्तु

धार नामक नगरी में भोज परमार राज्य करते थे। भोज की पुत्री राजमती बड़ी रूपवती थी। एक दिन भोज की रानी ने रूपमती के विवाह के लिए राजा से प्रार्थना की। राजा ने अपने पुरोहितों को रूपमती के लिए योग्य वर ढूँढ़ने के लिए आज्ञा दी। पुरोहितों ने बहुत खोज करने के उपरान्त अजमेरराज बीसलदेव को उसके योग्य पाया और राजमती का विवाह उससे तै कर दिया।

बीसलदेव की बारात चित्तौरगढ़ होते हुए धार पहुँची। माघ पंडित ने अगुवानी की। बड़े समारोह से विवाह कार्य सम्पन्न हुआ और बीसलदेव को बहुत से हय, गयन्द, धन आदि के अतिरिक्त आलीसर, कुड़ाल, मडोवर, सौराष्ट्र, गुजरात, साम्भर तोडा, टोक, एवं चित्तौड़ देश दहेज में प्राप्त हुए।

कुछ दिनों बीसलदेव और राजमती बड़े आनन्द से रहे। एक दिन बीसलदेव ने बड़े गर्व से कहा कि उसके समान कोई दूसरा राजा इस पृथ्वी पर विद्यमान नहीं है। राजमती ने उत्तर दिया 'गर्व न करो स्वामी गर्व करने वाले का गर्व सदैव खर्व होता है।' वास्तव में इस ससार मे तुम्हारे समान कितने ही राजा निवास करते हैं। एक उड़ीसा के राजा को लो उसके यहाँ हीरे की खान है। इसे सुनकर बीसलदेव बडा क्रुद्ध हुआ और उसने प्रण किया कि जब तक वह इस हीरे की खान पर अधिकार न कर लेगा तब तक उसे चैन न आयेगा। राजमती ने उसे इस प्रण से विचलित करने का बड़ा प्रयत्न किया किन्तु वह न माना।

राजमती के द्वारा उड़ीसा के जगन्नाथ के विषय में सुन कर बीसलदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ इसीलिए उसने राजमती के पूर्व जन्म की बातें पूछी। राजमती ने बताया कि पूर्वजन्म मे वह हिरणी थी और जंगल में रहते हुए एकादशी का व्रत किया करती थी। एक दिन एक अहेरी ने उसे मार डाला और फिर उसका जन्म जगन्नाथपुरी में हुआ। जगन्नाथपुरी मे मृत्यु के समय उसने विष्णु का ध्यान किया और उनके प्रसन्न होने पर पूर्व दिशा में पुनर्जन्म न पाने का वरदान माँगा। इस प्रकार वह इस जन्म में मारवाड़ में जनमी है।

बीसलदेव को उसकी भोजाई ने भी बहुत रोकने का प्रयास किया किन्तु उसने इनकी भी न सुनी और उत्तर दिया 'हम बारह वर्ष तक जगन्नाथ का पूजन करेंगे या विष खाकर मर जायेंगे'। मुझे राजमती ने ताना दिया है मैं उड़ीसा अवश्य जीतूँगा'। इसके बाद अपने भतीजे को राज्य सौंप कर वह उड़ीसा की ओर चल दिया। राजा के वियोग में रानी ने दस वर्ष व्यतीत किए।

ग्यारवें वर्ष राजमती ने पण्डित को पत्र देकर उड़ीसा भेजा। पत्र पाकर बीसलदेव उड़ीसाराज देवराज से विदा होकर अजमेर लौटे।

अजमेर में राजा के लौटने पर बड़ा आनन्द मनाया गया और राजमती के साथ बीसलदेव पुनः आनन्द से रहने लगे।

प्रस्तुत रचना के शीर्षक के साथ रासो शब्द के लगे रहने, एवं वीरगाथा कालीन साहित्य के बीच रचित होने के कारण विद्वानों तथा इतिहासकारों ने बीसलदेव रासो को वीरकाव्य की कोटि में रख दिया है। पृथ्वीराज रासो की तरह बीसलदेव रासो भी अब तक वीरगाथा कालीन साहित्य के बीच इतिहासों में पाया जाता है, परन्तु सम्पूर्ण रचना में वीररस की छाया भी नहीं मिलती और न कोई युद्ध वर्णन ही प्राप्त होता है। इसके प्रतिकूल इस रचना के तृतीय खण्ड में (सम्भवतः) जिसकी रचना के लिए ही कवि ने प्रथम दो खण्डों की भूमिका बांधी है, करुणरस प्रधान है। एक प्रोषितपतिका के विरह का वर्णन 'बारहमासा' आदि के द्वारा प्रेमाख्यानक काव्यों की परिपाटी के अनुकूल पाया जाता है।

अगर इस आख्यान के कथावस्तु पर विचार किया जाय तो हम यह कह सकते हैं कि कवि राजमती के ताने का आश्रय लेकर बीसलदेव को बारहवर्ष के लिए विदेश यात्रा कराने का बहाना ढूँढ रहा है।

वस्तुतः यह आख्यान उन प्रेमाख्यानों की कोटि में आता है जिसमें प्रेम का विकास विवाह के उपरांत पति-पत्नी के सम्पर्क से विकसित हुआ है।

कुतबन मंझन जायसी आदि के प्रेमाख्यानों की परम्परा के कारण हिन्दी साहित्य में प्रेमाख्यान शब्द रूढ़ि के रूप में उन्हीं आख्यानों के लिए प्रयुक्त होने लगा था जिनमें 'पूर्वराग' का अंकन कर कवि प्रयत्नावस्था में संयोग वियोग की नाना दशाओं का वर्णन एवं प्रेम की कठिनाइयों का चित्रण किया करते थे और उनका पर्यवसान विवाह के उपरान्त हो जाया करता था। अवश्य ही इस प्रकार के काव्यों का बाहुल्य हिन्दी के प्रेमाख्यानों में मिलता है किन्तु हम पहले ही कह आए हैं कि हिन्दू कवियों ने गुण-श्रवण, चित्रदर्शन एवं प्रत्यक्ष-दर्शन आदि से प्रारम्भ होने वाले प्रेम का चित्रण तो किया ही है किन्तु इसके साथ-साथ विवाह के उपरान्त विकसित होने वाले हिन्दू गार्हस्थिक जीवन में मिलने वाले प्रेम को भी इन काव्यों में आधार बनाया गया है।

'ढोला मारु रा दूहा' एक ऐसा ही काव्य है। उसमें भी नायिका के पिता ने साल्ह कुमार से उसका विवाह करा दिया था। यौवना होने पर नायिका ने अपने पति के वियोग का अनुभव किया और अपने प्रयास के द्वारा उस तक

अपना सन्देश भी पहुँचाया। 'ढोला मारू' में विप्रलम्भ शृंगार प्रधान है ठीक उसी प्रकार वीसलदेव रासो में भी उसकी प्रधानता मिलती है अन्तर केवल इतना है कि एक में बाल्यकाल में विवाह हो जाने के उपरान्त ही पति-पत्नी बिछुड़ जाते हैं और दूसरे में यौवनावस्था मे दोनों कुछ दिन साथ रह कर दुर्भाग्यवश एक छोटी सी बात पर विलग हो जाते हैं अन्यथा दोनों की कथा मे कोई विशेष अन्तर नही मिलता है।

इसके अतिरिक्त बारहमासो का वर्णन, पूर्वजन्म की कथाएँ, दूत के द्वारा बिछुड़े हुए प्रीतम को सन्देश पहुँचाने उसका सन्देश पाकर नायक के लौट आने तथा माहात्म्य का वर्णन आदि सभी बातें हिन्दू कवियों के प्रेमाख्याना के अनुकूल प्राप्त होती हैं।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि 'वीसलदेव रासो' को वीर रस के काव्यां की परम्परा में रखना भूल होगी। इसका वास्तविक स्थान हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों मे ही है।

काव्यसौंदर्य

नखशिख वर्णन

प्रस्तुत रचना मे नायिका का नखशिख वर्णन परम्परागत है। हिन्दी के कवि स्त्रियों के दाँतों के लिए अनार के दानों से, स्वर के लिए वीणा और कोकिल से, तथा गति के लिए गयन्द की गति से तुलना करते आए हैं। इस रचना में भी वही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

> 'दन्त दाड़िम कुली जी सी।
> मुखी अमृत जांणो वाजै कै वीण।
> ससि वदनी जी ज्यों मा गयंद।
> अखड़ियां.........रतनालियां।
> मौहरा जांणे भमर भमाय।'

संयोगशृंगार

प्रस्तुत रचना मे सयोग की नाना दशाओं का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

विप्रलंभ शृंगार

वीसलदेव के दक्षिण देश में चले जाने के उपरान्त कवि ने तृतीय खण्ड मे नायिका की विरह जनित पीडा का वर्णन किया है जो बड़ा सुन्दर हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक है। इस अंश में कवि ने बारहमासा का वर्णन कवि परम्परा अनुकूल ही किया है।

प्रिय के चले जाने पर वियोगिनी को अपना जीवन शून्य, नीरस एवं बोझ सा प्रतीत होता है। उसे धूप-छांह तथा अन्य प्राकृतिक व्यापार अच्छे नहीं लगते ऐसी अवस्था में उसे कवियों के काल्पनिक महल भी श्मशानभूमि की तरह प्रतीत होने हैं।

'खो दुख भीनी पंजर हुई।
धन हू न भावई तिउया सन्हिाण।
छाहणी धूप न आलगई।
कवियक भूपड़ा होइ मसान।'

उपर्युक्त उद्धरण का अन्तिम चरण भावव्यंजना की दृष्टि से बड़ा मार्मिक है कवियों के काल्पनिक महल सुन्दरता, सौख्य और ऐहिक जीवन की सुन्दरतम् वस्तुओं के प्रतीक कहे जाते हैं। कवि का तात्पर्य इस स्थान पर ससार की सारी भोगविलास की सामग्री से है जो विरहिणी को वियोग में श्मशान भूमि के समान नीरस, निर्मूल, और चिता पर पड़ी हुई मुट्ठी भर राख के समान मूल्यहीन प्रतीत होती हैं।

विरह के अतिरेक में वियोगिनी को जीवन भार स्वरूप प्रतीत होता है और वह अपने भाग्य को कोसते हुए कहती है कि हे हृदय तुम निर्लज्ज हो, क्या तुम पत्थर से निर्मित हो अथवा लोहे से। प्रिय के चले जाने के बाद भी तुम फटकर टुकड़े टुकड़े नहीं हो गए आश्चर्य होता है—तुम फट क्यों नहीं जाते।

'फटी रे हिया नीवालूंवा निर्लज्ज।
पाथरी घड़ीयो के श्रीघट लोह।
भरयभलीयो फूटइ नहीं।
सगुणा प्रीतम तणो विछोह।

प्रिय के ध्यान में अहर्निश मग्न रहने वाली नायिका ने एक दिन प्रियतम को स्वप्न में देखा बिछुड़े हुए प्रियतम को इतने दिनों बाद अपने पास पाकर वह प्रसन्नता से भर उठी। किन्तु दूसरे ही क्षण उसका स्वप्न तिरोहित हो गया। वास्तविक स्थिति का अनुभव कर बेचारी नायिका के लिए पछताने के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया।

आज सखी सपनान्तर दीठ।
राग चूरे राजा पलगें वईठ।
इसों हो भंभारा मइ भंपीयो।

दुखित हुई जो हूँ सो होणांइ जाणती सॉच।
हठि कर जातो राखती।
जब जागु जीव पड़ी गयो दाह।

कहने का तात्पर्य यह है कि बीसलदेव रासो एक विप्रलंभ श्रृंगार प्रधान काव्य है इसलिए इसमें विप्रलम्भ श्रृंगार का प्रस्फुटन स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक हुआ है।

भाषा

प्रस्तुत रचना की भाषा राजस्थानी है जो साहित्यिक नहीं कही जा सकती। इसमें महल, ईनाम, नेजा, ताजनो आदि फारसी शब्द भी पाए जाते हैं। गेय होने के कारण इसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं इसलिए हो सकता है कि अन्य भाषाओं के शब्द समय के साथ इसमें आ गए हों। फिर भी हिन्दी की प्राचीन भाषा का यह एक सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

लोकपक्ष

लोकगीत होने के कारण प्रस्तुत रचना में तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाज और जनसाधारण के जीवन की झाँकी भी इस काव्य में प्राप्त होती है जैसे लोगों को उस समय ज्योतिष पर बड़ा विश्वास था कहीं जाने के पूर्व वह लोग 'साइत' विचरवा कर ही चलते थे। बीसलदेव ने दक्षिण की ओर गमन करने के पूर्व पुरोहित को बुलवा कर साइत पूछी। उसने बताया कि अभी एक महीने आपको यात्रा नहीं करनी चाहिये कारण कि चन्द्रमा ग्यारहवें स्थान में है और जोगिनी जोग पड़ता है—

'वाचइ पड़तो बोलइ छइ सॉच
मास एक लगी दिन नहीं।
तिथि तेरस वार सोमवार।
चन्द्रई ग्यारमों देय है।
तीसरो चन्द कह होवीला जोगि।

इस कवि को भूगोल के ज्ञान के साथ-साथ अन्य प्रदेशों में रहने वाले साधारण जनजीवन की चर्या का भी ज्ञान था। राजमती पूर्व देश के लोगों के विषय में कहती है कि पूर्व देश के लोग पान-फूल आदि बहुत खाते हैं (खाने के शौकीन होते हैं) और भोगी होते हैं। भक्ष्य और अभक्ष्य का ध्यान नहीं करते।

ग्वालियर के रहने वाले तथा 'जैसलमेर' की स्त्रियां चतुर होती हैं और दक्षिण देश के रहने वाले व्यसनी होते हैं।

'पूरव देस को पूरव्या लोग ।
पान फूलां तणउ तुं लहइ भोग ।
कण संचइ कु कस भखइ ।
अति चतुराई राजा गढ़ ग्वालेर ।
गोरड़ी जेलसमेर की ।
भोगी लोक दक्षण को देस ।

इसके प्रतिकूल मारवाड देश की स्त्रिया बड़ी रूपवती होती हैं उनकी कटि बड़ी क्षीण होती है और दांत स्वच्छ और चमकदार होते हैं कहना न होगा कि इस अंश में कवि ने अपने देश की तारीफ की है ।

'जनम हुवउ थारउ मारू कह देस ।
राज कुंवरि अति रूप असेस ।
रूप नीरोपमी भेदनी ।
आधा कापड़ झीणइ लंक ।
ललयांगी धन फूवली ।
अहिरध बाला निर्मल दन्त ।

अस्तु बीसलदेव रासो काव्य सौष्ठव की दृष्टि से अगर महत्वपूर्ण रचना नहीं है तो हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की परम्परा उनके स्वरूप एवं भाषा की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है ।

प्रेमविलास प्रेमलता कथा

जटमल नाहर कृत

रचनाकाल सं० १६१३

प्रतिलिपि काल सं० १८०९

कवि-परिचय

यह नाहर गोत्रीय ओरावल जैन श्रावक थे। रचना का प्रारम्भ भी ओम् जैनाय नमः से होता है। आपके पिता का नाम धर्मसी था। लाहौर आप का निवास स्थान था जो उस समय 'साहिबाज खां बहरी' के राज्य में था[१] आपकी अन्य रचनाएँ गोरा बादल की बात, जटमल बावनी, लाहौर गजल, सुन्दर स्त्री गजल, झिगोरा गजल, फुटकर सवैय्यादि का पता चला है जो श्री अगरचन्द नाहटा के पास हैं।

कथावस्तु

"योतनपुर" नगर मे प्रेमविजय राजा राज्य करता था उसके यहां एक परम रूपवती कन्या प्रेमलता का जन्म हुआ। बड़ी होने पर राजा ने उसे अपने राज्य पुरोहित "सुरसत" ब्राह्मण के यहां पढ़ने भेजा। इसी ब्राह्मण के पास राजा के मंत्री मदनविलास का पुत्र भी पढ़ने जाया करता था। नवयुवक कुमार और राजकुमारी एक दूसरे के प्रति आकर्षित न होने पाएं, इसलिए इस पुरोहित ने कुमारी को पर्दे के पीछे बैठाया और उससे कहा कि कुमार कुष्ट रोग से पीड़ित है अतएव उससे दूर रहना। इधर उसने कुमार को कुमारी

१. "सिंध नदी कै कंठ पइ मैवासी चाफेर।
   राजा बली पराक्रमी कोऊ न सकै घेर।
   "बसै अडोल जलालपुर। राजा थिर सहि बाज॥
   रइयत सकल बसै सुखी। जब लग थिरह् राज॥
   तहां बसै जटमल लाहोरी। करने कथा सुमति तसु दोरी॥
   नाहर वसन कछु सो जानै जो सरस्वती कहै सौ आनै॥

का अन्धा होना बताया। इस योजना के अनुसार दोनों की पढ़ाई कुछ दिन चलती रही। एक दिन पुरोहित किसी कार्य वश बाहर गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति में प्रेमलता ने व्याकरण का अशुद्ध पाठ किया इस पर कुमार ने उसे टोकते हुए कहा अन्धी एक सन्धि खण्डित पाठ क्यों पढ़ती है? कुमारी अभद्र व्यवहार से चिढ़कर बोली कोढ़ी मृगनयनी को अन्धी क्यों कहता है। कुमार को कोढ़ी सम्बोधन खला उसने प्रत्युत्तर दिया कञ्चनशरीर कुमार को तू कोढ़ी क्यों कहती है। *इस पर पर्दे से झांककर कुमारी ने उसे देखा दोनों* एक दूसरे को देखकर मुग्ध हो गए और उन्हें गुरु के आने का भी अनुभव न हुआ। इस दशा में दोनों को देखकर गुरु बड़ा चिन्तित हुआ और कुमार को समझाया कि तुम लोगों की यह चेष्टा बड़ी अहितकर होगी इसलिए कुमारी का ध्यान अपने हृदय से हटा दो। गुरु के चरणों में लोटकर कुमार ने प्रेम की भीख माँगी और कहा कुमारी के बिना उसका जीवित रहना असम्भव है। गुरु ने कुमारी को भी समझाया किन्तु वह भी न मानी। दोनों के प्रगाढ़ प्रेम को देखकर गुरु ने उन्हें आशिर्वाद दिया और कहा कि तुम्हारा प्रेम मेरु और ध्रुव की तरह अटल रहे। दोनों गुरु का आशिर्वाद पाकर सप्रेम साथ-साथ पढ़ते रहे।

एक दिन कुमारीने प्रेमविलास से कहा कि उसके पिता उसका विवाह ढूँढ रहे हैं ऐसी अवस्था में दोनों का कहीं भाग चलना श्रेयस्कर होगा अन्यथा विवाह तय हो जाने पर बात बिगड़ जायेगी।

दोनों ने अमावस की रात्रि को महाकाली के मन्दिर में पूजा के उपरान्त अन्य देश की यात्रा करने का निश्चय किया। इसी बीच उस नगर में एक बड़ी तेजस्विनी आई जिसकी वीणा पर लोग मुग्ध हो जाते थे। राजा ने उसे अपने यहाँ कुमारी को वीणा सिखाने के लिए रख लिया जब योगिनी कुमारी को वीणा सिखाती और करुण तान छोड़ती तब कुमारी उसांसें भरने लगती थी। कुमारी की मानसिक पीड़ा जानने की अभिलाषा योगिनी ने प्रकट की। कुमारी ने अपने प्रेम की बात बताई, योगिनी इसे सुनकर प्रसन्न हुई और उसने कुमारी को उड़ने, रूप बदलने एवं अंजन के द्वारा दिव्य-दृष्टि प्राप्त करने की शक्तियाँ प्रदान कीं।

अमावस्या की रात्रि को कुमार और कुमारी महाकाली के मन्दिर में मिले। पूजा के उपरान्त उन्होंने महाकाली से अपने प्रेम के अडिग रहने का वर मागा, *काली ने प्रकट होकर उन्हें आशिर्वाद दिया और योगिनी ने दोनों का विवाह* काली के सामने करा दिया। फिर दोनों आकाश मार्ग से उड़कर रतनपुर पहुँचे।

प्रातःकाल रतन पुर के राजा की मृत्यु हो गई। राजा के निःसन्तान होने के कारण मन्त्रियों से मन्त्रणा द्वारा यह निश्चय हुआ कि 'देवदत्त' हाथी जिसके सिर पर मङ्गल कलश का जल उड़ेल देगा वही राजा घोषित कर दिया जाय। नगर की वाटिका में पहुँचकर देवदत्त ने मङ्गल कलश प्रेमविलास के सिर पर उलट दिया और प्रेमविलास तथा प्रेमलता को उसकी सखी चम्पक के साथ अपने मस्तक पर बिठा लिया। इस प्रकार दोनों रतनपुर में अपना जीवन सानन्द व्यतीत करने लगे।

प्रेमलता को घर पर न पाकर उसके पिता बड़े चिन्तित हुए किन्तु योगिनी से सारा हाल जान कर उनकी चिन्ता जाती रही।

पाटन का राजा चन्द्रपुरी विद्रोही और उदण्ड हो गया था। उसका दमन करने के लिए प्रेमविलास ने चढ़ाई की और विजयी होकर घर लौटा। युद्ध से लौटने के बाद प्रेमविलास सपत्नी अपने पिता के घर गया जहाँ बड़ा आदर सत्कार हुआ। कुछ दिनों वहाँ रहकर वह फिर रतनपुर लोट आया। कुछ दिनों के उपरान्त प्रेमलता ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका नाम प्रेमसिन्धु रखा गया। प्रेमसिंधु के बड़े होने पर सारा राज्यभार उसी को सौंप प्रेमविलास-प्रेमलता ने वानप्रस्थ ले लिया।

प्रस्तुत रचना में लोकोत्तर घटनाओं का संगठन अन्य काव्यों से अधिक मिलता है। नायक-नायिका में प्रेम के प्रादुर्भाव के उपरान्त यह घटनाएँ जहा उसके विकास और पूर्ण परिपाक में सहायक होती हैं वहीं प्रम की अलौकिकता का भी प्रतिपादन करती हैं। उदाहरणार्थ योगिनी की सहायता, काली का आशीर्वाद एवं उसी देवी के सामने दोनों का विवाह लौकिक प्रेम को अलौकिक में परिणित कर देता है। प्रेम की यह रहस्यात्मक अभिव्यञ्जना इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि जैनियों ने लौकिक प्रेमाख्यानों के बीच अलौकिकता के संकेतों का संयोजन सूफियों के अनुसार ही करना प्रारम्भ कर दिया था। केवल काव्य प्रणयन की शैली में ही दोनों में भेद लक्षित होता है। सूफियों का प्रेम आरम्भ में विषम हैं तो इनका आरम्भ से ही सम। सूफियों ने प्रेम की पीर को महत्व प्रदान किया है तो इन्होंने संयोग के सुख को। कथा का शमन दोनों में अधिकतर शांत रस ही में हुआ है।

इसके अतिरिक्त प्रिय को 'परमात्मा' का प्रतीक मानने की जो कवि परम्परा इन प्रेम काव्यों में चल पड़ी थी उसकी अभिव्यञ्जना प्रेमलता के द्वारा कवि ने गुरु के समान कराई है। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि जब से उसने प्रेमविलास को देखा है तबसे उसका सारा ज्ञान, जप, ध्यान, भूख नींद

आदि भूल गए हैं और वह निरन्तर योगिनी की तरह उसीका ध्यान करती रहती है।

जोगन ज्यु ध्यावुं तस ध्याना।
विसर गए सभ मोसो ज्ञाना।
निसि दिन लंउ मन ताकी लागी।
भूख नींद मन ते सब भागी।।

यही नहीं प्रेमविलास उसके लिए 'राम' की तरह देवता एवं 'धर्म ग्रन्थों के समान पवित्र है। उसका स्मरण ही उसके लिए सब कुछ है।

प्रेम विलास हमारे रामा, परम ग्रन्थ मुख ताको नामा।
रसना अवर ग्रन्थ नहि, बूझे दूजौ राम न कौ मुहि सूझे।।

लोग पाषाण की मूर्ति का पूजन करते हैं किन्तु मेरे लिए राम का निवास प्रेमविलास के शरीर में ही है। वास्तव में कुमार ही ब्रह्म की मूर्ति है अन्य ब्रह्म तो झूठ हैं।

पाषान अष्ट धात कौ रामा। इह मूरत घड़ राख्यों धामा।
अपनी गड़ी सो मूरख मानै। हर की मूरत को न पिछानै।।

दो० ब्रह्म रूप मूरत कुँवर अवर ब्रह्म सब झूट।
मुहि मस्तक धरि आदरयौ विधना दीयौ तूठ।।

जहाँ उपर्युक्त अंशों में सगुण ब्रह्म की उपासना की छाया मिलती है वहीं सिद्धों के गुह्य मन्त्र का भी उल्लेख हुआ है। कुमारी महाकाली के मन्दिर में प्रवेश पाने के लिए कुमार से गुह्य मन्त्र का स्मरण करने को कहती है जो किसी अन्य को नहीं बताया जाता[1]।

अस्तु कथानक के मध्य में अथवा यों कहा जाए कि गति के विराम में कवि ने घटनाओं के संयोजन एवं पात्रों के उद्गारों द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। कथानक का अन्त भी जीवन के प्रति भारतीय धार्मिक दृष्टिकोण उपस्थित करता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमविलास प्रेमलता कथा हिन्दू प्रेमाख्यानों में मिलने वाली 'धर्म अर्थ काम मोक्ष' के समन्वय की प्रवृत्ति का जहाँ एक ओर पोषण करती है वहीं सूफियों के प्रभाव से .तर हिन्दू प्रेम काव्यों की परम्परा का प्रतिपादन करती है जिसमें निर्गुण के स्थान पर सगुण ब्रह्म की उपासना मुखरित हुई है।

---

१. गुहज मन्त्र काहु न बतायो।।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

प्रेमलता के रूप-सौन्दर्य वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों का ही आयोजन किया है जैसे उसकी नासिका तोते के समान है, ग्रीवा कम्बु के समान, भुजाएँ मृणाल के तुल्य हैं।

प्रेमलता पुत्री तसु सोहैं,
रूपवंत सुर नर मुन मोहैं।
चन्द्रमुखी मनुहर मृग नयनी,
सुक नासा चंचल पिक वयनी॥
उर पर नारि नकल कुच निकसै,
कली कमोदनहिंसों विकसै।
कुच मुख स्याम अधिक अति सोहैं,
उड़ तिन भृङ्ग वास को मोहैं॥

संयोग शृंगार

संयोग शृंगार में कवि ने केलि, विलास, हाव आदि का वर्णन नहीं किया है और न दाम्पत्य जीवन की क्रीड़ाओं का ही वर्णन इसमें प्राप्त होता है।

विप्रलंभ शृंगार

पाटण के राजा 'चन्द्रपुरी' पर चढ़ाई के लिए गए हुए कुमार के विछोह में प्रेमलता का विरह व्यंजित किया गया है। इस विप्रलंभ शृंगार में कवि-परम्परा का ही अनुसरण दिखाई पड़ता है जैसे प्रेमलता उसके वियोग में जड़ और संज्ञा शून्य हो गई है।

हलत न चलत न उचरत बैना।
साल लगाय चले तन सैना॥

अथवा उसे रात में नींद नहीं आती उठ उठकर इधर उधर भागती फिरती है—

लागै पलक न उठि उठि भागै।
विरह अगनि उर अंतर जागै॥

प्रिय के बिछोह में भी अपने को जीवित देखकर वह अपने को कोसती हुई कहती है।

वज्र समान हमारी छाती। प्रिय वियोग कर फाट न जाती।
नेह रहित नैना मेरे होहू। निकसत नीर न निकसत लोहू॥

युद्ध भूमि में जाते हुए कुमार का वियोग वर्णन मिलता है जो 'प्रेमलता' के सम्बन्ध में कही हुई उक्तियों से अधिक ऊहात्मक है। जैसे प्रेमविलास प्रयाण की पहली मञ्जिल पर प्रेमलता का स्मरण कर मूर्छित हो गए। उनकी मूर्छा के निवारण के लिए किसी ने पंखा झलना प्रारम्भ किया किसी ने उनके वस्त्र के बन्धन ढीले किए और कोई उन पर गुलाब जल के छींटे देने लगा।

एक पवन विजुना कर झोलै। एक चोलणे की कस खोलै।
एक गुलाब जल सीसा ढाले। एक खवास लौंग मुख घालै॥

मूर्छा के उपरान्त कुमार ने प्रेमलता की कागज की मूर्ति बनाई जिसे वह सदैव हृदय से लगाए रहता था।

कागद ले पुतली सवारी। प्रेमलता की रूप सभारी॥
देख-देख दिन हरखत नैना। छाती पर धर सोवत रैना॥

वैसे तो यह वर्णन ठीक है किन्तु हमारे विचार से कुमार का यह वियोग-वर्णन अपनी परिस्थिति के वातावरण में बड़ा उपहासास्पद लगता है। युद्ध-भूमि मे जाते हुए एक वीर की इस विकलता के स्थान पर कवि ने उसकी प्रसन्नता और उत्साह का वर्णन किया होता तो अधिक उपयुक्त होता।

संभवतः प्रेमकाव्य मे वियोगादि का चित्रण करने की परिपाटी का अनुसरण ही कवि को अभीष्ट था। इसलिए इस स्थान पर उसने इसकी पूर्ति की है।

कवि का युद्ध वर्णन अधिक सजीव हुआ है जैसे सावन की झड़ी के समान बाणों की वर्षा हो रही थी, अश्वादि के सिर कट कट कर गिर रहे थे। योगिनियाँ युद्ध भूमि मे जुट आई थी। गीध, श्वान, सियार आदि मास के लोथड़े ले लेकर भाग रहे थे।

सावन घन घट जुड़ी अपारा। बरखन बान जानु जल धारा॥
गड़ा जानु गोले तंह पड़ही। गर्जत अंमु हसत गड़ अड़ही॥
काट सीस सिरटा दल डारै। फिरै अश्व विचगाह सुधारै॥
धड़ धड़ काटि पासु जन गेरै। उड़हि केस जनु कमुस ढेरे॥
वीर सकल जोगड़ मिल आई। पीवहि रगत मांस कुनि खाहि॥
चीलै स्याल गिरज सिवाना,। पल मुख लेइ उडै असमाना॥

भापा

इसकी भाषा चलती हुई नित्यप्रति की बोलचाल की अवधी है जिसमें स्थान-स्थान पर राजस्थानी का पुट मिलता है।

छन्द

यह रचना एक दोहा एक चौपाई के क्रम में प्रणीत है।

अलङ्कार

अलङ्कार मे उपमा, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलङ्कार का प्रयोग किया गया है।

चन्द्र कंवर री बात

—हंस कवि कृत

रचनाकाल—सं० १७४०

लिपिकाल—

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

अमरा पुरी नाम की नगरी में अमर सेन राजा था। उसका पुत्र चन्दकुंवर कामदेव के समान सुन्दर था। एक दिन मृगया में कुमार एक सुअर के पीछे बत्तीस कोस तक पीछा करता चला गया, साथी बिछुड़ गए। लौटते समय कुमार रास्ता भूल गया, जङ्गल में भटकते हुए उसने एक तपस्वी का आश्रम देखा। वहा पहुँचकर उसने विश्राम किया और ऋषि को अपने आने का कारण बताया। ऋषि ने कहा कि तुम 'तंबापुरी' चले जाओ रास्ता भी बता दिया। कुमार 'तंबापुरी' पहुँचा। उस दिन कजली तीज का त्यौहार था। युवतियाँ सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित होकर आनन्द मना रही थीं। कुमार सुन्दरियों के पास पहुँचा, उन्होंने उसके आने का कारण पूँछा। रास्ता भूलने की बात जानकर वे कुमार को अपने साथ नगर में ले गई। कुमार रात को नगर के एक चतुष्पथ पर लेट रहा।

उसी नगर में एक सेठानी रहती थी। जिसका पति विदेश चला गया था। बारह वर्ष से लौटा नहीं था। सेठानी काम पीड़ा से व्याकुल रहती थी। कजरी तीज के दिन वह बहुत व्याकुल हो उठी। उसने सखी से कहा कि वास्तव में यदि तुम मेरी सखी हो तो मुझे मृत्यु से बचा लो। मुझसे मदनज्वर सहा नहीं जाता कोई प्रियतम मुझे ढूंढ कर लादो। सखी इस बात पर तैयार हो गई और किसी सुन्दर युवक की खोज में निकल पड़ी। चतुष्पथ पर उसने कुमार को देखा

उसके रूप और यौवन को देखकर सेठानी के लिए उसे उपयुक्त पात्र समझा। कुमार से बातें कीं और उसने सेठानी के पास चलने को कहा। कुमार पहले तो इस प्रस्ताव पर झिझका किन्तु सखी ने उसे मना लिया। सेठानी के यहाँ कुमार इस प्रकार आनन्दमय जीवन व्यतीत करता हुआ एक वर्ष तक रहा। कुमार के पिता आदि उसकी खोज में बड़े परेशान रहे। एक दिन राजा के प्रधान 'त्रंबक' ने बजाज के वेश में कुमार को ढूंढ़ने के लिए यात्रा की और तबांपुरी पहुँचा। कुमार को सेठानी के यहां पहचाना। उसे अपना वास्तविक परिचय देकर घर चलने को कहा और यह भी बताया कि तंबापुरी के राजा 'अजीदेन' अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करना चाहते हैं। कुंवर ने इसे स्वीकार किया और विवाह करके अपने पिता के घर लौट आया।

यह रचना कवि ने अपने आश्रय दाता परतापसिंह खुमाण को प्रसन्न करने के लिए उनकी आज्ञा से लिखी थी[1]। इसकी हस्तलिखित प्रति प्रो० मोतीलाल जी के सं० १९३२ ई० में पाटण (उत्तरी गुजरात) में प्राचीन लिखित प्रतिय के संग्रह एवं व्यवस्थापक जैन मुनि श्री जयविजय के पास प्राप्त हुई। उनके अनुसार इस प्रति में लेखन संवत् नहीं है। फिर भी वह दो सौ वर्ष पुरानी अनुमानित की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इसकी चार पांच प्रतियां अभय जैन ग्रन्थालय में हैं। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में कुंवर मोतीचन्द जी खजान्ची उदयपुर के संग्रहालय में भी इसकी प्रतियाँ मिलती हैं। लोकवार्ता होने के कारण इसमें समय-समय पर लेखकों ने एवं कहानीकारों ने बहुत कुछ घटाया बढ़ाया है उदयपुर की प्रति में रचना काल के पद्य में सं० १५०४ लिखा है। अभय जैन ग्रन्थालय की प्रति में स० १७४० पाठ है। प्रो० साहब के अनुसार यही बात ठीक है। ग्रन्थकार के नाम के सम्बन्ध में भी विभिन्न प्रतियों में मतभेद है। पंडित मोतीलाल जी मिनारिया ने इसका रचयिता प्रतापसिंह को बताया है किन्तु वह प्रतिलिपिकार हैं ग्रन्थकार नहीं। अभय जैन ग्रन्थालय की एक प्रति में हंस कवि का निर्देश है। तो दूसरी में 'कुसल' का। पाठ भेद भी है किसी में वार्ता कम है किसी में अधिक। हमें जो प्रति प्राप्त हुई उसका

---

१. समरूं सरसत माय गणपति देव के लागूं पाय।
   प्रताप सिंह की आग्या जा कीनी कथा रस कवि राय।
   प्रताप सिंह खुम्भाण ने हुकुम किया करटाय।
   हंस कवि सु ऐसो कह्यो। चतुरक बात सुणाय ॥

रचनाकाल सं० १७४० है[1]।

'चन्द्र कुवर री वात' अन्य रचनाओं से दो बातों में भिन्न है पहली यह कि इसमें स्वकीया के स्थान पर परस्त्री-प्रेम का वर्णन किया गया है। कृष्णकाव्य में परकीया प्रेम को महत्ता मिलती है। रूपमंजरी में, रूपमंजरी दूसरे की पत्नी होते हुए कृष्ण से प्रेम करती है। आन्यापदेशिक काव्यों में जो कि कृष्ण से सम्बन्धित हैं ऐसे आख्यान का मिलना तो ठीक है। लेकिन शुद्ध प्रेमाख्यानों में ऐसे वर्णन प्रधानतः नहीं लक्षित होते। प्रस्तुत रचना समाज के एक ऐसे प्रश्न की ओर इंगित करती है जिसे हिन्दू कवियों मे अधिकतर नहीं पाया जाता। इसलिए यह काव्य अपनी कोटि का एक नवीन काव्य है।

सम्पूर्ण रचना गद्य-पद्य मिश्रित एक चम्पू काव्य है। जिसमें इतिवृत्तात्मकता की अधिकता होते हुए भी संयोग और वियोग के रचनात्मक स्थलों का वर्णन मिलता है। बीच-बीच में प्रेम सम्बन्धी कुछ नीति के दोहों का संयोजन कवि ने किया है जैसे किसी को दूसरे की स्त्री से प्रेम नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे बिछुडने पर दुख होता है। प्रेम के फन्दे मे पड़कर मनुष्य जंजाल में फंस जाता है और एक बार प्रेम होने के उपरान्त हे सखी वह टूटता नहीं[2]। इसी प्रकार कुंवर के लौटने पर माता पिता और बहन की प्रसन्नता का वर्णन जो काव्य के अन्त में किया गया है, वह वात्सल्य रस के साथ साथ तत्कालीन घरेलू टटकों का भी परिचय देता है जो आज भी शहरों और गावो में प्रचलित है, जैसे कुंवर के लौटने पर पिता ने उसे गले से लगाया, बहन ने उस पर लोन उतारा और मा ने बुकचा लगाकर अपनी उगली चटकाई एवं सिर झुकाकर अपनी लटें तोड़ीं[3]। बहन के द्वारा राई लोन उतारने और उँगली चटकाने की प्रथा भारतवर्ष में बड़ी प्राचीन है। शृंगार प्रधान काव्य होने के कारण कवि ने नखशिख वर्णन और संयोग में हावों आदि का चित्रण

---

१. सबकु लगे सुहावणी। रचे सुजोग सीणगार॥
मरसहुँ को मन हरे। सब कू लगमुँ सार॥
सतरह सै चालीस मे। तेरस पोसज मास॥
गुण कियो कर चाहने। भोगी पूरण आस॥

२. प्रीत करां नहीं काय पराए वारगे। बिछुड़त दुख होय के प्रीत के कारने॥
जीवड़ों पड़े जंजाल सुगोरी सखींया। काया छुटे नेह लगे जब अखिया॥

३. बाप तणे गले भेट मिल्यो मायस्तुं। बहन उतारे लुंग भयो सुख दायस्तु।
कर तोड़े बुकचा करे लट तोड़े सिरनाय। इण विध करे कल्पना चंद कुवर की माय।

अधिक किया है। कुमार के चले जाने के उपरान्त सेठानी के विरह का वर्णन केवल पांच छः पंक्तियों में ही मिलता है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख वर्णन

नखशिख वर्णन में कवि ने समय सिद्ध परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है, जैसे नायिका की गति हंस के समान मंथर है वह चंपकवर्णी है, उसके नेत्र खंजन पक्षी के समान चंचल है। घूंघट के बीच कजरारे नेत्र ऐसे सुशोभित होते हैं मानो जल के बीच मछली[1]।

संयोग-शृंगार

संयोग-शृङ्गार में कवि ने किलकिंचित हाव का संयोजन किया है और उसके बाद रति का सीधा वर्णन मिलता है। सुरतान्त का चित्रण भी किया गया है[2]।

विप्रलंभ शृंगार

वियोग शृङ्गार में कवि का हृदय पक्ष नहीं दिखाई पड़ता। उसने सेठानी के वियोग वर्णन में पाँच छः पंक्तियां लिखी हैं लेकिन उनमें कोई सरसता नहीं प्राप्त होती।

भाषा

इस काव्य के पद्यात्मक अंशों की भाषा चलती हुई बोल चाल की राजस्थानी है जिसमें एक प्रवाह है। जैसे—

रहीये प्राणाधार आज की रतियां।
नयणां वरषे नीर के फाटे छतियां॥

बीच-बीच में आई हुई गद्य वार्ता राजस्थानी गद्य में है लेकिन कहीं-कहीं क्रियापद खड़ी बोली के प्राप्त होते हैं जैसे—

---

१. चम्पा बरणी अंग रंग रहे जसको। हंसा चलण संभाव वखाणु तास को॥
खंजन जह्यो नेण वेण जाणुं कोकिया। त्यानु दीजे मुख कुंवर जी मोकला॥

२. हाथी होट विचकर ऊँचे कीयेज नीचे नैन।
अरे! थरे! पिय को पिया लगै बीरी मुख दैन॥
दोउ कुच कर संग्रहे रहे जंग जुग जोर।
नाना उचरत नायिका नागर करत निहोर॥

'गोरी उठ सिणगार कर जो देखो तो दूसरी कुँवर आयो छै, माहा काम देवरो अवतार छै। मैं तो ठीक देह सुपना माहि देख्यो नहीं उसडो आयो छै।'

राजस्थानी में अठैद और छद का प्रयोग मध्यम पुरुष एक वचन में होता है वही अठैद का सन्धि रूप इस वार्ता में छै हो गया है। एक बात और ध्यान देने की है वह यह कि गोरी उठ, बारह बरस हुआ, शहर मांहि आया, प्रयोगों में खड़ी बोली के क्रियापद मिलते हैं।

इस प्रकार कथानक की नूतनता और भाषा की दृष्टि से यह कथा महत्व पूर्ण है।

राजा चित्रमुकट रानी चन्द्रकिरन की कथा

नागरी प्रचारिणी के आर्यभाषा पुस्तकालय में संग्रहीत याज्ञिक संग्रह में इस प्रेमग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ मिलती हैं। पहली 'राजा चित्र मुकट रानी चन्द्र किरन की कथा' है जिसके लेखक और लिपिकाल का पता नहीं है दूसरी 'छत्र मुकुट तथा रानी चन्द्र किरननी' की कथा है जिसका लिपिकाल का स० १९०८ है किन्तु इसमें भी लेखक अज्ञात है—

इन दोनों प्रतियों के आधार पर मूल कथा इस प्रकार है:—

चतुरमुकुट नाम का एक राजा था जो बड़ा ज्ञानी किन्तु बड़ा विलासप्रिय था। उनके रनिवास में बाइस हजार रानियाँ, एक से एक सुन्दर रहती थीं। हर समय वह सुन्दरियों के बीच घिरा हुआ जीवन का आनन्द लाभ किया करता था। एक दिन उसके मन में शिकार खेलने की इच्छा जाग्रत हुई इस लिए अपने सैनिकों की टोली लेकर वह जङ्गल में पहुँचा। एक हिरन का पीछा करते हुए वह बहुत दूर निकल गया और शिविर का रास्ता भूल कर इधर उधर भटकने लगा। थोड़ी दूर और जाने पर उसने देखा कि वन के पक्षी और मोर व्याकुल होकर इधर उधर भाग रहे हैं। इन पक्षियों को पीड़ित करने वाले प्राणी को दण्ड देने के लिए राजा चित्रमुकुट धनुषबाण लेकर उसकी खोज में चल पड़ा और उस स्थान पर पहुँचा जहाँ एक बहेलिया एक हंस को पकड़ कर अपनी झोली में डालने जा रहा था। राजा को आते देखकर उस हंस ने बहेलिये से अपनी जान बचा कर भाग जाने को कहा। इतने में राजा उस स्थान पर पहुँच गया और हंस को जाल से मुक्त कर बहेलिये को भगा दिया। बन्धन से मुक्त होने पर हंस ने राजा को आशीर्वाद देकर उसकी सेवा करने की कामना की—

जब फंदा राजा ने खोला
हंस आसिरबाद दे बोला
तौ असतुति कहा कीजिये
धन जनन धन बाप॥

राजा ने प्रसन्न होकर उस हंस को अपने साथ ले लिया और एक सुन्दर पिंजरे में बन्द कर अपने महल में ला रखा।

उसी रात को रनिवास की सुन्दरियां शृङ्गार कर के राजा के सम्मुख आने लगीं और उसे रिझाने का प्रयत्न करने लगीं। किन्तु किसी की ओर भी राजा आकृष्ट न हुआ। इतने में एक सर्वसुन्दरी राजदुलारी राजा के सामने आकर हाव-भाव दिखाने लगी। राजा उसपर रीझ गया और उसे अपने बाहुपाश में आबद्ध कर आवेश में कहने लगा कि ए सुन्दरी तुम मेरी स्वामिनी हो और मैं तुम्हारा दास हूँ। राजा के इस कथन पर हंस ने हँस कर राजा की ओर देखा—

"तिन महिं एक राज दुलारी, सुन्दर सुघर विचितर नारी।
गति गयंद ज्यों ठमकति आवै, रहसि कलोल कुंवर दिखलावै।
सब कामिन में वह रङ्ग भीनी, कुंवर दौरि अङ्क भरि लीनी।
प्रेम उमगउ नहीं पति आई, कह्यो कुंवर तुही मन भाई।
हे प्यारी मैं तेरा चेरा, हंस हंसा राजा मुख हेरा"॥

हंस के हंसने का कारण पूछने पर उसने राजा से बताया कि जिसे आप इतनी सुन्दरी समझते हैं, उसके हाथ का तो पानी भी मैं नहीं ग्रहण कर सकता। *आपने सम्भवतः सौंदर्य अभी तक देखा ही नहीं है। राजा इसपर उस* सुन्दरी का निवास स्थान जानने के लिए बहुत लालायित हो उठा। हंस ने बताया कि अनूप नगर की कुमारी चन्द्र किरन संसार की सबसे श्रेष्ठ सुन्दरी है। हंस से चन्द्रकिरन के सौन्दर्य की बात सुन कर राजा चित्रमुकुट बड़ा विकल हो *गया और उसे देखने के लिए योगी के रूप में एक सहस्त्र राजकुमारों को लेकर* हंस के साथ अनूप नगर की ओर चल पड़ा।

एक वर्ष की यात्रा के बाद वह एक निर्जन समुद्र तट पर पहुँचे, वहाँ से बाहर जाने के लिए किसी प्रकार का साधन नहीं था—हंस के कहने पर राजकुमार ने अपने साथियों को उसी स्थान पर छोड़कर हंस की पीठ पर आरूढ़ हो आगे की यात्रा प्रारम्भ की और बहुत दूर उड़ने के उपरान्त हंस चन्द्रकिरन के महल के उद्यान में उतरा।

राजा को वहीं छोड़कर हंस कुमारी चन्द्रकिरन के पास पहुँचा। बहुत दिनों के पश्चात् हंस को आया हुआ देखकर चन्द्रकिरन बड़ी प्रसन्न हुई। तदुपरान्त राजा चित्रमुकुट की प्रेम की कथा को सुनकर चन्द्रकिरन भी मोहित होकर उससे मिलने के लिए लालायित हो उठी। अर्द्ध रात्रि को हंस ने चतुरमुकुट को राजकुमारी के शयनगृह में पहुँचा दिया। चन्द्रकिरन को सोती देखकर

राजा ने उसे जगाया नहीं वरन् उसका रूपपान करता रहा और अंत में अपनी अंगूठी उसे पहना कर लौट आया—

प्रातःकाल अपने हाथ में दूसरे की अंगूठी देखकर कुमारी बड़ी चकित हुई, अंत में वह सारी बात समझ गई और दूसरी रात को चतुरमुकुट की बाट लेटे-लेटे जोहती रही। जब चतुरमुकुट फिर अर्द्ध रात्रि में आकर उसका अधर पान करना चाहा तो रानी ने उसे पकड़ लिया और आदर के साथ ले गई। दोनों ने 'रति' में रात्रि व्यतीत की। उस दिन से नित्य राजकुमार रानी के पास आने लगा। दाम्पत्य सुख की अधिकता के कारण कुमारी का रूप दिन प्रतिदिन निखरने लगा और उसके अंग और भी लावण्य-मय होने लगे।

दो ही तीन महीने में राजकुमारी के शरीर में अद्भुत परिवर्तन देखकर दासियाँ बड़ी चकित हुई और उनके मन में शंका जागृत हुई कि कुछ दाल में काला है। अतएव वे एक दिन राजा के पास गई और अपने प्राणों की भीख माँगकर उससे कहा कि कुमारी पथ-भ्रष्ट हो गई हैं उसके शयन गृह में नित्य कोई चोर आता है।

राजा को इस पर बड़ी चिन्ता हुई। राजा का एक मन्त्री 'गड़ुआ साहु' नाम का था जो जाति का बनियाँ था और बड़ा फितरती था। उसने इस चोर के पकड़ने का बीड़ा उठाया और राजकुमारी के मन्दिर में बहुत-सा अबीर और गुलाल भेज दिया। फिर सारे धोबियों को बुलाकर कहा कि जो किसी पुरुष के रंगे हुए कपड़े मेरे पास उपस्थित करेगा उसे मैं बड़ा इनाम दूँगा—

रात को कुमारी ने चतुरमुकुट के साथ खूब होली खेली और प्रातःकाल कुमार ने अपने कपड़े धोबी के यहाँ धुलने भेज दिए। दूसरे दिन राजकुमार उद्यान में पकड़ा गया और राजा ने उसे मृत्युदण्ड की आज्ञा दी।

हंस ने चन्द्रकिरन को आकर सारा वृत्तांत बताया इस पर वह जीवित ही जल मरने के लिए उद्यत हो गई। कुमारी के इस संकल्प को दासियों ने राजा से जाकर बताया इस पर राजा ने चतुरमुकुट का मृत्युदण्ड एक दिन के लिए स्थगित कर दिया और उसे राजदरबार में बुलवा भेजा। दरबार में आने प चतुर मुकुट ने अपना परिचय देते हुए बताया कि मैं उज्जैन का राजकुमार हूँ। इस पर राजा ने प्रसन्न होकर चन्द्रकिरन का विवाह चतुरमुकुट से कर दिया।

कुछ दिन ससुराल में व्यतीत करने के उपरान्त राजकुमार ने घर वापस जाने की तैयारी की। वह चन्द्रकिरन को लेकर हंस पर आरूढ़ हो चल दिया। किन्तु आकाश मार्ग में चन्द्र किरन बहुत डरने लगी इसलिए वह लोग बीच समुद्र के एक निर्जन टापू पर उतर पड़े वहीं चन्द्रकिरन को पुत्र उत्पन्न हुआ। उस टापू

से थोड़ी दूर पर कञ्चन नगरी थी। राज कुमार हंस को लेकर उस नगरी में गुड़, सोंठ, आग, घी आदि लेने गया लौटते समय राजकुमार के हाथ से घी गिरकर हंस के पंख पर बिखर गया और आग की चिनगारी के कारण उसमें आग लग गई जिससे हस जल कर भस्म हो गया।

राजकुमार चन्द्रकिरन के पास न जा सका। इधर कञ्चनपुर के राजा की मृत्यु हो गई और मन्त्रियों ने मन्त्रणा कर यह निश्चित किया कि प्रातः काल जंगल में जो पहला मनुष्य मिलेगा उसे राजा बनाया जाएगा इसी के फलस्वरूप जनता राजकुमार को जङ्गल से ले आई और उसे सिंहासनारूढ़ किया सिंहासन पर बैठने के उपरान्त राजा ने चन्द्रकिरन को ढूढने के लिए चारों दिशाओं में चर भेजे।

इधर राजकुमार के न लौटने पर राजकुमारी विलाप करती हुई अपने दिन काट रही थी। दैव योग से उस टापू के पास से एक खत्री वणिक का जहाज निकला—उस निर्जन टापू पर स्त्री के रुदन की आवाज सुनकर खत्री ने नौका रुकवाई और टापू पर पहुँचा। चन्द्रकिरन के रूप को देख कर वह उस पर मोहित हो गया और अपने घर ले आया।

अपने घर पर उसने नाना प्रकार के प्रलोभनों द्वारा किरन पर विजय पानी चाही किन्तु उसमें सफल न हो सका। बलात्कार करने के लिए उद्यत खत्री पर - चन्द्रकिरन ने पदाघात किया जिससे क्रुद्ध होकर इस खत्री ने चन्द्रकिरन को एक वेश्या के हाथ बेंच दिया।

तेरह वर्ष तक चन्द्रकिरन राजा और राजकुमार के लिए रोती हुई वेश्या के यहां जीवन व्यतीत करती रही।

इधर खत्री के यहा राजकुमार शिक्षा-दीक्षा पाकर बड़ा हुआ और तेरहवें वर्ष से उसमें विलास की भावना उद्दीप्त होने लगी। एक दिन वह वेश्याओं के अड्डे से निकला और खिड़की पर बैठी हुई चन्द्रकिरन को देखकर उसके रूप पर मोहित हो गया। जब वह चन्द्रकिरन के सम्मुख पहुँचा तो उसे देखकर रानी का ममत्व जाग्रत हो उठा और वह रो पड़ी। कुमार ने इस रोने का कारण पूछा चन्द्रकिरन ने बताया कि मेरा पुत्र भी तुम्हारे ही समान था किन्तु आज से तेरह वर्ष हुए जब एक खत्री ने उसे शैशव अवस्था ही में मुझसे छीन लिया था और मुझे वेश्या के हाथ बेच दिया।

कुमार घर लौटा और उसने अपनी दासी से अपनी माँ का पता पूछा बहुत धमकाने पर दासी ने पूर्व कथा बताई इस पर कुमार बड़ा क्रुद्ध हुआ और खत्री को जाकर मारने लगा खत्री ने राजदरबार में पुत्र के इस व्यवहार

की शिकायत की। कुँवर ने अपनी सफाई दी कि यह मेरा पिता नहीं है मेरा पिता तो उज्जैन नगर का राजा है मेरी माँ का बहुत बड़ा घराना है और मेरे नाना का नाम चन्द्रभान है।

इसे सुनकर चतुरमुकुट ने कुमार को अपने हृदय से लगा लिया और खत्री को उस वेश्या के साथ हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा देने की आज्ञा दे दी।

तदुपरान्त वह चन्द्रकिरन के पास पहुँचा और उसे सारा वृत्तान्त बताया। हंस के मरने की सूचना पाकर चन्द्रकिरन बहुत रोई। राजा के साथ जाने के पूर्व उसने हंस की समाधि पर जाने की अभिलाषा प्रकट की।

हंस की समाधि पर पहुँच कर चन्द्रकिरन ने हंस के डखने-पखने जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि मैं पतिव्रता रही हूँ तो मेरे प्रताप से हंस पुनः जीवित हो जाए। उसके इतना कहते ही हंस जीवित हो गया। पाँच महीने तक राजा, राजकुमार तथा रानी आनन्दमय जीवन व्यतीत करते रहे।

एक दिन हंस ने राजा को उसके माता पिता एवं नौ सौ कुमारी की याद दिलाई। इस पर सबने नौ सौ जहाजों में सोना रुपया आदि भर कर घर की ओर यात्रा की। रास्ते में नौ सौ कुमारी को साथ लेकर चतुरमुकुट उज्जैन पहुँचे जहाँ उनके माता पिता ने स्वागत किया और हर्ष मनाया।

प्रस्तुत रचना एक वर्णनात्मक काव्य है जिसमें लोकोत्तर घटनाओं के संयोजन के द्वारा कवि ने कहानी में 'कौतूहल' तत्त्व को अन्त तक बनाए रखा है। भाव-व्यंजना और काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह रचना उतने महत्त्व की नहीं जितनी कि लोकगाथाओं की परम्परा और तत्कालीन सामाजिक जीवन के कतिपय चित्र उपस्थित करने के कारण इसको महत्त्व दिया जा सकता है।

किसी भी सन्तानहीन राजा की मृत्यु पर उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिए लोक कथाओं में अधिकतर किसी हाथी के द्वारा उस व्यक्ति के चुने जाने अथवा सूर्य के निकलने के पूर्व नगर में प्रवेश करने वाले किसी भी अपरिचित व्यक्ति को सिंहासनारूढ़ करने की प्रथा मिलती है। ऐसे ही किसी सती नारी के प्रताप से मृतक व्यक्तियों के पुर्नजीवित हो जाने की लोकोत्तर घटनाओं का भी परिचय इन लोककथाओं में पाया जाता है। उपर्युक्त दोनों बातें चतुरमुकुट के कंचनपुर में सिंहासनारूढ़ होने और मृतक हंस के पुर्नजीवित होने में पाई जाती हैं।

स्त्रियों के क्रय-विक्रय की तत्कालीन प्रथा का भी आभास चन्द्रकिरन को वेश्या के हाथों बेचे जाने की घटना में मिलता है।

अपराधियों को हाथी के पैरों के नीचे राजा द्वारा कुचलवा दिए जाने के प्रचलित राजदंड एवं वेश्यागमन के सामाजिक रीति का भी परिचय इस काव्य में पाया जाता है।

अस्तु, लोक कथाओं की परम्परा एवं सामजिक परिस्थितियों तथा जन साधारण के लोकोत्तर घटनाओं के विश्वास पर अवलम्बित यह रचना साहित्यिक *विशेषता न रखते हुए भी प्रेमाख्यानों की परम्परा के क्रमिक विकास के अध्ययन* के विचार से महत्वपूर्ण है।

काव्यसौन्दर्य

नख–शिख वर्णन

नारी के रूप-सौन्दर्य वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का ही प्रयोग किया है जैसे उसके अधर 'लाल' के समान लाल हैं, दांत बिजली के समान चमकीले हैं जब वह बोलती है तो फूल झड़ते हैं, रोती है तो मोती—

दसन दामिनि देखि कै दुरी गगन में जाय।
हीरा लाल लजाय कै दुरे भूमि में जाय।।

उपर्युक्त अंश में व्यतिरेक और प्रतीप अलङ्कार के द्वारा कवि ने नायिका के सौन्दर्य का वर्णन बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है।

जब बोलै तब फूल पसारै।
जब रोवै तब मोती डारै।।

कवि ने जहाँ एक ओर कवि सिद्ध उपमान और कहावतों का प्रयोग किया है वहीं चन्द्रकिरन के असाधारण रूप की व्यञ्जना भी बड़े सुन्दर ढंग से की है।

संयोग पक्ष

संयोग पक्ष में हावों आदि का सयोजन नहीं मिलता वरन् रति का सीधा वर्णन चन्द्रकिरन और कुमार के मिलने पर पाया जाता है। जो तत्कालीन काव्य-परिपाटी का अनुसरण मात्र कहा जा सकता है—

'दोउ विरह के माते, चाव भरे जौवन रंग राते।
कुँवर करै जो मन भावै, कबहूँ हँसे कबहु उर लावै।
ससकी लैलै कामिनि उठि धावै, कंचन कुच पर हाथ चलावै।
फिरि-फिरि चूमत चन्द्र कपोला, देखै कामिनि कारज उसके'।।

वियोग पक्ष

संयोग पक्ष की तुलना में इस काव्य का वियोग पक्ष अधिक हृदयग्राही बन पड़ा है जैसे प्रियतम के बिना विरहिणी को रात काली नागिन के समान प्रतीत होती है किन्तु विवश नारी को सिवा अपने भाग्य को कोसने के ओर कोई चारा नहीं रह जाता—

रेन भई अति ही अँधियारी, पिय बिन मानो नागिन कारी।
हाय-हाय करि साँस लेवै, फिरि-फिरि दोस दई को देवै॥

वेश्या के यहाँ चन्द्रकिरन ने आठ वर्ष व्यतीत किए। इन आठ वर्षों की लम्बी अवधि में कवि चन्द्रकिरन की वियोगावस्था एवं मानसिक दशा का चित्रण कर सकता था किन्तु ऐसा न कर केवल एक पंक्ति में उसने यह कहा है कि 'घर में जो व्यक्ति हँसता हुआ घुसता था वह चन्द्रकिरन की अवस्था देखकर रोता हुआ जाता था'—

घर भीतर जो विसनी आवै, हँसता पैठे रोता जावे।

यह अवश्य है कि उपर्युक्त एक पंक्ति में चन्द्रकिरन की दयनीय दशा का परिचय मिल जाता है किन्तु काव्य की दृष्टि से इस स्थल पर कवि का करुणरस एवं विप्रलम्भ शृंगार को अंकित करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

सम्पूर्ण रचना पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि भाव-व्यंजना के रसात्मक स्थलों को नहीं पहचान सका है इसलिए काव्य सौष्ठव के स्थान पर इस रचना में इतिवृत्तात्मक वर्णन ही अधिक मिलते हैं।

छंद

इस काव्य का प्रणयन दोहा चौपाई छन्द में हुआ है जिसमें आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम पाया जाता है।

भाषा

इस रचना की भाषा प्रधानतया चलती हुई अवधी है किन्तु बीच-बीच में खड़ी बोली का पुट भी मिलता है जैसे—

जब फन्दा राजा ने खोला।
हँस आसिरवाद दे बोला॥

राजा ने खोला 'दे बोला' आदि क्रियापद आधुनिक खड़ी बोली के प्राप्त होते हैं। अस्तु भाषा की दृष्टि से हिन्दी की खड़ी बोली की कविता के विकास की दृष्टि से यह रचना ऐतिहासिक महत्व की ठहरती है।

उषा की कथा

रामदास कृत
रचनाकाल सं० १८९४

कवि-परिचय

आप सिरौनिक के रहने वाले थे। आपके पिता का नाम मनोहर था और आप कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

कथा वस्तु

एक दिन राजा परीक्षित ने सुखदेव से उषा-अनिरुद्ध की कथा पूछी। सुखदेव जी ने उन्हें बताया कि श्री कृष्ण जी के दो द्वारपाल इजै, विजै नाम के थे। उन्हें अपने बल का बड़ा गर्व हो गया था। श्री कृष्ण जी को यह बात मालूम हुई और वे इनका गर्व खण्डन करने का विचार करने लगे। एक दिन ब्रह्मा के पुत्र सनकादिक कृष्ण का दर्शन करने आए किन्तु इन द्वारपालों ने उन्हें अन्दर नहीं जाने दिया। इस पर सनकादिक ने इन्हें राक्षस योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। शाप से व्याकुल होकर इन्होंने क्षमा याचना की। सनकादिक ने कहा जाओ तुम्हारे मोक्ष के लिए भगवान को तीन जन्म लेने पड़ेंगे इसीलिए यह लोग प्रथम जन्म में हिरण्यकश्यप हुए। दूसरे में रावण तीसरे में कंस। इसके अनन्तर इन्होंने संक्षेप में प्रहलाद की भक्ति का वर्णन किया फिर इन्द्र की कथा बताई जिसमें अपने गुरु के अपमान करने के कारण ही राजा बलि ने इन्द्रासन इनसे छीन लिया था। फिर गुरु के द्वारा ब्रह्मज्ञान पाने पर इन्द्र ने पुनः अपना इन्द्रासन पाया। तदुपरान्त संक्षेप में समुद्र-मंथन, बलि-छलन और रुक्मिणी हरण तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के जन्म की कथा बताने के बाद उन्होंने उषा अनिरुद्ध की कथा प्रारम्भ की है और कहा कि बाणासुर शोणितपुर में रहता था। उसने बारह वर्ष तक कठिन तपस्या की। इस पर शिव ने प्रसन्न होकर उसे मनोवाञ्छित वर मांगने को कहा। बाणासुर ने कहा कि मैं अमर हूँ और पृथ्वी के सारे राजों और सातों लोकों को विजय करना चाहता हूँ।

शिव से वरदान पाकर यह शोणितपुर लौट रहा था कि रास्ते में नारद जी मिल गए। उन्होंने उससे पूछा कि शिव ने तुम्हें क्या वरदान दिया है। बाणासुर से अमरता की बात सुनकर उन्होंने कहा कि तुमने भूल की मुक्ति क्यों नहीं मांगी। बाणासुर लौटकर शिव से मुक्ति मांगने गया और कहा कि मेरे नगर के चारो ओर अग्नि का जो कोटा है उसमें कोई भी शत्रु घुसने न पाए। शिव ने उसे एक ध्वजा दी और कहा कि इसे अपने महल पर बांध दो जिस दिन यह गिरेगी उसी दिन समझ लेना कि तुम्हारा शत्रु नगर में प्रवेश कर गया है।

बाणासुर के एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम उषा रखा गया। बड़ी होने पर एक दिन उषा सरोवर तट पर घूमने गई थी। सरोवर तट पर पार्वती की मूर्ति देखकर उसने कमलों की माला उन्हें पहनाई। पार्वती प्रसन्न होकर बोलीं मैं तुम्हारे मन की अभिलाषा समझती हूं जाओ तुम्हें बहुत सुन्दर पति मिलेगा। जिसे तुम स्वप्न में देखोगी वही तुम्हारा पति होगा। उषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा। फिर चित्रलेखा उन्हें उषा के महल में ले आई। अनिरुद्ध के उषा के साथ रमण करते ही ध्वजा गिर पड़ी। कुटनियों को शत्रु का पता लगाने के लिए भेजा गया। एक कुटनी ने उषा के महल की सारी बातें बाणासुर को बताई। अनिरुद्ध और बाणासुर में युद्ध हुआ। और वह नागपाश में बद्ध कर लिया गया। नारद उषा के पास पहुंचे उन्होंने उसे सान्त्वना दी और कृष्ण के नाना अवतारों की कथा सुनाई। उषा ने सारी बातें अपनी मां से कहीं और यह भी बताया कि पार्वती के वरदान से ही उसे यह पति प्राप्त हुआ है। उषा की मां ने बाणासुर को बहुत समझाया किन्तु वह अपने हठ से न डिगा। नारद से सारा हाल सुनकर कृष्ण ने ससैन्य आक्रमण किया, घमासान युद्ध के उपरान्त बाणासुर हारा और उषा-अनिरुद्ध का विवाह हो गया।

कवि ने कथा के आदि में 'इजै विजै' की घटना तथा अन्य छोटी छोटी आख्यायिकाओं को जोड़कर वर्णित विषय को अलौकिक एवं धार्मिक पृष्ठ भूमि देने का प्रयत्न किया साथ ही अपनी कृष्णभक्ति को प्रदर्शित करने का अवसर निकाला है।

प्रस्तुत रचना में वज्रयानियों, सिद्धों और सूफियों में प्रचलित गुरु महिमा का प्रभाव इस कवि पर विशेष पड़ा है। हो सकता है कि कृष्णभक्त होते हुए भी यह कवि किसी पन्थ विशेष का अनुयायी रहा हो। प्रस्तुत रचना में गुरु का नाम या उसकी वन्दना तो नहीं मिलती किन्तु इन्द्र और चित्रलेखा की आख्यायिका के सम्बन्ध में गुरु माहात्म्य पर कवि ने बड़ा जोर दिया है। बृहस्पति का

आदर न करने के कारण ही बलि से इन्द्र को पीड़ित होना पड़ा था कवि कहता है।

गुरु विनु सिधि ज्ञान नहि होई। गुरु विनु पार न लागै कोई॥

इसी प्रकार अपनी भूल का अनुभव करने के उपरान्त जब इंद्र अपने गुरु से मिलने गए और उन्होंने मिलने से इनकार कर दिया तो कवि का वचन है कि—

गुरु विनु ग्यान न उपजै देवा। घर आए चूके गुरु सेवा।
गुरु करु मात पिता बड भ्राता। गुरु है सकल सकल सिधि कै दाता॥
गुरु ते दाता और न कोई। गुरु प्रताप हरि मिलिहै सोई॥

ऐसे ही चित्रलेखा का परिचय देता हुआ कवि कहता है कि चित्रगुप्त की कन्या थी। इंद्र के अखाड़े में जाया करती थी किन्तु किसी गुरु से दीक्षित न होने के कारण उसे आदर और सम्मान प्राप्त नहीं होता था।

चित्र गुपित्र की कन्या आही। नित उठि इन्द्र अखारे जाई॥
देखति इन्द्र अखारे सोई। गुरु विनु आदरु करै न कोई॥

नारद ने फिर उसे अपनी शिष्या बना लिया।

नारद इन्द्र अखारे आए। चित्र देखि अधिक सुख पाए॥
मैं नित करौ तुम्हारी सेवा। चरन सरन मैं तुम्हारे देवा॥
कहिए जाप मंत्र को मेवा। तब नारद गुरु सिद्धि बनाई॥

सूफियों का प्रभाव हमें एक स्थल पर और परिलक्षित होता है। जिस समय चित्रलेखा द्वारिका पहुँची और अनिरुद्ध का महल ढूँढ रही थी उस समय परीक्षित ने सुखदेव से पूछा महाराज श्री कृष्ण के सोलह सहस्र रानियां और आठ पटरानियां थीं यह बताइए कि भगवान ने अपना महल किस प्रकार बनाया था। इस पर सुखदेव जी उत्तर देते हैं—

अति सोभा सोहति रजधानी। ये कई चौक रहैं सब रानी॥
रानी प्रतिमति कीयौ विचारा। पंद्रिह हाथ महल छः द्वारा॥
पाँच खम्भ इक महल प्रभावा। इहि विधि सर्व रचे भगवाना॥
नील पीत मनि द्वार सम्हारे। मनहु के चमकत तारे॥
बोलत पंछी अति अति ज्ञानी। कमल फूल फुले बहु भाँति॥
बोले मोर हंस सुखदाई। कोकिल की हौक मन छवि छाई॥
मधि चौक प्रभु महल बनाए। इक इक खंभन रतन लगाए॥
रवि उगत जे रचे द्वारा। तिनिकी सोभा अगम अपारा॥

'पाँच खम्भों का महल' पंद्रह हाथ का महल छः द्वार एक ही 'चौक' में रानियों का निवास, मधि चौक में प्रभु का महल और प्रत्येक खंभ में रत्नों की ज्योति आदि का प्रयोग स्पष्ट रहस्यवादियों की भाँति वर्णित चित्रसारी अथवा 'गढ़' या महल के वर्णन से साम्य खाता दिखाई पड़ता है।

पाँच खंभ पञ्चप्राण के परिचायक हैं, रानियां सिद्धियों की परिचायिका एवं रत्नादि ऋद्धियों के प्रतीक तथा ज्ञानी पक्षियों का स्वर खिले हुए कमलों के साथ अष्टकमल-दल और अनहत नाद की ओर इंगित करती हुई जान पड़ती हैं। इस सम्पूर्ण वर्णन में रहस्यवादी परम्परा की स्पष्ट छाया है। किन्तु ऐसे स्थल आधिकारिक कथा से सम्बद्ध नहीं हैं।

सम्भवतः इन वर्णनों को लाकर कवि ने अपने काव्य में अलौकिकता को पुष्ट करने का प्रयत्न किया है या परम्परागत परिपाटी का अनुसरण कर निर्गुण और सगुण ब्रह्म के ऐक्य की ओर इंगित करने का प्रयत्न किया है। कवि की यह प्रवृत्ति आगे चलकर प्रस्फुटित नहीं हुई है और न इसकी अन्य रचनाएँ हीं सामने हैं जिनके आधार पर इसके धार्मिक विश्वास पर कुछ कहा जा सके।

काव्य-सौंदर्य

नखशिख वर्णन

नखशिख वर्णन के स्थान पर कवि ने वस्त्रों आदि से सुसज्जित उषा का वर्णन किया है ऐसे वर्णन परम्परागत हैं।

लाल चुनरिया अधिक विराज्यै। ललित कंचुकी कुच पर सोहै॥
चलत गयंद चालि मन मोहै। करनफूल करनौटी सोहै॥
सीस फूल सिर दमकत भारी। बैनी सरिस सुगंधित डारी॥

इस रचना से संयोग और वियोग पक्ष का चित्रण नहीं मिलता सम्भवतः मर्यादा और आदर्श को ध्यान में रखते हुए कवि ने परम्परागत उत्तान शृंगार को अपनी रचना में प्रश्रय नहीं दिया है। वियोगावस्था का वर्णन कवि अनिरुद्ध के न आने तक कर सकता था; किन्तु इधर भी उसकी अभिरुचि नहीं लक्षित होती।

किन्तु कवि द्वारा युद्ध-वर्णन बड़ा सजीव हुआ है ऐसे स्थलों की भाषा भाव के अनुकूल ओज पूर्ण है। युद्ध भूमि में रुण्डमुंडों की भीड़ और आकाश में उड़ते हुए गिद्धों का चित्र देखिए।

खंड मुंड धरती पर ही। सिर बिनु धर आवहि धर मांही॥
गगन भई गीधनि की छांही। बही नदी रुधिर की धारा॥
हाथी हनै घनै रथ टूटै। टूटै मुंड यो मस्तक फूटै॥

युद्ध भूमि में आए हुए भूत बैताल योगिन आदि का वर्णन करता हुआ कवि वीभत्स रस की अच्छी सृष्टि कर सका है। जैसे—

फिरै स्वान भूत बैताला,
जोगिनि गुहै मुंड की माला।
चरख चील बहुदिसि तै धाए,
हरखि गीधनी अंग लगाए।
रुधिर भछि सब करै अहारा,
पैरत भैरो फिरत अपारा।

अस्तु यह रचना एक वर्णनात्मक काव्य है जिसमें कवि ने श्रीमद्भागवत की कई छोटी छोटी कथाओं को एक में गुम्फित कर दिया है। सम्भवतः श्री कृष्ण की लीलाओं का गुणगान करना ही कवि का उद्देश्य था। किन्तु उषा-अनिरुद्ध की कथा में काव्यतत्व अन्य कथाओं से अधिक मिलता है युद्ध भूमि का वर्णन यथेष्ट सुन्दर और यथार्थ बन पड़ा है।

भाषा

इसकी भाषा अन्य उषा-अनिरुद्ध काव्यों की तरह अवधी है।

उषा-चरित

—मुरलीदास कृत
—लिपिकाल–स० १८८३
—रचनाकाल...

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत प्रति की लिपि बड़ी भ्रष्ट और भाषा बड़ी अशुद्ध है इसके अतिरिक्त पानी से भींग जाने के कारण स्याही इतनी फैल गई है कि पढ़ी नहीं जाती।

यह एक छोटा सा वर्णनात्मक काव्य है जिसकी कथा भागवत् के आधार पर ही चलती है। केवल कवि ने एक स्थान पर परिवर्तन कर दिया वह यह कि यौवनागमन पर उषा काम से पीड़ित रहा करती थी। एक दिन वह उमा के मन्दिर में पूजा करने गई। उमा ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। उषा ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार आपको सुन्दर पति मिला है उसी प्रकार हमें भी प्राप्त हो। उमा ने एवमस्तु कहा और अन्तर्धान हो गई। इसके उपरान्त उषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा और व्याकुल हो गई। चित्रलेखा की सहायता से अनिरुद्ध उसके मन्दिर में आया। अन्त में बाणासुर तथा कृष्ण के युद्ध के बाद दोनों का विवाह हुआ।

कवि का उद्देश्य इस रचना में भागवत की कथा को केवल भाषा में कविता बद्ध करना जान पड़ता है इसलिए इसमें इतिवृत्तात्मक वर्णनों की ही प्रधानता है। संयोग, वियोग, नख-शिख आदि का वर्णन नहीं मिलता।

इसकी भाषा अवधी है। उदाहरणार्थ कुछ अंश निम्नांकित हैं—

सतगुरु को नाउँ। सबद बिसरि मति जाइ।
... ...। भूले अक्षर देहु बताई।
... ...

सपने को सुख सत्य न होय। प्रातकाल जागत दुख होय।

उषा-हरण

—जीवन लाल नागर कृत
—रचनाकाल—सं० १८८६
—लिपिकाल...

कवि-परिचय

मिश्रबन्धु विनोद और रामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' ने अपने इतिहास में जीवन-लाल नागर के उषा-हरण, दुर्गाचरित्र रामायण, गंगाशतक, अवतारमाला, संगीत भाष्य आदि ग्रन्थों के नाम दिए हैं। किन्तु दोनों ही इतिहास कारों ने उनके जीवन के विषय में कोई भी प्रकाश नहीं डाला है। अस्तु कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात ही कहा जा सकता है[1]।

कथावस्तु

बाणासुर ने शिव की तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उमा के मना करने पर भी उसे अजेयता का वरदान दिया एवं सहस्रबाहु प्रदान कर दिए। थोड़े ही दिनों में वह शक्ति से धमड़ा उठा और अपनी खुजलाती हुई बाहुओं की खुजली मिटाने के लिए उसने कैलाश पर्वत उठा लिया। सारे प्राणी और पशु पक्षी एवं पार्वती जी भी इससे घबड़ा उठीं वह समझने लगीं की कैलाश सागर में डूबा जा रहा है। इसके अनन्तर वह शिव के पास पहुँचा और कहने लगा कि संसार में कोई योद्धा ऐसा न मिला जिससे मल्ल युद्ध करके वह अपनी बाहुओं की खुजली को मिटा सकता। इसलिए वह बड़ा परेशान रहता है। शिव ने उसे एक पताका दी और कहा कि जिस दिन यह पताका गिरेगी उस दिन समझो तुम्हारा शत्रु आ गया जो तुम्हारी अन्य बाहुएँ काटकर केवल चार छोड़ेगा।

बाणासुर की उदण्डता से सारे देवता तङ्ग आ गए थे। अतएव उन्होंने मंत्रणा के बाद यह निश्चित किया कि शिव की पुत्री बाणासुर की दत्तक पुत्री

१—देखिये विनोद पृ० १३५, और हिन्दी साहित्य का इतिहास
—रामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' पृ० ३१८।

बनें और कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से उसका विवाह हो जिसके फलस्वरूप बाणासुर का गर्व खर्व हो और उसकी भुजाएँ कट जायँ। एक दिन शिव मधुवन में समाधि के लिए जाने लगे। शिव के वहाँ जाने से पार्वती रोकने लगीं। उन्होंने कहा कि आपके चले जाने पर हमारा समय भारस्वरूप हो जाएगा मन बहलाने को तो हमारे पास सन्तान भी नहीं है। इस पर शिव ने उत्तर दिया कि तुम जगदम्बा हो तुम्हें सन्तान की क्या आवश्यकता। अगर तुम यह चाहती हो तो जाओ तुम केवल इच्छा मात्र से सन्तान उत्पन्न कर सकती हो और यह वरदान देकर शिव मधुबन में समाधिस्थ हो गए। कुछ समय उपरान्त एक दिन पार्वती जी स्नान करने जा रही थीं कोई आने न पाए इस विचार से उन्होंने अपने दाहिने अङ्ग के मैल से एक सुन्दर पुत्र की मूर्ति बनाकर उसमें प्राण प्रतिष्ठा की और उसका गणपति नामकरण करने के उपरान्त द्वार रक्षा के लिए बैठा दिया, किन्तु अकेला बालक घबड़ा न जाए इस विचार से थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने बाएँ अङ्ग के मैल से एक सुन्दर बालिका की मूर्ति गढ़कर प्राण प्रतिष्ठा कर दी। दोनों भाई बहन पौरी में खेलने लगे और उमा स्नानागार में चली गईं।

इधर नारद मुनि टहलते-टहलते उधर से निकले और पार्वती की दो सन्तानों को देखकर आश्चर्य चकित हो गए। वह सीधे शिव के पास पहुँचे और उन्हें उलहना देते हुए कहा कि यही तुम्हारी तपस्या है तुम यहाँ इतने दिनों से समाधिस्थ हो और वहाँ उमा ने दो सन्तानें जन्मी हैं। शिव इस समाचार को सुनकर सक्रोध मन्दिर की ओर चले। उनको गृह में प्रवेश करने से गणपति ने रोका। पिता पुत्र का युद्ध हुआ गणेश मारे गए और उषा डरकर 'लौन ग्रौन' में जा छिपी। अन्दर पहुँच कर शिव को वस्तुस्थिति का पता चला उन्होंने गणपति को हाथी का सिर लगा कर जीवित कर दिया किन्तु उमा ने उषा की भीरुता से क्रुद्ध होकर उसे एक महीने तक 'लौन ग्रौन' मे ही रहने का शाप दे दिया।

एक दिन एक डोमिन ने बाणासुर को प्रातःकाल देखते ही मुँह घुमा लिया। बाणासुर इस व्यवहार से क्रुद्ध एवं चकित हुआ। पूछने पर डोमिन ने बताया कि प्रातःकाल निःसन्तान का मुख देखने से पाप लगता है इसने उसके हृदय पर चोट की और वह फिर शिव के पास पहुँच कर पुत्र याचना करने लगा। शिव ने कहा कि मैं तुम्हारे कर्म की रेखा को तो नहीं बदल सकता किन्तु 'लौन ग्रौन' में उमा से शापित उसकी पुत्री है उसे तुम अपनी सतान की तरह ले जाकर पाल सकते हो। इस प्रकार उषा बाणासुर के घर पहुँची। उसके

पहुँचते ही नगरी में अपशकुन होने लगे। पूर्ण यौवना होने पर बाणासुर ने उषा के विवाह के लिए मंत्रियों में मंत्रणा प्रारम्भ की। उसी समय आकाशवाणी हुई कि उषा का पति तुम्हारे नाश का कारण बनेगा इसे सुनते ही बाणासुर ने विवाह का विचार छोड़ दिया और उषा को चित्ररेखा के साथ एक अति सुन्दर महल में कड़े पहरे में रख दिया।

बाणासुर के राग-रंग और महल के वासनामय वातावरण ने उषा को काम-पीड़ा से विचलित करना प्रारम्भ कर दिया। जब वह बाणासुर को रनिवास में सुन्दरियों के साथ केलि करते, सुरापान करते देखती तो वह बड़ी व्याकुल हो उठती थी। एक दिन उसने अपनी सखी चित्ररेखा से सारी बातें कहीं और यह भी बताया कि मेरा विवाह करने से तो मेरे पिता रहे, अब तुम मेरे लिए कोई वर ढूँढ दो।

चित्ररेखा ने उषा को पार्वती से मिलने और उनसे वर मांगने की मंत्रणा दी। एक दिन दोनों पार्वती के पास पहुँची। पार्वती ने पहले तो उषा को उसकी कामुकता के लिए झिड़का किन्तु अन्त में कहा जाओ तुम्हें ग्रीष्म पूर्णिमा की रात को स्वप्न में तुम्हारे पति के दर्शन होंगे, गान्धर्व विवाह के उपरान्त शास्त्रानुकूल विवाह होगा। प्रसन्न वदना उषा इस वरदान को पाकर घर लौटी। ग्रीष्म की पूर्णिमा को सजधज कर उषा उमा के वरदान के अनुसार अपने भावी पति की बाट जोहती और कल्पना करती हुई सो गई। उसी रात्रि को उसने अनिरुद्ध का स्वप्न देखा और प्रेमालाप करने लगी किन्तु रति-सुख की पूर्णता प्राप्त करने के पूर्व ही उसकी आँखें खुल गईं। विरह और मदनपीड़ा से व्याकुल हो वह प्रलाप करने लगी; पास सोई हुई चित्ररेखा की आँखें खुलीं उसने कुमारी को विक्षिप्तावस्था में पाया। सान्त्वना देने के उपरान्त सारा हाल जानकर उसने चित्रांकन प्रारम्भ किया। अनिरुद्ध के चित्र पर उषा खिल उठी। चित्ररेखा योगबल से पलंग सहित अनिरुद्ध को द्वारिका से उठा लाई। कुछ दिनों दोनों सुख से रहे। उषा के अंग पर पुरुष समागम के चिह्न देखकर द्वारपालों को चिन्ता हुई उन्होंने बाणासुर को बताया। अनिरुद्ध और बाणासुर का युद्ध हुआ। नागपाश में बद्ध अनिरुद्ध की दशा का हाल नारद ने द्वारिका में कृष्ण से जा बताया। ससैन्य कृष्ण ने चढ़ाई की, घोर युद्ध हुआ बाणासुर की सहायता को शिव भी पहुँचे किन्तु उन्होंने भी अन्त में हार मानी। बाणासुर का दम्भ भंग हुआ और उषा-अनिरुद्ध का विधि पूर्वक विवाह हो गया।

प्रस्तुत रचना में कवि ने पौराणिक गाथा की कथा को सर्वांग श्रृंगार

करके भी अपनी मौलिक उद्भावनाओं से उसे अधिक रोचक सरस और स्वाभाविक एवं शिक्षाप्रद बना दिया है।

उषा के जन्म और उसके बाणासुर की पुत्री होने की घटना कवि की स्वतंत्र भावना है। इसके द्वारा उषा को उसने देवांगना का रूप प्रदान किया है साथ ही दुष्टों के नाश के लिए दैवी शक्तियां किस प्रकार कार्य करती हैं इसका भी प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। पौराणिक गाथा में साधारण नारी और पुरुष के वासना जनित प्रेम की गन्ध को इस कवि ने अपनी कल्पना की सुरभित समीर से हृदय ग्राही एवं स-उद्देश्य बना दिया है। कविवर कालिदास के कुमारसम्भव की झलक उषा अनिरुद्ध में दिखाई पड़ती है। जिस प्रकार कुमारसम्भव का उत्तान शृंगार जगत्राण का प्रतीक है उसी प्रकार यह प्रेम भी।

इस घटना के द्वारा उषा का प्रेम कामुकता के क्षेत्र से हटकर सात्विकता की कोटि में पहुँच गया है। वह स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक भी है साथ ही दैवी प्रेरणा से उद्भूत भी। वासनामय वातावरण में सारी सुख सामग्री से घिरी हुई नव यौवना उषा अगर काम रस से पीडित रहती है तो इसमें उसका कोई दोष नहीं।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

उषा के रूप-सौन्दर्य वर्णन में कवि ने कवि समय सिद्ध उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का भी प्रयोग किया है। जैसे—उसकी आँखे कमल के समान हैं, अधर बिंबा के समान, जंघाएं कदली के समान हैं आदि।

इस कवि ने वयःसन्धि का वर्णन भी किया है। जिसमें यौवन के क्रमिक विकास और नायिका के शरीर पर प्रति दिन बढ़ते हुए लावण्य और आकर्षण का चित्रण बड़ा स्वाभाविक हुआ है। बालिका की चपलता ने गम्भीरता का स्थान धीरे धीरे ग्रहण कर लिया था। उसकी गति मयर होने लगी थी अधरों पर हँसी के स्थान पर स्मित हास्य दिखाई पड़ने लगा था। और उसकी कटि क्षीण होने लगी थी। उसकी केश-राशि मानो यौवन की पताकाएं होकर हवा में लहराने लगी थीं।

'दौरन तजिस भई गज गामिनि। हस्य छोंडि स्मित लिय मनु भामिनि।
कटि तट लूटि उरज गढ़ बांधे। भुव कृपान लोचन शर साधे।
यौवन चिकुर पताका लहरत। मनु मुख चंद फंद से फहरत'।

संयोग-शृंगार

कवि परिपाटी के अनुसार प्रेमाख्यानों में संयोग पक्ष के अन्तर्गत अनावृत्त सम्भोग शृंगार एक रूढ़ि सा हो गया था वही पति-पत्नी की केलि, वही हाव-भाव आदि का वर्णन इस काव्य में भी मिलता है। इस कवि ने विपरीत रति का वर्णन भी किया है। इसके वर्णन सीधे और आवरण हीन हैं।

संभोग करत विपरीत रति, तिय स्वै छाते धरि अमित प्रीति।
कटि लचकि उचकि कुच कठिन कोर, जब मचाके अंक भरियत किसोर।
झंकार होत पायल निसद्ध। कोकिल रव कूकत केलि नद्ध।

× × ×

कंचुकि दरकि रही चहुधां पर। लहे परिरंभन को श्रम सुंदर।
स्वेद बिंदु विकसत कुच ऊपर। मनो ओस कनक जुक्त कनक गिरी।।

वियोग शृंगार

प्रस्तुत रचना में वियोग शृंगार नहीं प्राप्त होता।

भाषा

प्रस्तुत रचना कथानक की तरह भाषा की दृष्टि से सुन्दर है। इसमें भाषा के ओज एवं प्रसाद गुण के साथ साथ स्वाभाविकता, सरलता, प्रतिध्वन्यात्मकता मिलती है। शब्द चित्र सुन्दर और आकर्षक बन पड़े हैं। अनावश्यक अलंकारों से भाषा को सजाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। वरन् वह स्वाभाविक और अनायास आए हुए से जान पड़ते हैं। जैसे—यौवनागम के चित्र में कवि ने उत्प्रेक्षाओं और अलंकारों का प्रयोग किया तो है पर वे बड़े स्वाभाविक से लगते हैं।

'दौरन तजिस भई गज गामिनि। हास्य छांडि स्मित लिय मनु भामिनि
कटि तट लूटि उरज गढ़ि बांधे। भुवन कृशान लोचन शर साधे।
यौवन चिकुर पताका सहरत। मनु मुख छंद फंद से फहरत।।'

इसी प्रकार सेना के चलने से उत्पन्न प्रभाव का चित्रण शब्द विन्यास के कारण बड़ा प्रभावोत्पादक बन गया है।

कसमसित कमठ धस मलित धूम। डिग डिगत अद्रि उठि गगन धूम।
फन सहस सेस सल सलत सेत। नृप वान चढ़ि दिग्विजय हेत।।

इसी उद्धरण में सैन्य सचालन एवं युद्ध-चित्र को अंकित करने के लिए जहां कठोर शब्दों एवं अनुप्रास के संयोजन से चित्रात्मकता आ गई है वहीं घूँघरु और नूपुर की झनकार उषा के नख शिख वर्णन में सुनाई पड़ती है।

धंम-धंम घूंघर की धमकार। चंम-चंम चारु चंमकत चीर।
तंम-तंम त्यौरि चलै चखतीय। छंम-छंम वज्जुत विच्छुव साज।
कंन-कंन कंकन चूरि वजंत। खन-खन हार हमेल हलंत॥

अनुस्वारान्त भाषा का प्रयोग भी कवि ने यदा-कदा किया है। जैसे—

तमाल तुंग ओ अनंग रंग मुंज मंजुरी।
सुवेस कुंच महंतं कदंब अंब यंडुरं।
असोक कुंद चंपकं चमेकि केलि संदरं।

प्रकृति चित्रण

प्रस्तुत रचना में प्रकृति के आलम्बन रूप का भी दो स्थानों पर चित्रण प्राप्त होता है। वर्षा ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वर्षा होने के कारण नदी नाले उमड़ रहे हैं। पुरवाई हवा का शीतल सुगन्धित झोंका चल रहा है। और पृथ्वी सोंधी सोंधी उसासें ले रही है।

वरखत धरनि धार धाराधर,
कवहुँक मन्द कवहुँ वहुतजल धर।
गंधित सीत चलत पुरवाई,
छित छकि रति लै स्वास सुहाई।
खल खलात चहु दिस नद नारे,
निर्झर भरे ढरत जल धारे।

ऐसे ही ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि सूर्य के तपन से पशु-पक्षी व्याकुल हो रहे हैं। शीतलता प्राप्त करने के लिए वे नदियों में जा घुसे हैं। तरुवरों से पत्ते सूख कर गिर रहे हैं और प्यास से व्याकुल गीदड़ आपस में लड़ रहे हैं। पक्षियों और बन्दरों ने छाया के लिए पेड़ों का आश्रय लिया है—

रवि तन जपत जन्तु दुख पावत,
दौरि-दौरि दरियन दुरि जावत।
तरवर पत्र परत भुव झरि-झरि
गीदड़ मरत वखातुर लरि-लरि।
पंछी तरवर छाँह निहारत,
कपि कदंब अंबन हुँकारत॥

इस प्रकार प्रस्तुत रचना भाषा, भाव तथा अलङ्कार की दृष्टि से सुन्दर है।

उषा-चरित्र (बारह खड़ी)

—जनकुंज कवि कृत

—रचना काल—१८३९

—लिपिकाल—...

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत प्रति में कथावस्तु आरम्भ में भागवत के आधार पर ही है किन्तु बीच-बीच में दो एक स्थान पर कवि ने अपनी इच्छा के अनुकूल परिवर्तन कर दिया है जैसे उषा ने जिस दिन अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा उसी दिन अनिरुद्ध ने भी उषा को देखा था। दोनों एक दूसरे के लिए व्याकुल रहने लगे थे किन्तु अभाग्यवश एक दूसरे का परिचय नहीं जानते थे। चित्रलेखा को द्वारिका में जाकर मालूम हुआ कि अनिरुद्ध की दशा बड़ी शोचनीय है, किसी वैद्य आदि की औषधि काम नहीं करती, तब वह वैद्य के रूप में श्रीकृष्ण के पास पहुँची और कृष्ण ने इस नए वैद्य को अनिरुद्ध के पास भिजवा दिया। अनिरुद्ध की नाड़ी देखकर उसने उषा से मिलाने को चुपके से कान में कहा—

'चतुर वैद्य नारी नहीं, कही श्रवन समझाइ।
अरध रैति उषा कुमरि तुमकूं देउ मिलाइ॥'

इसे सुनकर प्रसन्न हो अनिरुद्ध ने करवट ली। और सब लोग इस वैद्य की प्रशंसा करने लगे। अनिरुद्ध को लेकर चित्रलेखा उषा के पास पहुँची। दोनों आनन्द से रहने लगे। चेरियों से उषा के शरीर पर सहवास चिन्हों को सुनकर उषा की मा ने उसे समझाया। दोनों में वाद-विवाद हुआ। उषा न मानी। मा ने बाणासुर से सारा हाल कहा। अन्त में कृष्ण और बाणासुर का युद्ध हुआ। बाणासुर हारा। अनिरुद्ध का उषा से विवाह हुआ।

उक्त दो परिवर्तनों से कवि ने उषा और अनिरुद्ध के प्रेम में स्वाभाविकता उत्पन्न कर दी है कुछ नाटकीय गुण का भी समावेश कर दिया है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

उषा के सौन्दर्य-वर्णन और शृंगार में कवि ने बड़ी शिष्ट और परिमार्जित अभिरुचि का परिचय दिया है। कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं होने पाया है। उसकी उपमाएँ परम्परागत होते हुए भी सीधी-सादी और हृदयग्राही हैं। नारी के स्थूल अवयवों के चित्रण के सौन्दर्य के स्थान पर कवि ने नायिका की वेश भूषा का वर्णन ही किया है। जैसे—

अति सुन्दर कछु कहन न आवै, थकित भए जब दरस दिखावै।
कमल बदन पर अलग सवारे, लोचन मधुप करत गुंजारे।
अंग अंग भूखन बसन विराजै, रति रंभा छवि अति उति छाजै।

कहीं कहीं तो इस कवि की उपमाएं तुलसी के समान सरस जान पड़ती हैं। उषा के सौन्दर्य वर्णन में सीता के प्रति तुलसी के 'रूप सुधा पयोनिधि होई' वाली उक्ति की प्रतिछाया निम्नांकित अंश में दिखाई पडती है। जैसे—

मानौ मथि काढी सिंधते विधुबर रूप अपार।
सुखमा की सलिता सकल रस अमृत धार॥

ऐसे ही आभूषणों और शृंगार के उपादानों के वर्णन में भी कहीं अरुचि का अंश भी नहीं दिखाई पड़ता।

थर थराति वेसर की मोती। अधरन पर तारागन जोती।
चंद बदन पर बेंदी राजै। सीस फूल वेना छवि छाजै।
दृग अंजन खंजन चित सोहैं। बोलत वचन कोकिला कोहैं।

उपर्युक्त अंश में 'थरथरात' शब्द ने एक अनूठा सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया है। टिमटिमाते हुए तारों और अधरों पर प्रकम्पित मोतियों का गुण साम्य बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

संयोग-शृङ्गार

प्रेम काव्य होते हुए भी इस कवि ने कवियो में प्रचलित रति, केलि, सुरतान्त, आदि का वर्णन नहीं किया है जो इस बात का द्योतक है कि यह कवि शृंगारिकता के विलास पक्ष की ओर विशेष उन्मुख नहीं था।

वियोग पक्ष

स्वप्न के उपरान्त उषा के वियोग वर्णन के चित्र सुन्दर और हृदय ग्राही बन पड़े हैं—उषा अपने प्रियतम का स्मरण करती हुई कहती है–कि प्रियतम तुम कहां चले गए ऐसा तुमने किया ही क्यों? 'ए पीतम उठि सेज तें कित

गए चतुर सुजान। रस बस करि मनु लै गए मारि बिरह के बान। वह खाना-पीना तज कर रोती बिलखती हुई हर समय योगिनी की तरह अपने प्रियतम का ध्यान करती रहती थी—

'कर मीजै और सिर धुनै गहरे लेत उसास।
नवल कुंवर के दरस बिनु नहीं जीवन की आस।
अथवा
नैनु नींद न आवै, भोजन भूषन भमत न भावै।
उलटि-पलटि कर लेत उसासा। नाहि कुंमरि जीवन की आशा।
एक सखी घिसि चंदन लावै। एक कुमरि के अङ्ग लगाव।
उपा महलन में कियो वियोगी। जैसे ध्यान धरत है जोगी।

भाषा

प्रस्तुत रचना की भाषा अवधी है। बारह खड़ी में होने के कारण वृत्त्यनु-प्रयास की छटा देखने को मिलती है जो कवि के भाषा पर असाधारण अधिकार का द्योतक है। भाषा भाव के साथ चपल और गम्भीर होती चलती है। शिव के रूप का वर्णन करता हुआ कवि कुछ ही शब्दों में एक चित्र सा अंकित कर देता है—

जटा मुकुट तन भस्म रमाए। कटि लंगोट भंग विष खाए।
कर त्रिसूल झपा पाँच विराजै। भूत प्रेत रन में मत गाजै॥

युद्ध वर्णन में भी शब्दों का चयन विषयानुकूल परुष और भावोत्पादक हुआ है। जैसे—

'हा हे हर हंकार कृस्न पर धाये। पर लै मेघ बान बरसाए।
धरि सर चाप कृस्न हंकारे। शिव के बान वृथा करि मारे॥'

युद्ध भूमि में उपस्थित वीभत्स दृश्य का चित्रण भी कवि ने उतनी ही चित्रात्मकता के साथ किया है जितने कि उसके अन्य वर्णन प्राप्त होते हैं। जैसे—

'भूत प्रेत जोगिनि इतरावै। भरि-भरि रुधिर ईस गुन गावै।
भूम मिलै करताल बजावै। जोगिन भरि-भरि खप्पर धावै।
जांबुक गीध गीधनी गन लावै। भरि-भरि उदर परम सुख पावै॥

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि भाषा कि सरलता, शब्दों की मधुरता, प्रतिध्वन्यात्मकता, एवं चित्रात्मकता की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है।

रमणसाह शहजादा व छबीली भठियारी की कथा

रचयिता...

रचनाकाल...

लिपिकाल सं० १९०५

कवि परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है। कथा का प्रारम्भ श्री गणेशायनमः से हुआ है इसलिए इसकी रचना किसी हिन्दू कवि के द्वारा की गई जान पड़ती है।

कथावस्तु

दिल्ली में सिकन्दर शाह नाम के बादशाह के कोई सन्तान न थी इसलिए वह बड़ा दुखी रहता था। एक दिन इसी दुख से व्याकुल होकर वह राजपाट छोड़कर बाहर निकल पड़ा और मन्त्रियों के लाख मनाने पर भी नहीं लौटा। दिल्ली से दूर एक सघन वन में एक पेड़ के नीचे उसने आश्रय लिया। उसकी इस मानसिक व्याकुलता को देखकर ईश्वर फकीर के वेश में उसके सामने अवतरित हुए और उसके दुःख का कारण पूछने लगे। थोड़ी देर के वादविवाद के बाद फकीर ने राजा को पुत्र होने का आशीर्वाद दिया और सिकन्दर प्रसन्नता पूर्वक राजधानी लौट आया। इसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रमणशाह रखा गया। रमणशाह ने हर प्रकार की विद्या पाई और एक दिन बड़े होने पर उसने पिता से आखेट खेलने के लिए आज्ञा मांगी। आखेट से लौटते समय शाहजादे ने पनघट पर एक स्त्री को पानी भरते देखा और मुग्ध हो गया। नौकरों से उसे पता चला कि अमुक स्त्री एक भठियारिन है। इस छबीली भठियारी के पास शाहजादा अक्सर आने लगा जब मन्त्रियों को छबीली भठियारी से कुमार के सम्बन्ध का पता लगा तब उन्होंने राजा से कुमार के विवाह कर देने की बात कही। भठियारी से कुमार को विमुख करने के लिए राजा ने चित्रकारों को देश विदेश भेजकर सुन्दर से सुन्दर स्त्रियों के चित्र मँगवाये और वे राजकुमार के मार्ग पर पड़ने वाली अगल बगल की

दीवार पर इसलिए लगवाए गए कि कुमार उनमें से किसी एक को चुन ले। मानसिंह जागीरदार की एक पुत्री विचित्रकुँवर का चित्र कुमार को अच्छा लगा। राजा ने मानसिंह के पास विवाह का सन्देश भेजा पिता ने पुत्री से परामर्श किया और पुत्री ने राजकुमार से विवाह हिन्दू रीति के अनुसार करना स्वीकार कर लिया। बारात में छबीली भठियारी भी एक ऊँट पर सवार होकर गई। छबीली किसी भी प्रकार कुमार को छोड़ना न चाहती थी इसलिए वह कुमार को विचित्र कुँवर से अलग करने का षड़यन्त्र सोचा करती थी। भांवरे पड़ जाने के उपरान्त भठियारिन मालिन के वेश में कुमारी के यहाँ गई और उसके सौन्दर्य को देखकर चकित हो गई। वहाँ से लौटकर उसने कुमार से बताया कि उसकी भावी पत्नी की शक्ल सर्पिनी की है और उससे आँखें मिलाकर देखने वाला मनुष्य मर जाएगा। इसे सुनकर कुमार बड़ा चिन्तित हुआ और उसने भठियारी से अपनी जीवनरक्षा का तरीका पूँछा। भठियारी ने उससे कहा कि अगर वह आँखों में पट्टी बांध कर ससुराल जाय और पट्टी बाँधे ही कुमारी के पास जाया करे तो उसकी जान बच सकती है। कुमार ने ऐसा ही किया। विवाह के बहुत दिन बीत जाने के उपरान्त भी जब राजकुमार के आँखों की पट्टी न खुली तब कुमारी विचित्र कुँवर बड़ी चिन्तित रहने लगी। *उसने अपनी सास से सारी बातें पूछीं और उसे छबीली भठियारी तथा कुमार* का सम्बन्ध ज्ञात हुआ। कुमार को भठियारी के चंगुल से छुड़ाने के लिए विचित्र कुँवर ने गूजरी का भेष धारण किया और दही बेचने के बहाने वहाँ पहुँची जहाँ कुमार भठियारी के पास बैठा था। गूजरी के सौन्दर्य को देखकर कुमार ने उसे अपने पास बुलाया और उससे बातचीत करने लगा। भठियारी कुमार को एक गूजरी के प्रति आकर्षित होते देखकर बड़ी बिगड़ी गूजरी और भठियारी में वादविवाद हुआ। इस वादविवाद में कुमारी ने अन्योक्ति के द्वारा अपना सारा हाल कुमार को सुनाया लेकिन वह उसे समझ न सका। एक लाख टके के स्थान पर गूजरी कुमार के गले की माला लेकर घर लौट आई। लौटते समय कुमार के पूछने पर उसने बताया कि वह पायत के सराय में रहती है। दूसरे दिन कुमार गूजरी को ढूढने पायत की सराय गया लेकिन न उसे पायत की सराय ही मिली और न गूजरी ही। तीसरे दिन जब कुमार भठियारी के पास बैठा था विचित्रकुँवर ने मरदाने वेश में सराय में प्रवेश किया और नौकर से कुमार को बुलवा भेजा नौकर के आनाकानी करने पर उसने उसे पीटा। मार खाकर नौकर रोता हुआ कुमार के पास गया। अपने विश्वास पात्र नौकर को मारने वाले को दण्ड देने के लिए शहजादा बाहर निकला लेकिन अपने सामने

एक सुन्दर राजकुमार को देखकर ठिठक गया। दोनों ने एक दूसरे का परिचय प्राप्त किया और वे जंगल में शिकार खेलने चल दिए। रमगशाह ने एक हिरण मारा जो घायल होकर करील के कुंज में गिर पड़ा। उसे उठाने के लिए विचित्रशाह (विचित्र कुँवर) कुज मे घुसा वहीं उसके पैर में काँटा गड जाने के कारण रक्त निकलने लगा। विचित्रशाह के पैर से खून निकलते देख रमगशाह बड़ा दुखी हुआ और अपना साफा फाड़कर उसके पैरों पर पट्टी बाँधी। जब दोनों साथ-साथ लौट रहे थे तब विचित्रशाह ने बताया कि वह पायत की सराय में ठहरा है। पायत की सराय का नाम सुनकर रमगशाह ने गूजरी के विषय में पूछा। विचित्रशाह ने बताया कि गूजरी को वह जानता है और अगर रमगशाह कल वहाँ आये तो वह उसे गुजरी से मिला देगा। थोड़ी दूर जाने के उपरान्त रमगशाह से विचित्रकुँवर ने घोड़ा दौड़ाने को कहा और रमगशाह के आगे जाते ही छद्म वेशी विचित्रकुँवर अपने महल में घोड़ा दौड़ा कर पहुँच गई।

उसी रात को विचित्रकुँवर ने अपने पैर मे दर्द होने की बात रमगशाह से कही। रमगशाह इस पर बिगड़ा धीरे-धीरे विचित्रकुँवर ने रमगशाह को सारी बात बताई और कुमार का चिन्ह हार उसके हाथ में दे दिया जो उसने गूजरी के रूप में प्राप्त किया था। कुमार ने डरते-डरते आँख खोली और विचित्र कुँवर को देखकर मुग्ध हो गया। दूसरे दिन कुँवर रमगशाह ने छबीली को विचित्र कुवर की इच्छानुसार आधा जमीन में गड़वाकर शिकारी कुत्ते छुड़वा दिए जिससे वह मर गई।

प्रस्तुत रचना एक गद्य पद्य मय चम्पू काव्य है। इसका महत्व दो कारणों से है। पहली बात तो यह है कि इसका नायक मुसलमान है और दो नायिकाओं में एक मुसलमान दूसरी हिन्दू। कुमारी विचित्रकुँवर का विवाह रमगशाह के साथ हिन्दू रीति से कराकर कवि ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो सांस्कृतिक साम्य उपस्थित हो चला था उसका सकेत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के समय में जो हिन्दू स्त्रियों के मुसलमानों से विवाह होने लगे थे या डोला भेजने की प्रथा चल गई थी उसी के आधार पर इस काव्य की रचना हुई। भाषा की दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूर्ण है। इसमें हिन्दी की प्रारम्भिक खड़ी बोली का रूप प्राप्त होता है।

प्रस्तुत रचना वर्णनात्मक और सवादात्मक शैली में लिखी गई है। इस रचना की कहानी कल्पित है किन्तु कहानी का ढंग बड़ा सुन्दर है और आरम्भ से अन्त तक कौतूहल तत्त्व बना रहा है। गूजरी और कुमारी के

वादाविवाद में दो झगड़ालू स्त्रियों की प्रकृति के साथ साथ स्त्री सुलभ ईर्ष्या और सवतिया डाह का परिचय भी इस काव्य से प्राप्त होता है इस प्रकार प्रस्तुत रचना भाषा और कहानी के नूतन प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि हिन्दुओं ने मुसलमानों की कथाओं को अथवा मुसल्मान नायकों को लेकर अपनी रचनाएँ भी की हैं। प्रस्तुत रचना की भाषा के विषय में पिछले अध्याय में कहा जा चुका है। इसलिए उसी बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

बात सायणी चारणी री

रचयिता......

रचना काल...

लिपिकाल...

कवि-परिचय

कवि का जीवनवृत्त अज्ञात है।

प्रस्तुत वार्ता राजस्थानी के प्राचीन काव्यों में से एक है जो लोकगीतों और लोक गाथाओं का आधार बनती चली आयी है। इसकी रचना कब हुई? इसका रचयिता कौन है? कुछ पता नहीं चलता। राजस्थानी भारती भाग १ अंक २...३ जुलाई अक्टूबर सन् १९४६ ई० में प्राचीन राजस्थानी साहित्य शीर्षक की खोज के अन्तर्गत यह प्रकाशित हुई है। संपादक ने टिप्पणी में लिखा है 'सायणी को शक्ति का अवतार माना गया है, कई एक अवतारोचित बातें कहानी में जान पड़ती हैं पीछे जोड़ दी गई हैं, कुछ और भी परिवर्तन हुआ, फलतः कहानी की कई बातें परस्पर मेल खाती हुई नहीं दीख पड़तीं।'

यह सामयिक परिवर्तन ही इस कहानी की प्राचीनता के द्योतक हैं।

कथावस्तु

वेदाचारण वेकरै गांव में रहता है जो कच्छ देश में है। वेदा के पास बड़ा धन है उसके एक पुत्री सायणी है जो महाशक्ति योगमाया का अवतार है। वह शिकार खेलती है, नाहर मारती है, मृग मारती है। बीजागंद साढ़ाइच चारण भाठड़ी गांव में रहता है। जब जङ्गल में मृग उसका अलाप सुनकर चले आते हैं तब मृगों के गले में सोने की माला डाल देता है। राग जब रुकता है तब मृग भाग जाते हैं। जब दूसरे दिन अलाप करता है तब मृग फिर आ जाते हैं तब वह सोने की माला गले में से निकाल लेता है। बीजागंद के पास चालीस पचास घोड़े थे उन्हें बेचने चला है। उसने छपगय के नाला पर डेरा डाला। सायणी खेलती-खेलती मध्याह्न को तालाब पर पहुँची डेरा

देखकर उसे डेरे वाले को जानने की उत्सुकता हुई। मालूम हुआ कि डेरा बीजाणंद भाछड़ी वाले का है। वह बीजाणंद से मिलना ही चाहती थी इसलिए उससे मिलने गई। बीजाणंद उसे अपने डेरे में खाने पीने के लिए ले गया। सायणी ने बीजाणंद से गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। कई गाने सुनने के उपरान्त उसने मल्लार सुनने की इच्छा प्रकट की। बीजाणंद ने मल्लार गाया पानी की वर्षा होने लगी। इस पर प्रसन्न होकर बीजाणंद से सायणी ने मनेच्छित वस्तु मांगने को कहा। बीजाणंद ने उससे विवाह की इच्छा प्रकट की। सायणी ने उसे मना किया द्रव्यादि मांगने को कहा किन्तु वह न माना। सायणी ने कहा अच्छी बात है पर अगर तुम भीख न मांगो वरन् एक ही सर्दार के यहां से सवा सवा करोड़ के सात गहने छः महीने में ले आओ तो मैं तुमसे विवाह करूँगी। बीजाणंद ने उसकी शर्त मान ली फिर महाजनों सरदारों आदि को बुलवाकर एक पीलू के पेड के सामने सौगन्ध खाई कि अगर मैं छः महीने में सायणी की बात न पूरी कर सका तो सायणी अपने बचन से मुक्त हो जायेगी।

बीजाणंद ईडर, चम्पारेन, कच्छ आदि सब जगह घूमा किन्तु उसकी मांग पूरी न हुई। गिरनार गढ़ के राजा मंडलीक ने बताया कि भोजराज का पुत्र मुदगल राज जल प्रदेशः (जल से घिरे स्थान) का राजा है। उसके पास अपार धन राशि है। उससे मांगो तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। काकडे द्वीप तक पहुँचने के दो मार्ग हैं। एक छः महीने का दूसरा डेढ़ महीने का। डेढ़ महीने वाला रास्ता दुस्तर है जहाज टूट जाते हैं मगर आदि लोगों को निगल जाते हैं। बीजाणंद ने डेढ़ महीने के ही रास्ते से जाना पसन्द किया और जहाज पर बैठ कर चल दिया। रास्ता सुगमता से बीता और वह सवा महीने में ही वहां जा पहुँचा।

वह भोजराज के पुत्र भूगल के दरबार में पहुँचा उसके प्रधान मन्त्री से मिला। मन्त्री ने आदर सत्कार किया किन्तु बताया कि राजा तो एक महीने में केवल एक दिन रनिवास से बाहर निकलता है और नया विवाह कर फिर लौट जाता है। कोई रंग महल में जा नहीं सकता। कल वह बाहर था अब तो महीने भर बाद ही मिल सकोगे। किन्तु बीजाणंद ने जिद् की। मन्त्री ने बहुत समझाया किन्तु वह न माना। सायणी के लिए वह मरने को भी तत्पर हो गया।

भूगल के महल में दस ड्योढ़ियाँ हैं। नौ ड्योढ़ियों पर तो पुरुष चोकीदार बैठते हैं। दसवीं ड्योढ़ी पर स्त्रियाँ बैठती हैं। नौ ड्योढ़ियों को पार कर बीजाणंद दसवीं पर नट के वेश में पहुँचा। भूगल ने उसे मारने के लिए कमान उठायी पर मारा नहीं। पूछा कौन है। उसने उत्तर दिया कि मैं इन्द्र का नट हूँ।

वहाँ बताया गया है कि भोजराज के पुत्र का अखाड़ा इन्द्रपुरी से भी अच्छा है उसे ही देखने आया हूँ।

भूगल ने बीजाणंद चारण को पहचान लिया। आदर के साथ बैठाया। चार-पाँच दिनों के बाद वह नौ करोड़ का गहना लेकर लौटा। किन्तु छः महीने पूरे हो गए। सायणी बीजाणद के गाँव को पहुँची लोगो को बुलाया और पीलू के पेड़ के सामने खड़े होकर कहा कि बीजाणंद नहीं लौटा। अवधि पूरी हो गई। अब मैं हिमालय पर जाकर गलूँगी। दूसरे दिन बीजाणंद पहुँचा उसे सारी बाते ज्ञात हुईं। पीलू के पेड़ के नीचे सारे गहने पहना कर वह भी हिमालय की ओर चल दिया।

सायणी मूछाले—बड़ी मूछों वाले—मालदेव के यहाँ ठहरी। अलाउद्दीन दिल्ली मे राज्य कर रहा था। मालदेव उसी के यहाँ नौकरी करता था। राजा के यहाँ मुजरा था। किन्तु सर्दार वहाँ नहीं गया। दूसरे दिन बादशाह ने न आने का कारण पूछा। सर्दार ने उत्तर दिया कि हमारे यहां देव आए थे इसीलिए नहीं आया। बादशाह ने पूछा तुम्हारा देव जिलाता है कि मारता है। उत्तर मिला कि वह जिलाता है। बादशाह ने सायणी को बुलाया कहा कि मरे को जिलाएगी। सायणी ने उत्तर दिया हाँ बादशाह ने अपने घोड़े को साप से कटवा कर मार डाला। सायणी ने जिला दिया। इस पर बादशाह ने उसे डायन बताया और दिल्ली के भूगर्भ में पैठने को कहा। सायणी ने सर्दार के साथ भूगर्भ में प्रवेश किया। दोनों पाताल में पहुँचे। सापों ने बैठने को दिया। सापों ने अपने रस से भर कर प्याला दिया। सायणी ने सर्दार को दिया। उसने डर से ओठों से लगाया आख बचाकर बाकी गिरा दिया। ओठो से लगने के कारण सर्दार के बड़ी बड़ी मूछें निकल आईं जो पहले नहीं थी।

इधर अलाउद्दीन ने भूगर्भ का द्वार चुनवा दिया। सायणी ने हाथ से उस भित्त को छुवा और वह दूर जा गिरी। फिर क्रुद्ध होकर अलाउद्दीन को शाप दिया कि पठानों का राज्य नष्ट हो जाएगा।

तदुपरान्त वह हिमालय पर जाकर गल गयी। बीजाणंद भी वहाँ जाकर गल गया।

प्रस्तुत रचना गद्य में होने के कारण बड़ी महत्वपूर्ण है। सस्कृत भाषा मे प्रेमाख्यान गद्य और पद्य दोनों में लिखे जाते थे। बाण भट्ट की कादम्बरी गद्य में है। प्रस्तुत रचना गद्य में प्राप्त होती है। वह रचना इस बात का प्रमाण है कि गद्य और पद्यबद्ध प्रेमाख्यानों की जो परम्परा संस्कृत साहित्य में थी वही

हिन्दी में परम्परानुकूल अपनाई गई। प्राकृत और अपभ्रंश में गद्य के प्रेमाख्यान सम्भवत: लिखे गये होंगे किन्तु अभी वे अप्राप्य हैं।

अस्तु इस रचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रेमाख्यानों की यह परम्परा मुसलमानों अथवा किसी विदेशी साहित्य के प्रभाव के कारण हिन्दी में नहीं है, वरन् यह परम्परा भारतीय है, जिसे हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमानों ने अपनाया था।

राजस्थानी गद्य के कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं—

'आगे पाताल गया। आगे साप वैसण दिया। अरि प्याली भरि भरि एक सोनरी दिओ। तिये सापांस्यां, आंल्यां, सापास्यां, जोभां, सांपरी लिपली अर रस कढि कढि अर प्याले भरी जेछे।...

कह्यो जी, माहरे लो बांसे घड़ी जावे छै सू वरस बराबर जावे छै। बैठो कुल रहे। कह्यो नूं कांसूं करीस। कह्यो जी गोनूं, राजा नूं मेली। कह्यो बीजाणंद। मरियो जायींसू, कह्यो जी, मरूं तो सायणी निमित्त।

नल दमयन्ती की कथा

—रचयिता—अज्ञात

—रचनाकाल—सं० १९११ के पूर्व

—लिपिकाल—१९११

कविप-रिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

निखद देश के राजा बीरसेन के पुत्र नल रूप और गुण में अद्वितीय थे। उनका नाम देश-देशान्तर में प्रसरित था। विदर्भ देश के राजा भीमसेन को दमन नामक ऋषिराज की कृपा से एक सुन्दर बालिका का जन्म हुआ था जो रूप और गुण में उस समय की स्त्रियों में अद्वितीय थी। पूर्ण यौवना होने पर सखियों के बीच बैठे हुए उसने एक दिन नल के गुण का श्रवण किया और उन पर आसक्त हो गई। चारणों से नल ने भी दमयन्ती के अद्वितीय सौन्दर्य का परिचय प्राप्त किया और मोहित हो गए। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के प्रेम में व्याकुल रहने लगे। एक दिन मृगया के लिए गए हुए राजा नल ने सरोवर में एक सुन्दर हंस को देखा और पकड़ लिया। हंस विलाप करने लगा उसने राजा से प्रार्थना की और बताया कि उसके माता पिता का देहान्त हो चुका है। पत्नी और बच्चे उसके वियोग में भूखों मर जाएंगे। नल ने उसे छोड़ दिया। इस पर हंस ने राजा की सहृदयता की प्रशंसा की और दमयन्ती तक उनका सदेश ले जाने को तत्पर हो गया।

सरोवर में नहाती हुई दमयन्ती के पास पहुँचकर उसने नल का सदेश कहा और प्रेम का प्रत्युत्तर नल को देकर अपने स्थान को चला गया।

सखियों ने राजा से दमयन्ती की दशा बताई इस पर उन्होंने स्वयंवर की घोषणा कर दी। नल स्वयंवर के लिए चले, नारद के कहने पर अग्नि, यम, इन्द्र और वरुण भी चले। नल से इन देवताओं ने दमयन्ती के पास अपना

प्रेम सदेश भिजवाया। दमयन्ती ने अस्वीकृति दे दी और नल को ही चुनने का वचन दिया। नल से सारी शर्तें मालूम होने पर इन देवताओं ने नल का रूप धारण कर लिया। आश्चर्य चकित दमयन्ती को आकाशवाणी से वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। विवाह के उपरान्त, कलि ने इन्द्र से सारी बात जानकर बदला लेने के लिए सोचा। बहुत दिनों तक इन्तजार करने के बाद एक दिन जब नल आखेट में पानी न मिल सकने के कारण अशौचावस्था में ही सन्ध्या करने लगे तब कलि उनमे प्रवेश कर गया। जिसके फलस्वरूप उन्होंने पुष्कर से जुआ खेला और सब कुछ हार कर उन्हे बनो में भटकना पड़ा। दमयन्ती के कष्ट को न देख सकने के कारण उन्होंने उसे सोती हुई जंगल मे छोड़ दिया। दमयन्ती नाना कष्ट सहती हुई चित्तौर पहुँची वहाँ से वह अपने पिता के घर गई। इधर नल ने अयोध्या मे राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी पद पर नौकरी कर ली। दमयन्ती के दूसरे स्वयंवर की घोषणा पर नल निषध देश पहुँचे। वहाँ दमयन्ती ने उनके खाना बनाने आदि की परीक्षा ली और दोनों का मिलन हुआ। इसके बाद नल ने पुष्कर को हराकर पुनः राज्य प्राप्त किया।

प्रस्तुत रचना के पात्रों के सवाद पौराणिक शैली में मिलते है। मङ्गला चरण के उपरान्त कवि कहता है कि सीता जी के वियोग में घूमते हुए एक दिन रामचन्द्र जी 'अवरपश' वन में थो वृहदस्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि ने उनका स्वागत किया और बैठने को आसन दिया। रामचन्द्र जी ने ऋषि का कुशल समाचार पूछा। रामचन्द्र जी को सीता के वियोग में कातर देखकर ऋषि ने उत्तर दिया कि महाराज आप इतने दुखी क्यों होते हैं। महाराज नल ने अपनी पत्नी के वियोग में तो बहुत अधिक कष्ट सहे हैं। इस पर रामचन्द्र जी ने नल की कहानी सुनने की अभिलाषा प्रकट की और ऋषि ने उन्हें कथा सुनाई।

प्रस्तुत रचना एक वर्णनात्मक काव्य है किन्तु बीच-बीच मे भावव्यञ्जना के सरस स्थल भी मिलते हैं।

काव्य सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

रूप सौन्दर्य और नख-शिख वर्णन मे कवि ने दमयन्ती के सौन्दर्य के प्रति अधिकतर परम्परागत उपमानों, उत्प्रेक्षाओं का ही आयोजन किया है जैसे उसकी नाक तोते की चोंट के समान, वा 'शंख के समान और नितम्ब नगाड़ों के समान थे—

लई नाक ने छीन सोभा सुआ की।
कपोले दुओ ओप लीनी सुधा की।
चिबु की प्रभा काम क्यारी बनो ती।
तहां कंबु सी ग्रीवा सोभा धनी ती।
कुच द्वै बने कोक के से खिलौना।
तहां रोम राजि मनौ सर्प छौना।
कहों पेट की चारुता की सफाई।
जनौ काम ने आसनी सी बिछाई।
बनी नाभि कैसी जनौ कूप सोभा।
जहां ते उठै रूप के चारु गोभा।
नितम्ब हुए काम के से नगारे।
भली भाँति सौ जा सयंभू सम्हारे॥

इन परम्परागत उपमानों के द्वारा भावाभिव्यक्ति कहीं कहीं बड़ी अनूठी बन पड़ी है जैसे एक स्थान पर दमयन्ती के कटि की क्षीणता और उसी प्रदेश पर पड़ी हुई सिकुड़नों तथा रोमावलि से सम्बन्धित खैर की छरी (कत्थे की डली) तथा रस्सी का अप्रस्तुत विधान उर्दू की नाजुक ख्याली के साथ-साथ कवि की कल्पना शक्ति और दूर की कौड़ी लाने का परिचायक है।

लंक निहारि ससंक भए कवि, को बनैं मति ते अधिकाई।
बार सितार को तार कहौं, पुनि होत लखे पर न देत दिखाई।
खैर छरी त्रिवली गुण लाय कै, मैन महीप सों हाथ बनाई।
ब्रह्म की लीख सी देखि परे, नृप है और देति है नाहि दिखाई।

राजा नल के बाह्य रूप के साथ साथ कवि ने उनके व्यक्तित्व का भी चित्र अङ्कित किया है। जैसे—

गुन कौ गनेस जैसे धन कौ धनेस,
दूजो बानी को विमल सुरगुरु सो सयानो है।
कामुंना को कांम कामतरु की सी बानि ऐसी,
सील को समुद्र सबको समानो है॥

अथवा

लोक बनाय प्रजा पति जू निज चतुरता देखिबे कौ विचारो,
चित कै खैंचि करो इकठां नल राज को गात बनाय सम्हारौ।
चन्द कलंकि मन्द भयो अरविंद विचारो महातप धारो,
देखि कै काम भयो जरि छार सो कोई कहै कि सदा सिव जारो॥

संयोग पक्ष

धार्मिक प्रवृत्ति से प्रेरित होने के कारण कवि ने प्रेम के संयोग पक्ष में केलि, भोग अथवा हावों आदि का सयोजन नहीं किया है। इस कारण इसमें अन्य काव्यों की तरह सम्भोग शृंगार के वर्णन नहीं हाते।

विप्रलंभ शृंगार

वियोग पक्ष की कतिपय अवस्थाओं के चित्रण मनोहारी और हृदयग्राही बन पड़े हैं जैसे–वन मे भटकती हुई दमयन्ती की अस्तव्यस्त अवस्था का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसके बाल बिखर गए थे वक्षस्थल खुल गया था और वह विलाप करती हुई इधर उधर भटकती फिरती थी।

मन भावनी यो बिलखाती चली कच छूटि गए उघरी छतिया।
बिल पै घन मांहि जहां जन नाहिं तजी फिरि नाह अजानतियां॥

अथवा

छुटो दृग नीर धरै नहि धीर, बढ़ी उर पीर दुखे टरिवे हैं।
कहा अब नाथ, तजो तिय साथ, विवाहीं तुम्हें तुमही भरिवे हैं।

ऐसे ही अपने पिता के घर पहुँचने के उपरान्त उसे चैन नहीं पड़ती और चादनी रात्रि मे बेचैन होकर वही अपनी सखी से कहती है कि सखी इस चन्द्रमा से पूंछ कि तुझे तो ब्रह्मा ने शीतलता से गढ़ा था फिर तूने यह दूसरो को दग्ध करने का पाठ कहा से पढ़ा है। तूने यह शंभु के गले में लिपटे हुए विषधरों से अपकीर्ति का पाठ पढ़ा है या तू इसे बडवानल से सीख कर आया है।

पूछ सखी विधु सैं जह बात तू सीतलता सौं बनाय मढो हैं।
पै जह जारिवे की गति को कहु कौन गुरु सों कहा ते पढो है।
संभु गले विष सौं सिपि कै अपकीरति कालिमा पाप पढो है।
कै बड़वानल ते सिपि कै धिक छीर पयोधिते पूंछि पढो है॥

भाषा

इस काव्य की भाषा सरल और परिमार्जित ब्रज भाषा है वह भाव के साथ चपल और गम्भीर होती चलती है। नल को सामने देखकर दमयन्ती की भावशबलता का चित्र भाषा के प्रवाह में बड़ा अनूठा बन पड़ा है।

लखे भूप को राज कन्या लुभानी,
चकी सी जकी सी थकी सी भुलानी।

जनौ भूप ने जाय डारी ठगौरी,
लखै रूप सोभा भई जाय चौरी ॥

ऐसे ही दमयन्ती को स्वयवर में आई देख कर उपस्थित राजाओं की मनो-दशाओ और दमयन्ती को आकृष्ट करने के लिए उनकी चेष्टाओ का चित्र भी सुन्दर और मनोवैज्ञानिक बन पड़ा है।

कोई मूंछ पै हाथ फेरे मुछारे। कोई पास के पंच छूटी सम्हारे।
कोई भूप देखे बड़ी आरसी कौ। कोई हीर वाली लखै वासरी कौ।
कोई चित्र की पूतरी को निहारै। कोई दीठि वांकी चहूँ धा घुमावे।

भाषा का प्रवाह और शब्दयोजना का एक उदाहरण भी देखिए। नल के सदेश पर झुंझला कर दमयन्ती अपने मनोभावो को रोक न सकने के कारण बडी तेजी से कहती है—

सब सौं लरौंगी कानि कुल की करौंगी,
मात पितु सौं दुरौंगी, करि केतिक जंजाल कौ।
आगि में जरौंगी विप खाई के मरौंगी,
या नलै वरौंगी, ना वरौंगी दृगपाल कौ।

ऐसे ही नल की सेना के चलने के प्रभाव को कवि ने बड़ी ओज पूर्ण भाषा मे व्यक्त किया है।

'धनु औ निपंग नल सङ्ग चतुरङ्ग चमू,
युहुकर की फौज के पहार लुनियत हैं।
वज्ज न पटह धीर गज्जन गयंद बीर,
तेज की फतूह अरिजूह भुनिअत हैं।
हल सो दबकि धरा धंति धरातल लौं,
और ईस सेसके सीत धुनियत हैं।
गुड़ी सी उड़ी जाति पुहुमि खु 'थारन' सौं,
कच्छप की पीठ पै खड़ाके सुनियत हैं ॥

छन्द

कवि ने दोहा-चौपाई के अतिरिक्त कुण्डलिया, सोरठा, सवइया आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इस रचना मे धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान रूप मे परिलक्षित होती है। इस कारण कुछ रहस्यमयी उक्तियाँ एव अध्यात्मिक तत्वों के सकेत भी बीच बीच मे मिलते हैं। जैसे—स्वयंवर मे आई

हुई दमयन्ती पाँच नलों को देखकर अचंभित हो जाती है। अपने वचन और धर्म को संकट में देखकर वह ईश्वर से वन्दना करती है इस वन्दना में भक्ति की भगवान के प्रति स्तुति और याचना का पूर्ण रूप निखर उठा है। यह धार्मिक विश्वास है कि तर्क से भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसे विनती और प्रार्थना से एवं उसकी शक्ति पर विश्वास से पाया जा सकता है। इसी भावना का परिचय हमें निम्नांकित पंक्तियों में मिलता है।

'नलौ पाँच आगे खड़े यो विचारी। लखै तर्क कैके नहीं भेद पावै।

अस्तु वह अपनी परेशानी अपनी सखियों पर प्रकट करती है। सखियों ने उत्तर दिया कि देवता सदैव सत्य की रक्षा करने वाले हैं। उनकी वन्दना करो वे तुम्हारे कष्ट दूर करेंगे।

यहूँ सो करौ अजुली बाँध विनती, कहौ अपनी बात साँची अघिंती।
सदा देवता सत्य के हैं पिआरे, करेंगें कृपा काम ह्यौ है तिहारे।

अस्तु उसने उनकी विनती की और उनसे क्षमा याचना करते हुए अपने धर्म की रक्षा का वरदान माँगा। इसलिए कि भारतीय ललना केवल एक बार ही अपने पति का मनसा वाचा कर्मणा वर्ण करती है। दूसरे को भूल से भी अपना समझने में उसे पाप लगता है। अस्तु वह कहती है—

जबै आपने दूत नाहीं पठाओ, तबै हंस पंछी इहाँ एक आयो।
करीं आई बातें नलै की बड़ाई, तहाँ हौं सुनी जू महा मोद छाई।
करी मैं प्रतिज्ञा नलै देह दीनी, करौ नाथ विनती नहीं और चिन्हीं।
करौ जौ दया तो रहै धर्म मेरो, लगो चारिहूँ सौं हमारो निवेरो।।

इस विनती मे एक भक्त की भावना के दर्शन के साथ-साथ भारतीय आदर्श नारी का चित्र भी अंकित किया गया है। अस्तु भाषा, भाव तथा घटना के सविधान और छंद की दृष्टि से यह एक सुन्दर काव्य कहा जा सकता है।

प्रेम पयोनिधि

मृगेन्द्र कृत

रचनाकाल सं० १९१२

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है। इन्होंने स्वपरिचय में कुछ नहीं लिखा है केवल इतना पता चल सका है कि यह सिख संप्रदाय के थे और गुरु गोविन्द सिंह के अनन्य भक्त थे।

कथावस्तु

एक सुन्दर नगर में प्रभाकर नाम के राजा राज्य करते थे। वह बड़े धर्मात्मा और प्रजापालक थे किन्तु निःसंतान होने के कारण बड़े दुखी रहा करते थे। ईश्वर की वन्दना और परम भक्ति के प्रताप से उन्हें एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। राजा और प्रजा ने बड़ा हर्ष मनाया, पण्डित, ज्योतिषी आदि राजकुमार की ग्रह-दशा देखने के हेतु बुलाए गए। ज्योतिषियों ने बताया कि राजकुमार जगत-प्रभाकर बड़ा यशस्वी एवं भाग्यशाली युवक होगा किन्तु पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इसकी ग्रहदशा ठीक नहीं है। इस अवस्था के पहुँचते ही यह प्रेम की पीड़ा से व्याकुल होगा और घर तथा राज्य छोड़ कर निकल जाएगा। रास्ते में इसे बड़ी कठिनाइयां और दुख उठाने पड़ेंगे अन्त में तीन विवाह के उपरान्त घर लौट आवेगा।

पिता ने पुत्र के लिए शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया और तेरह वर्ष की अवस्था में कुमार सभी विषयों में दक्ष हो गया। राजा ने पुत्र को गृहत्याग और विरक्ति से बचाने के लिए उसका विवाह चौदह वर्ष की अवस्था में परम रूपवती कुमारी चन्द्रप्रभा से कर दिया। चन्द्रप्रभा और जगतप्रभाकर बड़े आनन्द से अपना जीवन बिताते थे और साथ-साथ आखेट एवं घूमने के लिए जाया करते थे। एक दिन नगर की सड़कों पर घूमते हुए दोनों 'गुदड़ी' बाजार जा पहुँचे। इस बाजार के एक कोने पर बहुत बड़ी भीड़ देखकर कुमार भी कारण जानने की लालसा से वहाँ पहुँचा। उसने देखा कि एक ब्राह्मण बड़ा सुन्दर 'तोता'

बेचने आया है।। वह तोता जितना सुन्दर था, उतना ही ज्ञानी था। तोते के मुख से श्रुति और स्मृति के श्लोक तथा कवित्त आदि सुनकर कुमार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने तोते का अच्छा मूल्य देकर मोल ले लिया।

राजकुमार तोते से बड़ा प्रेम करता था और एक सुन्दर पिंजड़े में उसे अपने शयनगृह में रखता था। एक दिन कुमार बाहर गया था। चन्द्रप्रभा ने स्नान किया और फिर सोलहो शृंगार कर दर्पण के सामने खड़ी हुई। अपने रूप को देख कर वह स्वयं मोहित हो गई अपनी चेरियों से भी उसने अपने रूप के विषय में पूँछा। चेरियों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। चन्द्रप्रभा का मन प्रशंसा से न भरा और वह गर्व से भर कर तोते के सामने पहुँची तथा पूँछा 'कि क्या तुमने मुझ सी सुन्दरी कहीं देखी है।' तोता इस प्रश्न पर मौन रहा। इस पर चन्द्रप्रभा ने क्रुद्ध होकर दुबारा प्रश्न किया। तोते ने तब बड़ी विनम्रता से चन्द्रप्रभा को समझाया कि 'मनुष्य को कभी गर्व न करना चाहिए। गर्व के कारण ही रावण जैसा प्रतापी राजा नष्ट हो गया। ब्रह्मा का गर्व भी खर्व हुआ फिर तुम्हारा क्या'। इस उत्तर को सुनकर चन्द्रप्रभा बड़ी क्रुद्ध हुई। उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गए ओंठ फड़फड़ाने लगे। इतने में कुमार वहाँ आ पहुँचा। चन्द्रप्रभा को क्रुद्ध देखकर उसने इस क्रोध का कारण पूछा किन्तु चन्द्रप्रभा कुछ न बोली। तोते ने राजकुमार के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि चन्द्रप्रभा को अपने रूप पर बड़ा गर्व है इन्होंने मुझसे पूछा था कि 'क्या तुमने मुझसी सुन्दरी ससार में देखी है।' मैंने इन्हें बताया कि मनुष्य को कभी गर्व न करना चाहिए 'इस पर यह क्रुद्ध हो गई हैं। 'भावी बड़ी बलवान होती है मेरा इसमें कोई दोष नहीं।' हे राजकुमार मैं तुम्हारे सामने कहता हूँ कि उत्तर देश में कंकनपुर एक बड़ा सुन्दर नगर है। जहां पहुँचने में एक वर्ष लगेगा। उस नगर की राजकुमारी 'ससिकला' के सौन्दर्य की समता ससार की कोई भी नारी नहीं कर सकती। और चन्द्रप्रभा तो उसके सामने नितान्त हेय दिखाई पड़ेगी। इतना सुनते ही चन्द्रप्रभा पिंजड़े को उठाकर बाहर चली गई किन्तु कुमार ससिकला के प्रेम में विह्वल हो उठा।

उस दिन से कुमार का मन उचटा रहने लगा, अन्दर ही अन्दर वह ससिकला के प्रेम में घुटने लगा अन्त में उससे न रहा गया और एक दिन वह तोते के पास पहुँचा तथा उससे ससिकला को दिखाने की विनती करने लगा।

तोते ने कुमार को प्रेमपथ पर पग रखने के लिए मना किया और समझाया कि इस पथ की कठिनाइयों को तुम सहन न कर सकोगे उसने प्रेम की व्यथा के कितने ही रोमाञ्चकारी चित्र अंकित किए किन्तु कुमार अपने विचार

पर दृढ़ रहा। अस्तु तोता कुमार का पथ प्रदर्शन करने के लिए सहमत हो गया और दूसरे दिन ससैन्य कुमार ने कंकनपुर की ओर तोते के साथ प्रस्थान किया।

तीन दिन के उपरान्त वह लोग एक सुन्दर वन में पहुँचे। मृगों को देखकर कुमार को आखेट की सूझी और उसने अपना घोड़ा एक मृग के पीछे डाल दिया। मृग के पीछे दौड़ते-दौड़ते शाम हो गई कुमार अपने साथियों से बिछुड़ गया। मृग भी कहीं अन्तर्ध्यान हो गया। प्यास से व्याकुल कुमार को एक झोंपड़ी दिखाई पड़ी वह वहाँ पहुँचा। उसमें एक वृद्ध संन्यासी ध्यानस्थ था। कुमार के पास पहुँचने पर उसने आँख खोली तथा उसका परिचय और आने का कारण पूछा। कुमार ने सारी घटना बताई और अपने हृदय की व्याकुलता को भी सन्यासी को बताया। कुमार के हृदय में सच्चे प्रेम का अनुभव कर सन्यासी ने उससे आँख मिलाने को कहा। संन्यासी से आंख मिलते ही कुमार ने उसके नेत्रों में कनकपुर, राजघराना, एवं राजकुमारी ससिकला को देखा। कुमारी के सौन्दर्य को देखते ही कुमार मूर्छित होकर गिर पड़ा। होश आने पर कुमार ने अपने को जंगल के उसी भाग में पाया जहां से वह चला था किन्तु उसके साथी वहां न मिले। वह वहीं एक पेड़ के नीचे सो गया।

दूसरे दिन कुमार अकेला ही कनकपुर की ओर चला। गर्मी से व्याकुल होकर वह एक सरोवर के तट पर पानी पीने की इच्छा से पहुँचा। जल पीने के लिये ज्यों ही वह झुका त्यों ही उसे ससिकला का सुन्दर मुख जल के भीतर दिखाई पड़ा। अपनी सुध-बुध खोकर कुमार सरोवर में कूद पड़ा।

सरोवर में प्रवेश करत ही कुमार बड़ी तीव्र गति से नीचे की ओर खिंचने लगा। थोड़ी देर के उपरान्त उसके पैर भूमि पर टिके किन्तु सरोवर के स्थान पर उसने अपने को एक सुन्दर फुलवारी में पाया। उस फुलवारी में एक सुन्दर महल बना था। कुमार जिज्ञासावश उस महल की ओर बढ़ा। सामने उसने परम रूपवती स्त्रियों की एक टोली देखी जिसके मध्य में एक सुन्दरी मणिजटित सिंहासन पर बैठी थी। कुमार के सौंदर्य को देखकर इस नारी की चेरियाँ बड़ी अचम्भित हुईं। उन्होंने अपनी स्वामिनी से उसका रूप वर्णन किया। सुन्दरी सुन कर प्रसन्न हुई। इतने में कुमार उसके पास आ पहुँचा।

सुन्दरी ने कुमार का स्वागत किया और उसे अपने पास सिंहासन पर स्थान दिया। कुमार के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन मँगाकर उस सुन्दरी ने कुमार की क्षुधा शान्त की और उसे अपने साथ महल में ले गई। वहाँ उसने कुमार को बताया कि वह जादूगर महिराज की पुत्री है। उसने यह भी बताया

कि वह बहुत दिनों से उस पर आसक्त है। और उसकी राह देखा करती थी। कुमार ने अपनी विरह दशा बताते हुए ससिकला के प्रति अनुराग प्रकट किया। उस सुन्दरी ने कुमार से एक दिन रुकने की विनती की। कुमार रुक गया। दूसरे दिन वह चलने के लिए प्रस्तुत हुआ किन्तु महिपालसुता ने उसे रोका। किसी प्रकार कुमार को रुकते न देख कर क्रुद्ध होकर महिपाल सुता ने कनकपुर और उसकी राजकुमारी को मन्त्र से भस्म कर देने की धमकी दी। इस डर से कुमार वहीं रुक गया। महिपालसुता नित्य प्रातःकाल अपने पिता के दरबार में जाया करती थी और रात में लौटती थी। एक दिन जाते समय उसने कुमार से कहा कि तुम्हारा मन अकेले उकताया रहता होगा। इसलिए बाहर घूम आया करो। तुम्हें किसी मन्त्र-तन्त्र का भय न रहे इसलिए यह गुटिका लो जो सदैव तुम्हारी रक्षा करती रहेगी। गुटिका पाने के बाद कुमार दूसरे दिन चलने को उद्यत हुआ। महिपालसुता ने कुमार को रोकने का प्रयत्न किया किन्तु गुटिका के कारण उसका कोई भी मन्त्र काम न आया। कुमार वहाँ से चल कर धरमपुर नगर पहुँचा। इस नगर में उसकी भेंट राजकुमारी सूरजप्रभा से हुई। सूरजप्रभा कुमार के रूप पर आसक्त हो गई और वह उसे अपने महल में ले गई। ससिकला के प्रति कुमार ने अपने प्रेम का प्रदर्शन किया। राजकुमारी सूरजप्रभा के बहुत विनती करने पर कुमार वहाँ रुका लेकिन दूसरे दिन वह कनकपुर की ओर चल दिया। चौदह दिन के उपरान्त वह कनकपुर पहुँचा और वहाँ के राजा से मिला। कनकपुर में उसे ज्ञात हुआ कि कुमारी ससिकला को कुछ लोग मंत्र बल से उठा ले गये हैं। उसे छुडाने का कुमार ने प्रयत्न किया और उसमें सफल भी हुआ। इस प्रकार दोनों मिले और राजा ने दोनों का विवाह कर दिया। कुछ दिन कनकपुर में रहने के उपरान्त कुमार घर की ओर लौटा। रास्ते में उसने सूरजप्रभा को भी साथ ले लिया। सूरजप्रभा के यहाँ से जब वह लौट रहा था तब रास्ते में उसकी भेंट मंत्रीसुत से हुई। मंत्रीसुत दोनों राजकुमारियों को देख कर मोहित हो गया और उन्हें पाने की अभिलाषा से षड्यंत्र की योजना बनाने लगा। एक दिन दोनों मित्र घूमने निकले मार्ग में उन्हें एक मृतक बन्दर का शरीर मिला। कुमार ने अपने मंत्र बल को प्रदर्शित करने के लिए अपना शरीर छोड़ कर इस मृतक बन्दर के शरीर में प्रवेश किया। अवसर अच्छा देखकर मन्त्री सुत कुमार के शरीर में प्रवेश कर गया और अपने शरीर को तलवार से काट डाला। छद्मवेशी मन्त्रीसुत इस प्रकार कुमार के रूप में रानियों के पास पहुँचा लेकिन आत्मिक बल न होने के कारण वह उससे कुछ कह न

पाता था। उसकी चेष्टाओं से सूरजप्रभा को कुछ शक हुआ और दोनों उससे सतर्क रहने लगीं। बन्दर के शरीर में कुमार इधर-उधर भटकता फिरता था एक दिन एक बहेलिये ने उसे पकड़ लिया और बाजार में बेचने गया। बन्दर के असाधारण बुद्धि पर लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था। मन्त्रीसुत को जब इस बन्दर का पता लगा तो वह सोचने लगा कि कहीं यह कुमार ही न हो इसलिए उसने उस बहेलिये को बुलवाया। उस बहेलिये की स्त्री से कुमार ने बड़ा प्रार्थना की और कहा कि वह किसी भी प्रकार उसे राजकुमार के पास न जाने दे। सूरजप्रभा को भी इस बन्दर का पता लगा और वह उसे देखने गई। कुमार ने सूरजप्रभा को पहचाना। और सकेत से अपना परिचय दिया। सूरजप्रभा सब कुछ समझ गई। दूसरे दिन वह एक मृत तोते को लेकर वहाँ पहुँची कपि रूपी कुमार ने अपना शरीर त्याग किया और तोते के शरीर में प्रवेश कर गया। तोते को लेकर सूरजप्रभा घर पहुँची तथा उसी दिन से वह कुमार रूपी मंत्रीसुत का आदर करने लगी। एक दिन जब मन्त्रीसुत वहाँ बैठा था वह तोते को वहा ले आई, तोते ने मन्त्रीसुत को अपना परिचय दिया। इसे सुनते ही वह डर से कांप उठा। सूरजप्रभा ने मन्त्र बल से मन्त्रीसुत के प्राण निकाल दिए और कुमार अपने शरीर में प्रवेश कर गया। आनन्द से कुमार और दोनों रानियों ने अपने नगर की ओर प्रयाण किया। रास्ते में महिपालसुता का नगर मिला। अपनी पुत्री के अपमान पर महिपाल बड़ा क्रुद्ध था इसलिए उसने कुमार का मार्गावरोधन किया। कुमार और महिपाल मे भयंकर युद्ध हुआ महिपाल हारा यहीं कुमार को चन्द्रप्रभा का भेजा एक तोता मिला जिसने चन्द्र-प्रभा का विरह सदेश कुमार को दिया उसे सुनकर कुमार ने चलने की तैयारी की। जहाज पर चढ़कर जब ये लोग अपने घर आ रहे थे तब समुद्र मे भयंकर तूफान आने के कारण जहाज टूट-फूट गए और कुमार तथा रानिया अलग-अलग जा पड़ीं। कुमार के विलाप पर सिन्धुपुरुष ने प्रकट होकर उसको सात्वना दी तथा यक्षराज की सहायता से दोना रानियों को ढूँढ कर कुमार को सौंप दिया। इस प्रकार कुमार अपनी पत्नियों के साथ घर पहुँचा।

इस प्रबन्ध की रचना का कारण बताते हुए कवि ने एक स्थान पर लिखा है कि इसकी रचना दो विचारों से की गई है एक ओर तो कवि 'प्रेम के प्रसग' को प्रधानता देना चाहता था उसके दिव्य स्वरूप का अंकन करना चाहता था प्रेम की पीर और उसकी कठिनाइयों का वर्णन करना और दूसरी ओर वह जन-साधारण के लोकोत्तर घटनाओं के विश्वास का आश्रय लेकर एक अद्भुत रचना

के द्वारा उनको आनन्द प्रदान करना चाहता था[1]।

उपरोक्त उद्देश्य के कारण ही इसकी कथावस्तु में अन्य प्रबन्धों की अपेक्षा अधिक चमत्कार-प्रदर्शन, असाधारण घटना-विधान या लोकोत्तर दृश्यों की योजना की गई है। पाठक के कौतूहल को सजीव रखने के लिए और नायक के चरित्र की दृढ़ता की परीक्षा एवं बुद्धि-कौशल दिखलाने के लिए असाधारण लोकोत्तर तत्व और चमत्कारिकता के प्रदर्शन का इसमें जितना विधान हुआ है उतना अन्य काव्यों में नहीं मिलता, इसमे पग-पग पर तिलिस्म जादू एवं अय्यारी तथा मन्त्र-शक्ति आदि का उल्लेख मिलता है।

इसके अतिरिक्त प्रेम की लोकोत्तर शक्ति, इस मार्ग की कठिनता आदि का वर्णन कथानक के बीच-बीच में आए हुए सवैयों, और कवित्तों में किया गया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कवि ने दोहे चौपाई का विधान वस्तुकथन के लिए किया है और जहाँ भावोद्रेक के स्थल आए हैं वहाँ उनकी अभिव्यक्ति के लिए सवैयों और कवित्त छन्द का प्रयोग किया गया है।

काव्य प्रणयन की शैली में कवि ने अपने पूर्व के कवियों की परम्परा का अनुसरण किया है उदाहरणार्थ प्रेम काव्यों की यह एक सामान्य विशेषता रही है कि वे अपने चरित्र नायक को कार्य की ओर उन्मुख करने के लिए नायिका के रूप सौंदर्य का वर्णन किसी विहग तोते या हंस से कराते हैं। होता यह है कि नायक की विवाहिता स्त्री जब सज-धज कर रूपगर्विता नायिका के रूप मे उस पक्षी से अपने रूप की प्रशंसा कराना चाहती है तभी वह पक्षी किसी अन्य दूर देश मे रहने वाली राजकुमारी के रूप के आगे उसे हीन बताता है। जिसका पता अन्त में राजकुमार को मिलता है और वह अपने घर को छोड़कर उस परम रूपवती को प्राप्त करने के लिए चल पड़ता है। कार्य की गति के बीच बीच प्रेम-मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन एवं लोकोत्तर घटनाओं का चित्रण किया जाता है। गति के विराम मे रस-सिक्त स्थलों का आयोजन करना भी इन प्रेमाख्यानों की परिपाटी रही है।

प्रेम पयोनिधि का घटना-विधान अंशतः इसी परिपाटी का अनुसरण करता

---

१. प्रेम पयोनिधि प्रेम की अद्भुत कथा महान।
कौतुक हित बरनन करौं लख रीझहिं गुनमान।
प्रेम प्रसङ्ग प्रधान करि वरनियौं राजकुमार।
प्रेम पयोनिधि ग्रंथ को याते नाम सुधीर।

है। कथा के संविधान की तरह काव्य के प्रारम्भ में यह कवि सरस्वती, गणेश, अथवा अपने इष्टदेव की स्तुति करते थे, उसके बाद गुरु की वन्दना के उपरान्त अपने को काव्य-गुण से हीन एवं दीन चित्रण किया करते थे। साधारणतः इन प्रबन्धों में प्रबन्ध का सारांश प्रथम तरंग में ही दे दिया जाता था और दूसरे तरंग से कवि मूल कथा का प्रारम्भ करते थे। प्रस्तुत रचना में यह सब बातें पाई जाती हैं[1]।

मृगेन्द्र ने इस प्रकार कथाग्रन्थ की रूढ़ि के साथ-साथ काव्य प्रणयन की शैली को भी परम्परा के रूप में अपनाया है।

अस्तु इस काव्य के कवित्त और सवैयों में हमें मुक्तक प्रेमकाव्यों की परम्परा मिलती है तो चौपाई और दोहों की शैली में प्रबन्ध काव्यों की, जो हिन्दू प्रेमाख्यानों के कथाग्रन्थ की परम्परा और काव्य-प्रणयन की परम्परागत शैली से अनुप्राणित है।

प्रबन्ध तत्व

जगतप्रभाकर और ससिकला की प्रेम कहानी प्रेमपयोनिधि की मूल घटना है किन्तु सुरजप्रभा तथा महिपालसुता के आख्यान आधिकारिक कथा से कम महत्व के नहीं ठहरते। एक नायक जगतप्रभाकर से सम्बन्धित तीन

---

१. 'प्रथम सकल सुत आदि प्रणव, प्रणव प्रणद् मदन।
सुमरत परमाताद मंगल सग लगे फिरहि॥
अच्छर अच्छत अच्छेद भेद जिहिं वेदन पावत।
जग उत पति थिति हेतु नेत नेतहि करि गावत॥
सनद रूप ह्वै अनद आप पूरन पखरियो।
ओत प्रोत पर जुरियो खेल आपन महिं करियो॥
सुरनर गिरा गनाधिपति जाहि सुमर मंगल लहित।
वन्दिता म्रिगिंद तिहि वन्द कर प्रणव वरसाधिपति॥'
सोरठा—'पैरत परम सुजान, प्रेम पयोनिधि' अपरमित।
तरन चहत अयान, मो मति पतित पपीलका॥'
कवित्त—'प्रेमपयोनिधि के परत पार पेर कौन।
मजनू से मौजी को मजे जग यों मौज सों॥
जिनकी कथान के प्रबन्ध बांध बाडे कथित।
कवीन्द्र आज लगे वाही राज सों।
'प्रेमपयोनिधि'

नायिकाओं के चरित्रों के कारण यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि प्रस्तुत रचना में तीन प्रेमाख्यान समानान्तर चलते हैं।

इन तीनों आख्यानों का विकास अलग अलग हुआ है महिपाल सुता और सूरजप्रभा का प्रेम और संयोग नायिकारब्ध है तो ससिकला और जगत-प्रभाकर का नायकारब्ध।

सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से तीनों कथाओं का गुंफन करने में कवि ने बड़ी कुशलता से काम लिया है। महिपाल सुता के द्वारा प्रेम की पराकाष्ठा में प्रदत्त जादू की गुटिका के कारण ही कुमार ससिकला के पास जा सका, और इस जादूगरनी के माया जाल से छुटकारा भी पा सका, एक की भूल दूसरे के लाभ का कारण बन गई। सूरजप्रभा के प्रेम की अनन्यता ने कुमार को ससि-कला की प्राप्ति के बाद, उसे ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया, और इस सम्बन्ध से प्राप्त सेना के द्वारा कुमार 'राजा महिपाल' को युद्ध में परास्त कर सका। अस्तु तीनों कथानक एक दूसरे को कार्य की ओर प्रेरित करने में सहायक दिखाई पड़ते हैं।

कथा के प्रासंगिक रूप में इस रचना की अनेक छोटी छोटी लोकोत्तर घटनाएँ आती हैं जैसे तोते की कहानी, जंगल में कुमार को ऋषि के मिलने की घटना, सरोवर में ससिकला का प्रतिबिम्ब देखने की बात, महिपाल सुता द्वारा निर्मित अग्नि का परकोटा, समुद्र की दुर्घटना के उपरान्त सिन्धुपुरुष और यक्षराज की सहायता का वृत्तान्त आदि। किन्तु सबसे बड़ी प्रासंगिक कथा मंत्रीसुत की आती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि तीनों प्रेमाख्यान एक दूसरे को कार्य की ओर उन्मुख करने में सहायक हुए हैं अस्तु इन आख्यानों में मिलने वाली छोटी-बड़ी घटनाएँ उसी प्रकार से कथानक की गति को कार्य की ओर मोड़ने में सहायक हुई हैं जिस प्रकार उपरोक्त आख्यान। उदाहरणार्थ, सरोवर में ससिकला के प्रतिबिम्ब को देखकर ही कुमार उसमें कूदा था और इसी घटना के फलस्व-रूप वह महिपालसुता से जादू की गुटिका पा सका, अग्नि के परकोटे के तोड़ने और मृग को मारने के उपरान्त कुमार और ससिकला का प्रथम मिलन सम्भव हो सका। मन्त्रीसुत का विश्वासघात जहाँ एक ओर कथानक के आश्चर्य तत्व को और भी उद्दीप्त करता है वहाँ ससिकला और सूरजप्रभा के सतीत्व और उनके चरित्रबल की कसौटी भी उत्पन्न करता है। मन्त्रीसुत का अन्तिम परिणाम दुश्चरित्र कृतघ्न और विश्वासघाती व्यक्तियों के कुकर्मों का फल कहा जा सकता है।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से यह रचना पूर्ण सफल है।

काव्य-सौन्दर्य

प्रेम-व्यंजना

प्रेम पयोनिधि में संयोग वियोग का उतना चित्रण नहीं मिलता जितना प्रेम के स्वरूप और इसके पन्थ में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन किया गया है। कवि का कहना है कि प्रेम ही संसार में सार है यही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का दाता है।

'सार विचार जु देखिए, बड़ो प्रेम को नेम।
प्रेमही ते पावत सभै, जगत जोग अरु नेम।
धरम अरथ अरु काम पुनि, मुकति पदारथ चार।
प्रेमहि करि साधित सकल, प्रेम सभन को सार॥'

परमात्मा को पाने के लिये प्रेम ही एक मात्र साधन है जिस प्रकार दीपक के बिना अंधकार नहीं दूर हो सकता उसी प्रकार प्रेम के बिना ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। जोग, तप, तीर्थ, व्रत स्मृतिपुरान आदि सभी प्रेम के आधीन रहते हैं।

जोग जप तप तीरथ वरत दान,
आसुम वरने वे सखेल से खगे रहे।
सिमृत पुरान सुत सासत सकल सोध,
बोध लै प्रबोध परिपूरन भगे रहे।
मुंडित जटिल म्रिंद रिखि मुनि म्रगिंद,
मारुत अहारी आठौ जाम जे जगे रहे।
साधन के मौर सभै ठौर ठौर थोथर है,
दौर दौर प्रेम जू के पायन लगे रहे।

प्रेम के द्वारा ही गोप बालाएँ कृष्ण को पास सकीं, सेवरी जैसी अछूत स्त्री राम को जूठे फल खिला सकी तथा कुब्जा जैसी कुरूपा कृष्ण से अपने मन की अभिलाषा पूर्ण करा सकी।

प्रेम की प्रपकता व्रिज वनितान,
अनत हूँ भोज मौख है बना लिए।
चारहुँ पदारथ को भाजन व्रिज राज जुंसों,
मन भाए बातन तौ कुबजा बजा लिए।

नीचे जात भीलो देखो प्रेम की ससीली,
रामचंद्र सो मृगिंद जूठे बेर जो खवा लिए।
छाती यो छवाये काहू बाछरन चराए काहू,
प्रेम कर पाहन ते परमेस पा लिए।

किन्तु प्रेम जितना ही सुन्दर आनन्ददायी एवं चारों पदार्थ का दाता है उतना ही उसका पंथ कठोर और कुटिल तथा दुसाध्य है। इसका पंथ संसार से उल्टा और विरला है। इस पथ पर चलने वाले को सर के बल चलना पड़ता है जितनी ही इसमें कठिनाइयां होती हैं उतनी ही इसकी तीव्रता बढ़ती चलती है। वास्तव में इस पथ पर चलनेवाले को अपने हाथ अपने रक्त से रंगने पड़ते हैं इसलिए मनुष्य को प्रेम पथ पर बहुत सोच-समझ कर पग रखना चाहिए[1]।

किन्तु प्रेम की यही पीर ही तो प्रेमियों का सर्वस्व है जिसके हृदय में प्रेम की ज्वाला न धधकी उसका शरीर स्मशान के समान शून्य और नीरस है।

'विरहा विरहा आंखिये विरहा तूं सुल्तान।
जा तन में विरहा नहीं सो तन जान मसान॥

× × ×

संयोग-शृङ्गार

यही कारण है कि वियोग की छटा प्रेमपयोनिधि में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। कवि प्रेम की पीर से भरे सवैये पर सवैये और कवित्त पर कवित्त लिखता चला जाता है। वह विरह की भावना में इतना तल्लीन रहता है कि उसकी दृष्टि संयोग पक्ष और नारी के स्थूल सौन्दर्य की ओर बहुत कम झुकती है। समय की परिपाटी और काव्य की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर कवि कुछ क्षणों के लिए ससिकला और जगतप्रभाकर के संयोग शृङ्गार को अंकित करने के लिए रुका है। जैसे जगतप्रभाकर प्रियमिलन की लालसा में इतना व्याकुल दिखाई पड़ता है कि उसका समय काटे नहीं कटता और कभी कभी वह इस व्याकुलता में अपने भाग्य को भी कोसने लगता है।

'निस संयोग के आन की लगीय है अवसेर।
छिन छिन बियाकुल होत मन देखि दिवस की देर॥'

× × ×

---

१. "ये हो अजान प्रहार प्रान ये कौन से ठान अठान करै तू।
प्रेम के पंथ मै पाऊ धरै अपने रकतापने हाय भरै तू।
हा हा मले जिय राम को मान ले नेह के नाम न हाय मरै तू।
याह के नफेह में नुकसान सों जान किसान को अंक धरै तू।"

कबहुं कहत कस भाग हमारे,
घरी बजावत नाहिं घरियारे।

कुमार की इस व्याकुलता के अङ्कन के बाद कवि ने कुमारी के आने का वर्णन नहीं किया है वरन् फौरन उसने संयोग शृङ्गार का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है। इस वर्णन में विव्वोक और किलकिञ्चित हाव के साथ प्रथम समागम में होने वाली स्वाभाविक लज्जा का चित्र भी सुन्दर बन पड़ा है[१]।

विप्रलम्भ शृंगार

प्रेम के वियोग पक्ष का चित्रण कवि ने पात्रों द्वारा अभिव्यञ्जित करने का प्रयत्न नहीं किया है यही कारण कि सूरजप्रभा, महिपालसुता आदि नायिकाओं की विरह दशा का विशद वर्णन नहीं मिलता। केवल एक स्थान पर 'सूरजप्रभा' की मानसिक अवस्था का संकेत करता हुआ कवि कहता है कि वह कभी महलों पर चढ़ कर कौए उड़ाती थी और कभी प्रियतम के लौटकर आने के दिन गिना करती थी इस प्रकार उसके दिन जलविहीन मछली की तरह तड़पते बीतते थे।

'कबहुँ महल चढ़ काग उड़ावत,
ऐसी पावन सगुन मनावत।
'अवधि दिवस गन मन अकुलावत।
जल विहून मछरी तरपावत।
आहुट पाय पौर पर आई।
निरखत रहत विफल क लाई।'

किन्तु ऐसे वर्णन अन्य स्थानो पर नहीं मिलते इसलिए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कवि ने पात्रों द्वारा वियोगपक्ष की अभिव्यंजना की शैली को इस रचना में नहीं अपनाया है।

प्रकृति-चित्रण

अपनी ही धुन में मस्त रहने वाले एवं महल की चहारदीवारी में बन्द नायिकाओं की प्रेम लीला को चित्रित करने वाले हिन्दू प्रेमाख्यानक कवियों में साधारणतः प्रकृति-चित्रण की प्रवृत्ति कम दिखाई पड़ती है। उनका ध्यान

---

१. 'प्रेम उमंग की उत बलकारी।
इत लज्जा बल रोकन वारी।
गढ़ आलिंगन पर बरजत तहि।
स्वास चढ़ी बरजत तजत अहि।'

अगर जाता भी तो वह प्रकृति के उद्दीपन विभाव तक ही सीमित रहता था वे इने-गिने पेड़ों पौदों के नाम गिना दिया करते थे। मृगेन्द्र भी तत्कालीन प्रवृत्ति से अपने को अलग न कर सके इन्होंने एक स्थान पर वसंत के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है[1]।

ऐसे ही प्रभात का वर्णन करता हुआ कवि उषा को संयोगिनी स्त्रियों के रक्तपान के कारण ही लाल देखता है[2]।

कुछ फूलों के नाम गिनाने की प्रवृत्ति का भी अवलोकन कीजिए। फुलवारी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

> 'सर सुरभित सभ फुलवारी, बेला कहूँ चमेली क्यारी।
> कहूँ मोतिया कहूँ मोगरा, जुही केतकी कहूँ केवरा।
> मदन वान कहुँ जरद चमेली कहूँ निराली फुलित तरु बेली।
> इक दिश फूलत सुमन गुलावी, चहु चुहात सुख गुड़ी लाली।'

लोक पक्ष

प्रेम प्रभा के बीज जीवन का जितना क्षेत्र आ सका है उसमें कवि ने मानव जीवन के अन्य अंगों की ओर भी इंगित किया है। गुरु के प्रति श्रद्धा फलित ज्योतिष और भाग्य के ऊपर विश्वास लगभग प्रत्येक काव्य में मिलता है वह इसमें भी पाया जाता है। जैसे—

> 'पै भावी सबपर बलवाना, भलो बुरो नहिं परत पिछाना।'

ऐसे ही जगतप्रभाकर के जन्म पर पण्डित लोग उसकी कुंडली बनाकर यह बताते हैं कि बालक तेजस्वी होनहार है किन्तु प्रेम की पीड़ा से व्याकुल होकर

---

१. वहि आइ वसत वहार 'अरे वन तू वन है गम खाहु नहीं।
लख कोकिल भ्रिंग विहंगन भीरु रे तोहि कछू परवाहु नहीं।
गई रात प्रभाव भई ललटीन तू नैन नीर बहाहु नहीं।
पुन रात भई वहि तेरी सभा मे प्रभा बनै छाइ उमाहु नहीं।'

२. सदा प्रभात सयोग निसा को,
पल पल गत पल अटकत ताको।
अजहूँ पलक संग पलकन भव की,
प्रात पिसाचिनि अति ही ममकी।
रक्त पान प्रेमनि को कीनो।
भई प्रात अरुन मुख लीनो।
बोल उठ्यो कुकदा वहि कूरा।
प्रेमिन की परितारिक पूरा।

यह युवावस्था मे घर से बाहर चला जाएगा और फिर तीन विवाह कर घर लौटेगा।

किन्तु सबसे उल्लेखनीय है स्त्री जाति के प्रति कवि का दृष्टिकोण। उसका विश्वास है कि नारी का त्राण अपने पति के साथ रहने और उसकी सेवा मे ही हो सकता है। बिदा होती हुई ससिकला को सीख देती हुई मां कहती है—

यदपि तू अति रूप उजागर। सुन्दर विदित भुवन गुनसागर॥
तउ हूँ तिय जगदीस बनाई। पर अधीन स्रुति सिम्रित गाई॥
कैसी हू होय सुघर वर नारी। अति रूपवती उजियारी॥
पै पति बिन गति नाहि लहत है। सासतर सिम्रित वेद कहत है॥
वहि नर तन करतार बनायो। सदा सुतंत्र सुर जग गायो॥

विवाह की सनातनी रीति और तेल मैन के समय दी जाने वाली गालियों की प्रथा भी उल्लेखनीय है।

'वेद मंत्र द्विज करत उचारा। सपत सुहागिनि जाकर धारा॥
मलत उवटनो हरख अपारी। देय परस्पर रस की गारी॥
मंगल गान विविध कल गावत। दुलहिन दूलह को उवटावत॥

इसके उपरान्त अग्नि को साक्षी कर सप्तपदी करने की प्रथा का भी अवलोकन कीजिए।

'साखी बीच अगनि भगवाना। भांवर दीन वेद विधाना॥
साखा पढ़ि द्विज परम सयाने। कुल प्रणालि का प्रगट बखाने॥
सपत पती तब दिज न कराई। वाम अंग तब कुंवरि बिठाई॥
बिद्नारी किय मंगल गाना। त्रिपत तब कीन कनिक दाना॥

स्त्रियो को शकुनों पर बड़ा विश्वास होता है भले-बुरे का आभास उन्हे अपने अंगों को फड़कने एवं किसी पशु पक्षी की विशेष चेष्टा से होने लगता है। इसका उल्लेख भी इस काव्य में मिलता है।

सूरजप्रभा ससिकला से कहती है :

आन अङ्ग सम दाहिनी ओर ते,
फरकत है अलि बढ़े भोर ते।
मग महिं म्रिगनी निरस अकेली,
पंथ चीर पुनि खरी दुहेली।
मो मुखऔर निरख आकुल भई,
भरकी लख आपन परछाही।

उतरत जब निवास पग धारयो,
छीक उठ्यो तब दई मारो।'

छंद

जहाँ तक छंदों का सम्बन्ध है हम पहले ही कह आये हैं कि कवि ने इतिवृत्तात्मक वर्णनों के लिए दोहा और चौपाई छंद आठ अर्द्धाली के बाद एक दोहे के क्रम से प्रयोग किया है और कथा के रसमिक्त स्थलों पर कवित्त और सवैयों का प्रयोग किया है। नखशिख वर्णनादि के न होने के कारण इस काव्य में अलंकारों का प्रयोग लगभग नहीं सा हुआ है।

भाषा

इसकी भाषा अवधी है किन्तु प्रति बड़ी अस्पष्ट और भ्रष्ट लिखी है इसलिए कवि की भाषा पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता।

रुक्मिणी परिणय

—रघुराज सिंह जू देव कृत।

—लिपिकाल...

—रचनाकाल सं० १९०७

कवि-परिचय

श्रीरामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' ने इनका नाम राजकुमार रघुवीर सिंह बी० ए० सीतामऊ लिखा है। इसके अतिरिक्त आपका जीवन वृत्त अज्ञात है। आप अच्छे गद्य लेखक और साहित्य सेवी कहे गए हैं। किन्तु 'रसाल' जी ने आपकी रचनाओं का कोई उल्लेख नहीं किया है।

कथा वस्तु

प्रथम खंड में रुक्मिणी परिणय की संक्षिप्त कथा का परिचय देने के उपरान्त कवि ने द्वितीय खंड से श्रीकृष्ण जी के जीवन की अनेक कथाओं का वर्णन किया है। जैसे जरासधवध, कालिवध, द्वारका बसाने की कथा, आदि कई अध्यायों में वर्णित की गई हैं। इसके बाद कवि ने सातवें अध्याय में कृष्ण और बलराम के विवाह के विषय के वार्तालाप को नारद के द्वारा उग्रसेन से कराया है। इस वार्तालाप के उपरान्त रेवती से बलराम के विवाह का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त नारद के रुक्मिणी के पिता भीमसेन के पास जा और रुक्मिणी के सामने कृष्ण के रूप और गुण के विस्तार वर्णन करने की कथा कही गई है जिसके द्वारा रुक्मिणी के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न किया गया है। नारद ने द्वारिका में जाकर रुक्मिणी के रूप का वर्णन भी कृष्ण से किया। उसे सुनकर कृष्ण के हृदय में रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। इसके बाद कथा भागवत के अधार पर ही चलती है। विवाह के उपरान्त रुक्मिणी तथा उसकी नाना सखियों के साथ कृष्ण के रास का सविस्तर वर्णन भी किया गया है।

प्रस्तुत रचना श्रीमद्भागवत के आख्यानों की काव्यबद्ध घटनाएँ ही प्रतीत होती हैं। आख्यानक काव्य में कहानी का जो लालित्य होता है वह इसमें प्राप्त नहीं होता।

---

१. देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामशंकर शुक्ल 'रसाल') पृ० ६६६।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख-वर्णन

हम पहले कह आए हैं कि प्रस्तुत रचना कई छोटे छोटे आख्यानों का एक संकलन सी है। इसलिए इसमें काव्यगुण प्रारम्भ के और मध्य के अध्यायों में नहीं प्राप्त होते। केवल रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह से सम्बन्धित और नारद द्वारा रुक्मिणी के सौन्दर्य वर्णन में काव्य सौन्दर्य परिलक्षित होता है।

रुक्मिणी के नख-शिख वर्णन में कवि ने परम्परागत उत्प्रेक्षाओं और उपमानों का भी प्रयोग किया है। जैसे रुक्मिणी के काले काले लम्बे बाल ऐसे प्रतीत होते हैं कि वे सर्प हों अथवा नील मणि के सूत हों।

'नील मनीन के सूत किधौं, किधौं पंनग पूत लसे छवि वार हैं।
रेसम स्याम समूह किधौं, कीधौं काम बटे के बटोह अपार हैं।

ऐसे ही भ्रू वर्णन भी बड़ा सुन्दर बन पड़ा है—काली-काली भौंहें चन्द्र-मुख पर ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों चन्द्रमा में दो सर्प के बच्चे खेल रहे हों अथवा कमल पर भ्रमरों की अवली सुशोभित हो रही हो।

'खेलहिं खेल ससी मैं किधौं, अति चंचल सावक द्वै इहि केरे
किधौं लसैं युग पाँति मिलिंद कि है, अरविंदन के अति नेरे।

युद्ध वर्णन में भाषा बड़ी ओजस्विनी और वीभत्स रस का चित्रण बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। युद्ध भूमि में रक्त की सरिता का रूपक अवलोकनीय है।

करि भए भीम कगार हैं बहु बाहु व्याल अपार हैं।
तुलि केस बहुत सेवार हैं कर कटे मीन कतार हैं।
कच्छप कितेकहुँ ढाल हैं गज पाय नक्र विशाल है।
मधि दीप अश्वन माल है कंकर विभूषन जाल है।
आवर्त चक्रहि के भए रथ बहहि ते नौका नए।
बहु फेन भेदहि के छुये काकहि कराकुल है गए।
वह गंध हँस समान है उठनी तरंग क्रिपान है।
यह अस्थि के पखान हैं भट काय घाट महान हैं।

भाषा के प्रवाह और अलंकार की योजना की दृष्टि से रुक्मिणी परिणय का अंश सुन्दर बन पड़ा है। अन्य अंशों में इतिवृत्तात्मकता अधिक मिलती है, काव्य कौशल कम।

नल-दमयन्ती

—नरपति व्यास कृत

रचनाकाल सं० १६८२ के पूर्व

लिपिकाल सं० १६८२

कवि-परिचय

इस के लेखक का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथा-वस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु भागवत में वर्णित कथा के अनुकूल है।

काव्य-सौंदर्य

दमयन्ती के रूप सौंदर्य वर्णन मे कवि परम्परागत उपमान, उत्प्रेक्षाएँ आदि भी प्राप्त होती है। जैसे—

'कटि मेपला कली कटिजान। भीन लंक केहरि परमान॥
महि दमयन्ती ओतरि अपार। सगुन सरूप वहन गुन भार॥
कठिन पयोहर व्यव संजोल। सम सुरङ्ग ले कुम-कुम गोल॥
कोमल बाँह जुगल में डीठ। पट नल जनु रंगे मंजीठ॥
नाभि निकट रोमावलि दीठी। भ्रमरावलि जनु कमल पइठी॥'

किन्तु इस सौंदर्य वर्णन में कवि की दृष्टि शुद्ध सात्विक है अतः वह दमयन्ती को साधारण नारी से बहुत ऊपर देवी स्वरूपिणी देखती है। दमयन्ती को साधारण मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता, उसको प्राप्त करने के लिए पूर्व जन्म के उच्च धर्म युक्त पवित्र संस्कारों की आवश्यकता है—

जिहि प्रयाग तनु छाड़्यो होई। दमयन्ती त्रिय लाभि सोइ।
तिरथ वारानसि सरतीर, निराहार तके' होई सरीर।
जिन पूजिय होय त्रिपुरारी, पावइ सो दमयन्ती नारी॥

यही नहीं वह सरस्वती स्वरूपिणी और बुद्धि दायक है। स्वयंवर मे सखियों से घिरी हुई दमयन्ती का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

वंक विलोकि रही ससि बैनी।
दमयन्तो सिख बुधि वर देनी॥

देवता तक उसे देखने के लिए लालाइत रहते थे। देवताओं को दमयन्ती के सौन्दर्य को देखकर तृति नहीं होती थी। 'वरुण' स्वयंवर में दमयन्ती को देखकर विरह से पीडित हो उठे और उन्हें इन्द्र के सहस्त्र नेत्रों से ईर्ष्या होने लगी। काश वह भी इस सौन्दर्य को सहस्त्र नेत्रों से देख सकते—

ज्युं ज्युं विरह अगनि पर जरै। वरुण विरह बड़वानल धरई।
सहस नयन देखि सुर राया। त्रिपति केन होहि रूप रस भाई।
कहँ अगनि जमु वरुणु सुवणि। हमको दुष सवायों जानि।
भागवंतु अति सुर वेराइ। सहस नयन देषि त्रिय भाई।

आगे चलकर दमयन्ती का सौन्दर्य रहस्यमय हो जाता है। जैसे कि दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए मनुष्य और देवतादि तपस्या करते रहते हैं। वह पच शब्द (अनहद नाद) से भी सुन्दर है। सारा त्रिभुवन उसी के वशीभूत है जिसके विरह में नल दुखित रहते हैं—

पंच सवद रचो सुढार। कोटि कन्या न वनी उनहार।
वचन नयन ता चलन सुरङ्ग। भीम कुंवरि सह अमृत अंग।
तास दृष्टि त्रिभुवन वसु भयो। नर ते लहरि विरहि परि गयो।

नख-शिख वर्णन में मिलने वाले रहस्यात्मक संकेत पूर्ण कथानक में प्रस्फुटित नहीं हो सकते हैं इसलिए यह काव्य लौकिक प्रेमाख्यान ही कहा जायगा।

संयोग और वियोग पक्ष

नख-शिख वर्णन के उपरान्त कवि ने घटना क्रम के क्रमिक विकास का इतिवृत्तात्मक वर्णन ही अधिकतर किया है यही कारण है कि इस काव्य में संयोग शृंगार की नाना दशाओं का वर्णन तो नितान्त शून्य है। हां वियोग-वर्णन में दमयन्ती की करुणा जनक अवस्था के कतिपय संकेत मिलते हैं जैसे हे स्वामी तुम्हारे बिना हमारे लिए यह संसार अंधकारमय है। तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकती—

'तुम विन राह अंध संसारि, तुम्ह स्वामी हम प्रान अधार।
तुम विनु हियो फाटि मरि जावुं, तो विनु यह तन दुष लहांउ।
तुम विन जन्म अकारथ जाय, तुम विनु स्वामि रहन न जाय।'

उपर्युक्त उद्धरण में पतिपरायणा सती नारी की मानसिक दशा के साथ ही साथ भारतीय नारी की अपने पति पर ही आश्रित रहने की सामाजिक व्यवस्था का चित्रण भी मिलता है।

इस करुणाजनक पुकार के उपरान्त ही कवि की दृष्टि बन में मंथर गति से चलती हुई दमयन्ती पर रुक जाती है और वह स्थिति को भूल कर दमयन्ती की मंथर गति पर शृंगारिक उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है कि क्षीण कटि और उरोजों के भार के कारण ही दमयन्ती चल नहीं पा रही है।

'जंघ कुचनि चलि सकै न नारी।
नीचे है बाधे डिठसारी।
कुच भारी भारु लंक परि खीनु।
दमयन्ती चलि सकै न दीनु।'

अजगर द्वारा दमयन्ती के आधे से अधिक 'लील' लिये जाने पर भी दया और आर्द्रता के स्थान पर कवि उस समय की भयावह स्थिति में भी दमयन्ती के सौन्दर्य पर उत्प्रेक्षा करता हुआ दिखाई पड़ता है जैसे क्या अजगर के मुख में कमल विकसित हुआ है अथवा उसके मुख में चन्द्रमा उदय हो रहा है—

के विगस्यो कमल अखंड। के उग्यो अजगरि मुख चंद।

काव्य सौन्दर्य और अलंकार की दृष्टि से ऐसे अंश चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों किन्तु परिस्थिति विशेष की पृष्ठभूमि में वे उपहासास्पद ही लगते हैं। फिर भी भाषा अलंकार, आदि की दृष्टि से यह एक सुन्दर खंड काव्य कहा जा सकता है।

अन्यापदेशिक काव्य

पुहुपावती

दुखहरन दास कृत

रचनाकाल सं० १७२६

लिपिकाल सं० २०००

कवि-परिचय

आप गाजीपुर के रहने वाले थे और मलूकदास के शिष्य थे। आप के पिता का नाम घाटम दास था। आपका असली नाम 'मन मनोहर' था किन्तु दीक्षित होने के बाद आपने अपना नाम दुखहरन दास रख लिया था आपने अपने तीन मित्रों का नाम पेमराज, वेचन और मुरलीधर बताया है जो एक ही गुरु के द्वारा दीक्षित हुए थे और सदैव आपके साथ रहते थे इसके अतिरिक्त आपका परिचय प्राप्त नहीं है। निम्नांकित पंक्तियों से उपरोक्त कथन का समर्थन होता है।

'दुखहरन कायथ तेही गाऊ। घाटम दास पिता कर नाऊ॥
तीन्हके वंस मही सुत जामा। जेहि के मन मनोहरि नामा॥
अलप वैस पोथी बुधी दीन्हा। नूतन कथा प्रेम की कीन्हा॥
तीन मित्र हम कइ माल्हा। जोरी मिताई अन्त निबाहा॥
पेमराज अती सुंदर कला। पढ़त लिखत नौ सी भला॥
वेचन राम समै गुन लोना। जैसे बारह बानक सोना॥
मुरलीधर अति चतुर विनानी। गायन बली सुरस ग्यानी॥'

दो०-'एक समे हम चारिउ एक जाती एक बरन।
पेमराज औ वेचन मुरलीधर दुखहरन॥'

× × ×

'एकै अक्षर गुरू पढावा। जेहि से वेद भेद कीछु पावा।
इह जग जस सपना कै लेखा। भोर भए फिरि कीछु नहीं देखा॥'

कथा-वस्तु

राजपुर में परजापति राजा राज करता था जो बड़ा धार्मिक और सर्व प्रिय राजा था किन्तु इसके कोई सन्तान न थी। इसलिए राजपाट छोड़कर इन्होंने 'भवानी' की बारहवर्ष कठिन साधना की। अपनी आशा पूर्ण न होते देख कर इन्होंने अन्त में अपना मस्तक भवानी पर चढ़ा दिया। राजा की मृत्यु से भवानी कांप उठी और इस मृत्यु के पाप के भय से कुठित होकर उन्होंने शिव की स्तुति की। शिव ने प्रकट होकर भवानी से सारी घटना का हाल जाना तदुपरान्त उन्होंने भवानी को अमृत दिया जिससे राजा जीवित हो उठा और भवानी ने उन्हें पुत्र लाभ का वरदान दिया। इस प्रकार कुंवर का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने कुण्डली देखकर बताया कि कुमार बड़ा यशस्वी होगा किन्तु बीस वर्ष की अवस्था में यह अपनी जन्मभूमि को तज कर दूसरे देश में चला जाएगा। और जिसके कारण यह वियोगी होकर योगी होगा उससे विवाह कर फिर लौट आएगा।

पांच वर्ष की अवस्था में कुमार पढ़ने बैठा और युवावस्था तक वह चौदहों विद्या में पण्डित हो गया। एक दिन उसने अपने पिता से दिग्विजय करने की अभिलाषा प्रकट की किन्तु पिता के अस्वीकार कर देने पर वह रूठ कर विदेश चल पड़ा। जंगलों में भटकता हुआ कुमार अनूपगढ़ पहुंचा।

अनूपगढ़ के राजा अमरसेन की पुत्री पुहुपावती यौवनावस्था के आगम से बड़ी व्याकुल रहती थी। अपना मन बहलाने के लिए सखियों की आँख बचा कर वह किसी अज्ञात प्रेरणा से खिड़की खोल कर बाहर किसी की राह देखा करती थी। एक दिन उसकी दृष्टि वाटिका में घूमते हुए कुमार पर पड़ी। कुमार के सौन्दर्य को देख कर वह आसक्त हो गई और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहने लगी।

उसी वाटिका की मालिन के घर पर कुमार रहता था। मालिन नित्य कुमारी की सेज फूलों से सजाने जाया करती थी। कुमार को देखने के उपरान्त कुमारी ने फूलों की सेज छोड़कर सखियों के साथ सोना प्रारम्भ कर दिया था। मालिन ने कुमारी से एक दिन उसके इस असाधारण व्यवहार का कारण पूछा। कुमारी ने अपनी वेदना बताई। मालिन ने लौटकर कुमार से पुहुपावती का सौन्दर्य वर्णन किया जिसे सुनकर कुमार मुग्ध हो गया। मालिन से पुहुपावती की दशा को जानकर कुमार की व्याकुलता और बढ़ी। दूती ने लौटकर कुमारी से कुमार का सौन्दर्य और उसकी विरहावस्था वर्णित की इस पर कुमारी उससे मिलने के लिए उत्कण्ठातुर हो गई। मालिन के आदेशानुसार अपनी माता से

आज्ञा लेकर पुहुपावती वाटिका में आई। दोनों ने एक दूसरे के दर्शन किए थोड़ी देर प्रेमालाप हुआ और फिर कुमारी अपने महल को लौट आई।

अम्बरसेन एक दिन आखेट खेलने के लिए चले उनके साथ नगर की सभी जनता और राव राजा भी चले। कुमार भी इन्हीं के साथ शिकार खेलने चल दिया राजा का पड़ाव पहले एक सरोवर पर पड़ा जहाँ उन्होंने सैकड़ों पक्षी मारे। जङ्गल में पहुँचकर उन्होंने बहुत से छोटे-बड़े जानवर भी मारे।

अकस्मात उसी जङ्गल में एक भयानक शेर निकला जो राजा के सैनिकों को मारने लगा सैकड़ों के मारने के बाद जब सिंह जङ्गल में जा घुसा तब राजा को बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा कि इस सिंह को बिना मारे लौटने में बड़ी हँसी होगी, शत्रु भी हमें कमजोर जानकर राज्य पर आक्रमण कर देंगे। अस्तु उसने ढिंढोरा पिटवाया कि जो भी मनुष्य इस सिंह को मारेगा उसे आधा राजपाट मिलेगा।

कुमार ने इसे सुना और राजा के पास पहुँचा। राजा ने कुमार की सौम्य मूर्ति को देखा और उससे परिचय पूछा। कुमार ने अपना वास्तविक परिचय दिया और सिंह को मारने चल दिया।

सोते हुए सिंह को जगाकर कुमार ने मार डाला। राजा ने प्रसन्न होकर कुमार को आधा राज्य देकर उसका अभिषेक किया इतने में सिंहनी प्रकट हुई और उसने कुमार को ललकारा।

कुमार के तीर से घायल होकर सिंहनी भागी और उसने उसका पीछा किया। भागते-भागते सिंहनी तीस कोस निकल गई और वह उसके पीछे ही दौड़ता चला गया अन्त में सिंहनी को मार कर लौटते समय कुमार रास्ता भूल कर भटक गया।

पुहुपावती इस समाचार को सुन कर दुखी रहने लगी। इधर कुमार को रास्ते में एक योगी मिला जो इसके पिता की ओर से उसे ढूढ़ने के लिए भेजा गया था। कुमार को बाँध कर वह राजा के यहाँ ले आया। घर में प्रसन्नता छा गई किन्तु कुमार सदैव दुखी और चिन्तित और बीमार रहने लगा। एक दिन उसके मुँह से प्रेम की बात सुनकर सबों ने उसका विवाह काशीनरेश चित्रसेन की कन्या के साथ कर दिया। किन्तु कुमार इस पर भी विरक्त रहने लगा।

पुहुपावती की दशा को देखकर मालिन 'दूती' के रूप में कुमार को खोजने के लिए चली और नाना कठिनाइयों को पार करती हुई जम्बू द्वीप पहुँची।

राजपुर में प्रवेश करने पर उसने सारी जनता को अपनी वीणा से मुग्ध कर लिया। सब उसके दर्शनों से महासुख का लाभ करते थे। राजा ने कुमार को भी उसके दर्शन के लिए भेजा। दूती ने कुमार को देख कर सारी उपस्थित जनता को संज्ञा शून्य कर दिया और कुमार को पुहुपावती का संदेश देकर उसका पत्र दिया। पत्र पढ़ते ही वह व्याकुल हो उठा और दूती के साथ वैरागी होकर निकल पड़ा।

दोनों चलते-चलते सात समुद्र पार बेगमपुर ग्राम में पहुँचे। जहाँ एक समय बेगमराय राजा का राज्य था किन्तु वह बड़ा गर्वीला था। एक दिन उसके नगर में एक दानव ने प्रवेश कर सबको खा डाला केवल राजा की पुत्री 'रंगीली' बच गई। उसके रूप के कारण दानव ने उसे नहीं मारा। यौवना होने पर रंगीली काम से पीड़ित रहने लगी। एक दिन उसने झुँझला कर देव से कहा कि पूर्व जन्म के कर्म से तुम्हे यह योनि मिली है। इस जन्म में भी तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हो मैं सदैव काम से पीड़ित रहती हूँ पता नहीं दूसरे जन्म में तुम्हारा क्या हाल होगा।

दैत्य को यह बात सुनकर ज्ञान उपजा उसने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारे अनुरूप वर खोजा करता था किन्तु कोई उपयुक्त पुरुष न होने के कारण मैं उन्हें खा जाया करता था। आज से जब तक तुम्हें सुन्दर वर न ढूँढ़ दूगा तब तक अन्न-जल न ग्रहण करूँगा। दानव उसके लिए वर खोजने को निकल पड़ा। समुद्र तट पर दूती के साथ कुमार को सोता देखा। कुमार के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर उसे 'रंगीली' के लिए उठा लाया। दोनों का विवाह हुआ। 'रंगीली' बड़ी प्रसन्न हुई किन्तु कुमार की उदासीनता का कारण पूछा। कुमार ने पुहुपावती के प्रेम की कहानी बताई। रंगीली उत्तर भी नहीं दे पाई कि दानव आ उपस्थित हुआ। कुमार ने बाँसुरी बजाई सब उस बाँसुरी से मूर्छित हो गए। जो सुबुद्ध थे उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ और रंगीली भी कुमार के साथ जोगिनी के वेश में पुहुपावती की खोज में निकल पडी।

इस प्रकार दोनों सातो द्वीपों और छः समुद्रों को पार करते हुए चले जा रहे थे। सातवें समुद्र पर एक नाविक ने उन्हें पार लगाने के लिए मुद्राएँ माँगी किन्तु लालचवश कुमार ने कहा कि हमारे पास धन नहीं है नाविक ने उन्हें चढ़ा लिया। थोड़ी दूर जाने के बाद ही एक भयंकर भँवर में पड़कर उनकी नाव टूट गई और दोनों बिछुड़ गए। और अलग-अलग किनारे से जा लगे।

रंगीली समुद्र तट पर विलाप करने लगी उधर से महादेव और पार्वती भ्रमण करने के हेतु निकले। रंगीली का विलाप सुनकर पार्वती को दया आई

और वह शंकर के साथ उसके पास पहुँची। पार्वती ने कहा कि *तुम्हारा* प्रियतम अभी तुम्हें नहीं मिलेगा इसी जंगल में चर्तुभुजदेव की पूजा करो कुछ दिनों के उपरान्त तुम्हारा प्रियतम तुम्हें वहीं मिल जाएगा। रंगीली चर्तुभुज की पूजा में संलग्न हो गई।

इधर कुंवर को अपने झूठ पर बड़ा पछतावा हुआ और वह विलाप करने लगा। उसने दूती ओर पुहुपावती का स्मरण किया फिर जङ्गलों में भटकता हुआ 'धरमपुर' पहुँचा। किन्तु द्वारपालों ने उसे नगर के बाहर नहीं जाने दिया। उन्होंने कहा कि इस नगर के चार दरवाजे हैं कोई इनमें से उस समय तक बाहर नहीं जा सकता जब तक उसके साथ कोई दूसरा साथी न हो। कुमार को बड़ी चिन्ता होने लगी। उसी नगर में दूती भी कुमार की खोज में पहुँच गई थी। एक ने दूसरे को पहचाना और फिर साथ उस नगर से बाहर हो गए।

पुहुपावती के पिता ने इधर उसके स्वयम्वर की घोषणा कर दी थी। स्वयंवर के दिन तक दूती कुमार को लेकर नहीं लौटी थी, इसलिए वह आत्महत्या करने जा रही थी कि दूती ने उसके पास पहुँचकर कुमार के आने की बात कही।

योगी के वेश में कुमार स्वयम्वर में पहुँचा और पुहुपावती ने उसके गले में जयमाला डाल दी। दोनों का विवाह हुआ आर वे रागरङ्ग में मस्त रहने लगे।

कुंवर की प्रथम पत्नी रूपवती पूर्ण यौवना होने के उपरान्त कुमार के विरह में रोया करती थी। उसने एक मैना पाल रखी थी। मैना ने एक दिन कुमारी की वेदना का हाल पूछा। कुमारी ने पति के द्वारा त्यक्त होने का हाल बताया और बताया कि वह पुहुपावती की खोज मे चले गए हैं। मैना कुमार को खोज मे निकल पड़ी। ढूंढते ढूंढते वह पुहुपावती के पास पहुँची उस समय पति-पत्नी रमण कर रहे थे। मैना को देखकर कुमार ने पुहुपावती से उसके काले होने का कारण पूछा, किन्तु यथोचित उत्तर न पाकर उन्होंने उस मैना से प्रश्न किया। मैना ने रूपवती का सारा हाल कह सुनाया और बताया कि उसी के वियोग से मैं काली हो गई हूँ। कुमार को अपने बन्धु-बान्धवो का ध्यान आया और वह पुहुपावती को लेकर ससैन्य अपने देश की ओर चल पड़े।

कुमार की सेना उज्जैन नगर पहुँची जहाँ *'रीठग बर' राज्य करता था।* पुहुपावती के साथ कुमार को आया जानकर स्वयंवर में हुए अपमान का

पड़ा'। संकट में पड़े हुए रत्नसेन को महादेव पार्वती ने सहायता दी थी तो पुहुपावती में भी "रंगीली" और कुमार को सामुद्रिक दुर्घटना के उपरान्त महादेव पार्वती ने आशीर्वाद दिया और उनकी कार्यसिद्धि के लिए मार्ग बता कर सहायता की।

जिस प्रकार नागमती का संदेश लेकर एक पक्षी सिंह द्वीप गया था और उससे नागमती की दशा को सुन कर रत्नसेन ने घर लौटने की तैयारी की उसी प्रकार रूपवती का संदेश लेकर "मैना" कुमार के पास पहुँची और उससे रूपवती का हाल सुन कर कुमार ने भी घर की ओर मुख किया।

अस्तु उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस रचना के कथानक की घटनाओं के संविधान में हमें "पद्मावत" की स्पष्ट छाया मिलती है। यह अवश्य है कि पद्मावत की तरह यह काव्य दुखान्त न हो कर सुखान्त है।

कथानक के अतिरिक्त इसकी रचना भी मसनवी शैली में हुई है। कवि ने प्रारम्भ में निराकार एक की स्तुति के उपरान्त, शिव, काली और

होइ खुसी मन लक्ष्यो पाए, अतीत सम लागे तेही भाए।
दंपति ज्ञान जहाज चढ़ि, उतरि महो दधि पार।
जनु पावौ पर जातरं, उबरा प्रान पिआर।
सुरा समुद पुनि राजा आवा, महुआ मद छाता दिखरावा।
जो तेहि पियै सो भावरि लेई, सीस फिरै पथ पैगु न देई।
पेम सुरा जेहि के हिय माहाँ, किन बैठे महुआ के छाहा।

'पद्मावत'

१. "दंपति रतन जतन से राखी। सेत दीप आए अभिलाषी॥
सात कोटि जोजन बिस्तारा। जहा कलि माह वउध औतारा॥
सो सम नाघि कै देस गभीरा। आए सतए समुद्र तीरा॥
जहां होइ एक बोहित छोटा। केवट ताकर गरभी खोटा॥
तेही को तगि गए पुरुख ओ नारी। रतन छपाए भेख भिखारी॥
कहेन्हि बेगि दै हम कह पार उतारि जौ देहु॥
बडा पुन्य होइ तुम्ह, कह जागत भाइ जस लेहु॥
केवट भेष भिखारिन चीन्हा, । बोहित निकट आइ कै कीन्हा॥
कहेसि बेगि जावहु पारा। देहु दान कीछु अरु हमारा॥
बिना दान नहिं पार उतारौ। राजा रंक नहीं ए बीचारौ॥

"पुहुपावती"

गणेश की वन्दना की है। फिर गुरु के प्रति श्रद्धांजलि देने के उपरान्त उसने तत्कालीन शाहेवक्त औरङ्गजेब की वन्दना की है और फिर अपना परिचय दिया है[१]।

जिस प्रकार सूफी कवि चार मित्रों के नाम गिनाया करते थे उसी प्रकार इस कवि ने भी अपने चार मित्रों के नाम लिए हैं।

'चारि मीत जस चारिउ भाई। एक से एक भए अधिकाई।।
चारिउ जुग जस चारिउ वेस। जल रज पवन अगिनि कर देस।।'

उपर्युक्त वन्दनाओं और परिचय के बाद कवि ने इस काव्य के दार्शनिक पक्ष पर अपने विचार प्रकट किए हैं। उसका कहना है कि प्रस्तुत रचना

---

१. प्रथमहिं सुमिरौं राम का नाऊं। अलख रूप व्यापक सब ठाऊं ॥
घट घट महं रहा मिलि सोई। अस वह जोति न देखै कोई ॥
ससि सुरज दीपक गन तारा। इन्हकी जोति जगत उजियारा ॥
जगत जोती देखी पहिचानी। वह सो जोती जग रहे छपानी ॥
दो०—निसदिन बन्दौ राम पद, तुम अनादि करतार।
माली आदी तुही भंवर, फुलवारी ससार।

× × ×

'अब संकर को चरन मनावौ, जिनकी कृपा ग्यान दृढ़ पावौ।
तिन्ह सर और देव नहीं दूजा, ब्रह्मादिक मिल शिव कंह पूजा।

× × ×

'आदि सकति देवी कल्यानी, आदि कुमारि आदि भवानी।
अम्ली सी कंठ नेवासी, हिंगु लाग माया सुख रासी।

× × ×

'नाउ मलूकदास गुरु केरा। जिन्हकी सरन भए हम चेरा ॥
जग कर लोग करै सब काई। देखत दरस पाय भ्रम जाई ॥
उंचा जैमन मैसा कै आवै। सो तुरन्त मनसा सो पावै ॥
तीन्ह के श्रवन शब्द उन्ह दीआ। उपजा ज्ञान विमल भा हीआ ॥
इह ससार असार कै जाना। राम नाम सुमिरन मन माना ॥

× × ×

दिली साह सराहौं काहा। नौरंगजेब पैरवी माहा ॥
नौखण्ड मह फिरी दोहाई। रविहुते तेज तपै अधिकाई ॥

आत्मा को जागरूक रखने और लोगो को ज्ञान देने के लिए की गई है। इसके अतिरिक्त उसका यह भी कहना है कि प्रस्तुत रचना प्रत्येक पाठक को उसकी भावना के अनुसार लगेगी। चाहे वह निर्गुण का पुजारी हो चाहे सगुण का। कबीर तथा अन्य निर्गुणियों कवियों की तरह दुखहरन निर्गुण और सगुण के खण्डन-मण्डन में नहीं पड़े हैं। वह केवल ईश्वर भक्ति में ही विश्वास रखते हैं। कवि की यह भावना प्रारम्भ की स्तुतियों से भी स्पष्ट है। जहाँ इस काव्य का प्रारम्भ निराकार राम की उपासना से होता है वहीं शिवशक्ति और गणेश की वन्दना भी मिलती है। इसी प्रकार कवि को न शाक्तों से वैर है न शैवों से और न पुराणों में विश्वास रखने वाले मनुष्यों से ही।

कहने का तात्पर्य यह है कि पुहुपावती सूफी भावधारा से प्रभावित और उनके साधना पक्ष से अनुप्राणित एक अन्योक्ति परक काव्य है।

प्रबन्ध कल्पना और सम्बन्ध निर्वाह

'पुहुपावती' के कथानक से यह स्पष्ट है कि घटनाओं को आदर्श परिणाम पर पहुँचने का लक्ष्य कवि को अभिप्रेत है। कर्मों के लौकिक शुभाशुभ परिणाम दिखाना भी कवि का उद्देश्य जान पड़ता है यही कारण है कि उसने कथानक के अन्त मे धर्मराज द्वारा कुमार की परीक्षा कराई है। दान न देने के कारण ही कुमार के साथ समुद्र की दुर्घटना हुई थी, 'रंगीली' 'राक्षस' से कहती है कि पूर्व जन्म के कुकर्मों के कारण तुम्हें राक्षस योनि मिली है अब भी तुम नहीं सम्हलते, पता नहीं अगले जन्म मे तुम्हारा क्या हाल होगा।

प्रबन्ध काव्य में मानव-जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है उसमे घटनाओं की सम्बद्ध शृङ्खला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ-साथ

---

१. 'समत सत्रह सै छत्तीसा। हुत सन सहस दुइ चालीसा ॥
कहेउ कथा तब जस मोहि ग्याना। कोइ सुनि रोवल कोइ हसाना ॥
जेहि जस बूझी तेस तेइ बूझा। जेही जस सूझी तेस तेही सूझा ॥
बहुतन्ह के मन सरगुन आवा। बहुतन्ह निरगुन पटतर लावा ॥
बहुतन्ह सुनि कै हीअ मह राखा। बहुतन्ह सुनी कै दोसन भाखा ॥
मोही जस ग्यान रही हीआ माही। कहेउ सबै कीछु छाड़े नाहीं ॥
जागहि खेलत जुआ जुआरी। जागहि रसिक पुरुष औ नारी ॥
जागै कारन मैं चित जानी। हिअ उपजाइ प्रेम कहानी ॥'
दो० इह जग रैनि अँधीरी है, जागै कौन उपाइ।
तब इह रचनी मन रची, कहत सुनत नीसु जाइ ॥'

हृदय को स्पर्श करने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। पुहुपावती में ऐसे स्थल बहुत से हैं जैसे 'रंगीली और रूपवती का विरह, प्रेम मार्ग क कष्ट, पुहुपावती और कुमार का संयोग और वियोग वर्णन, रूपवती का संदेश पाकर कुमार की स्वाभाविक प्रणय-स्मृति आदि।

दुःखहरन का सम्बन्ध निर्वाह अच्छा है। एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की श्रृङ्खला बराबर लगी हुई है। उदाहरण के लिए 'मैना' के द्वारा कवि ने 'रूपवती' और 'रंगीली' को कुमार से मिलाया है। ऐसे ही शेरनी के पीछे भागने के कारण ही कुमार और पुहुपावती का वियोग हुआ तथा दूती के साथ लौटते समय 'रंगीली' से मिलने की घटना घटी। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काव्य की सारी प्रासंगिक घटनाएँ आधिकारिक कथा से सम्बन्धित हैं साथ ही कवि ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि किसी भी घटना का आवश्यकता से अधिक विस्तार न किया जाय। 'बेगमपुर' के राक्षस का ही वर्णन-वृत्तांत लीजिए कवि ने उसके रहन-सहन आदि का वर्णन उसकी क्रूर प्रकृति को दिखाने के लिए किया है। लेकिन कुमार को रंगीली के लिए ले आने के उपरान्त उसका विवरण आगे नहीं मिलता वरन् कवि रङ्गीली और कुमार के प्रेम का वर्णन प्रारम्भ कर देता है, चर्तुभुजदेव की मूर्ति के आगे रङ्गीली द्वारा हंस के पकड़े जाने की घटना कुमार और रंगीली के पुनः मिलन का कारण बनती है।

प्रबन्ध निपुणता यही है कि जिस घटना का सन्निवेश हो वह ऐसी हो कि कार्य से दूर या निकट का सम्बन्ध रखती हो और नए नए विशद भावों की व्यञ्जना का अवसर भी देती हो।

कार्यान्विय की दृष्टि से हम पुहुपावती की कथा को आरम्भ मध्य और अन्त तीन भागों में बाँट सकते हैं।

कुमार के जन्म से लेकर आखेट की घटना तक कथा का आरम्भ, आखेट से लेकर समुद्र विषयक घटना तक कथा का मध्य और समुद्र विषयक घटना के उपरान्त दूती के पुनः मिलन से लेकर धर्मराज की परीक्षा तक कथा का अन्त कहा जा सकता है।

आदि अन्त की सब घटनाएं मध्य अर्थात् पुहुपावती के प्रेम की अनन्यता की ओर उन्मुख हैं और दूती के पुनः मिलन से कथा का प्रवाह 'कार्य' 'पुहुपावती और रंगीली के विवाह तथा रूपवती के मिलन' की ओर उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत रचना 'कार्यान्वय' की कसौटी पर भी खरी उतरती है।

सम्बन्ध निर्वाह के अन्तर्गत ही गति के विराम पर भी विचार कर लेना

चाहिए। पुहुपावती में कथा की गति के बीच बीच, संयोग वियोग नखशिख वर्णनादि के जो वृत्तान्त आए हैं वह गति के विराम कहे जा सकते हैं इनके संयो-जन से काव्य में मार्मिक परिस्थिति के चित्रण के साथ साथ कवि सारे प्रबन्ध में रसात्मकता लाने में भी बड़ा सफल हुआ है।

अस्तु सम्बन्ध निर्वाह और मार्मिक परिस्थितियों की रसात्मक अभिव्यञ्जना में कवि बड़ा सफल हुआ है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख वर्णन

कुमार और पुहुपावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन पूरे एक खण्ड में मिलता है। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि कवि ने जहाँ एक ओर परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है वहीं दूसरी ओर जायसी की तरह उन्होंने रहस्या-त्मक संकेत भी किए हैं।

मस्तक की आभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पुहुपावती का ललाट दुइज के चन्द्रमा के समान था। दूसरे ही क्षण वह कह उठता है कि सूर्य चन्द्रमा भी उसकी आभा की बराबरी नहीं कर सकते, वरन् चन्द्रमा तो उसकी सुषमा को देखकर दिन दिन क्षीण होता जाता है, उसने इसीलिये शंकर से स्नेह किया। फिर भी उसके ललाट की समता न कर सका।

> बरनौ भाल रूप ससि रेखा। सरद समै जस दुइजी रेखा॥
> दुइजी जोति कहै कहँ योती। सरवर करै न सुरज जोती॥
> पुनि चंद सो देखि लिलाटा। दिन दिन ते आपन तन काटा॥
> महादेव सन् कीन्हेसि नेहा। मकु लिलाट सम पावों देहा॥
> तबहु न जोति लिलाट पै आई। अपने तन की जोति गँवाई॥

माग के वर्णन में कवि पर विदेशी प्रभाव पड़ा है। फारसी प्रभाव के कारण उसने माग की स्वाभाविक अरुणिमा पर उत्प्रेक्षा करते हुए उसे रुधिर से डूबी हुई खंग की धार से उपमा दी है। भारतीय दृष्टिकोण से ऐसी उपमा जुगुप्सा मूलक है। 'संगे दिल माशूक' की भावना के अनुसार फारसी में ऐसी उपमाएँ बड़ी प्रचलित हैं।

"बरनौ मांग खरग अस नागी। मनहु रुधिर भरी है सांगी॥"

किन्तु इसी अंश की अन्तिम पंक्ति बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। कवि कहता है कि यह माग की अरुणिमा नहीं है, वरन् ऐसा प्रतीत होता है मानों काली नागिन के फन पर बीर बहूटियाँ एक पंक्ति में बैठी हैं।

'के जनु फन पर बीर बहूटी। एक भांति बैठी जनु जूटी॥'

इसी प्रकार कुचों के बीच वक्षस्थल पर पड़ी हुई हल्की श्याम रोमावलि को देखकर कवि की कल्पना जागरूक हो उठी है और वह कह उठता है कि मानो दो राजाओं ने आपस में झगड़ा किया है। इसलिए उनके बीच विधि ने बँटवारे की एक रेखा खींच दी है जिसके कारण दोनों अपने-अपने क्षेत्र में शान्तिपूर्वक राज्य कर रहे हैं।

'तेहि मधे रोमावलि कारी। खरगधार मसि लाइ संवारी॥
के दोउ कुच नृप झगरा कीन्हा। तब विधि लीकि खांचि कै दीन्हा॥
आधा आध पावों तिन्ह अंसा। तब दोउ राजही जस हंसा॥

उंगलियों के वर्णन में उनकी कोमलता के साथ हमें उनके प्रति रहस्यात्मक उक्ति का भी परिचय प्राप्त होता है।

अंगुरी पतरी छीमी ऐसी। मेंहदी लाइ लाली ते सानी॥
नख चमकहि जस मानिक मोती। मुख देखइ जस निर्मल जोती॥
तेही माथे मह सभ के लिखा वनाइ।
जो अछर काहु से केसेहु मेटि न जाइ॥

पुहुपावती के अतिरिक्त अन्य दोनों नायिकाओं का सौन्दर्य वर्णन कवि ने नहीं किया है। इसके स्थान पर कुमार का नख-शिख वर्णन दूती के द्वारा सविस्तर कराया गया है। किन्तु कुमार के सौन्दर्य वर्णन में 'रहस्यात्मक' उक्तिया पुहुपावती के नखशिख वर्णन से अधिक स्पष्ट और विस्तृत रूप में मिलती हैं। जैसे सारा संसार सूर्य और चन्द्रमा सब कुमार की ज्योति से ही ज्योतिमय हैं। वह सूर्य के समान है और संसार में जो कुछ भी है वह सब उसकी धूप के समान है। इस अंश में भारतीय दर्शन के बिम्बप्रतिबिम्बवाद *की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। जैसे :—*

प्रथमहि कच कोमरि औ कारी। चोर सेस अली तेही पर वारी॥
दान वे कोट मेघ की घटा। जस सिव के सीर सोह जटा॥

× × ×

'वरनत भाल रूप मन लोभा। ससि रवि पावो जेहि ते सोभा॥
और जहाँ लगि जग मह रचा। वह सुरज सम वोहि की धूपा॥

इसी प्रकार नेत्रों की उपमा जहाँ वह खंजन, मीन और मृग से देता है, वहीं पुतलियों पर की गई उसकी उत्प्रेक्षा शंकर के 'शून्य' वाद की ओर संकेत करती है।

'सुन्य माह है पुतली पुतली मह वह जोति॥
जोती माह सो जोति है जेहि विनु जोति न होति॥'

हृदय में ही सीमित परम प्रकाश अथवा ऋग्वेद में आए हुए ईश्वर के अनेक नामों में 'हिरण्यगर्भः' या कुमार प्रतीक है। जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक का अधिष्ठान है, इससे ईश्वर को 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं (सन्ध्योपासनम् पृष्ठ २३) नासिका का वर्णन परम्परा के अनुसार ही है। जैसे उसकी नाक तोते की चोंच के समान है।

नासिका उपमा देउ केहि जोरा। सुआ खरग दुइ दुऔ कठोरा॥
औ पुनि वह पंछी वह लोहा। वह तो अद्भुत जेहि जग मोहा॥

किन्तु अधरों के सौन्दर्य वर्णन में वही रहस्यात्मक संकेत प्राप्त होता है।

'अधर मधुर अति छीन सुरंगा। निरखत लजित होइ अनंगा॥
जहाँ लगि जगह माह अरुनाई। सबन्ह वहि रंग लालीपाई॥
पान खात मुख पीक जो चुई। तेहिते बीर बहूटी हुई॥
सोइ रदन बदन तुअ लाभा। लौके बिजुली तेहि के आभा॥'

'सबन्ह वही रंग लाली पाई' में कबीर की 'लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल' वाली उक्ति की जहाँ छाया है वहाँ 'लौ के बिजुली तेहि के आभा' में जायसी की 'हँसत जो देखा हंस भा निर्मल नीर सरीर' की प्रतिच्छाया मिलती है। जायसी ने 'नागमती' के रक्त से बीरबहूटियाँ उत्पन्न की हैं तो इन्होंने कुमार की पान की पीक की लाली से। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जायसी की उक्ति इनसे सुन्दर है। कवि इसी प्रकार कुमार के कपोलों पर के श्रमकणों को गंगा-जल की उपमा से विभूषित करता है।

चाउर अछत दसन सोहाई। चंदन खोरि कपोल बनाई॥
तेहि पर स्रमजल कैस सोहावा। जनु गंग जल से नहवावा॥'

यही नहीं कुमार की ग्रीवा पर पड़ी हुई तीन रेखाएँ उसे एक ओर 'ओम्' की याद दिलाती हैं तो दूसरी ओर कपोलों पर दाढ़ी की श्यामता और 'भीगती' मूँछें उसे वेदों की ऋचाएँ जान पड़ती हैं।

'दुऔ स्रवन लेह सोहैं दाढ़ी। रेख उठत भीजत मसि गाढ़ी॥
जस मयंक मंह स्याम कलंका। के विधि लिखा वेद के अंका॥'

× × ×

'तीन रेख जेहि कंठ निहारी। भुली हरी हरि ब्रह्म बिचारी॥
परगट संसार माह सो देखहु। तीनिहु रेख सो' ॐ 'करि लेखहु॥
उपजा आदि सो अछर मूला। जेहि मह कंवल सोरह दल फूला॥

हृदय से लेकर नाभि तक हठयोगियों के अष्टकमल दलों का वर्णन मिलता है—

'मान सरोवर सोहै छाती। जोती हार हंस की पाती॥
ग्रीव कुच भौरी राजहि कैसन। चक्र भंवर छवि जल मह जैसन॥
हिए धुक्र धुकी मन कस देखी। जस रवि स्याम गगन मंह पेखी॥
तेहि के मध्य कंवल एक फूला। दल द्वादस मधुकर मन भूला॥
कै दल द्वादस बारह कला। अर्द्ध उर्द्ध गति धारै भला॥

× × ×

'तेहि परि तीन रेखा जो देखा। तीनिउ लोका'वोदर मह देखा॥
मही ग्रीतु लोक नीक पतारा। ऊपर सरग जहां उजिआरा॥
नाभि सुन्य वोहि मधे तेहि मह कौल एक फूला॥
जेहि के जल मह ब्रह्म खोजत हारे मूल॥

उपर्युक्त पंक्तियों में मणिपूरक;-अनाहत और विशुद्ध कमलों का वर्णन स्पष्ट हठयोगियों के अनुसार मिलता है। चरणों की उपमा कवि ने नारायण के चरणों से दी है।

'जवन चरन सनकादिक धोवा। जो जल जटा माह शिव गोवा॥
जो पग परसी अहल्या नारी। चढि बेवानु बैकुण्ठ सिधारी॥
जो पग केवट अधम पखारा। तरा सौ आपु सहित परवारा॥
बलि के पीठ धरत सो पाउ। गए पताल अमर होइ राउ॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुमार का नखशिख-वर्णन उसके 'बाह्य' सौन्दर्य की अभिव्यक्ति न कर उसके 'ब्रह्मत्व' की स्थापना करता है। दूती के द्वारा इस प्रकार कवि ने पुहपावती को ज्ञान की दीक्षा दिलवाई है।

सयोग-शृङ्गार

तीन नायिकाओं के होने के कारण सयोग-शृंगार के विस्तार का बड़ा क्षेत्र था किन्तु सूफी भावना के 'वस्ल' का प्रतिपादन करने ओर नाना कष्टों को सहने के उपरान्त नायक और नायिका के प्रथम मिलन का ही चित्र कवि ने अंकित किया है। गार्हस्थ्य जीवन के बीच रहते हुए पति पत्नी का जो प्रेममय व्यवहार होता है उसके चित्र कथानक के अन्त में भी देखने को नहीं मिलते। यह सयोग शृङ्गार केवल 'भोग' प्रधान ही है।

पुहुपावती के प्रथम समागम में तो हावों का थोड़ा बहुत सयोजन मिलता है, स्त्री की सहज स्वाभाविक लज्जा के चित्र भी मिलते हैं किन्तु अन्य दोनों नायिकाओं की रति का सीधा वर्णन प्राप्त होता है जो जायसी के वर्णन से कुछ आगे ही है तथा कहीं-कहीं मर्यादा का उल्लंघन कर गया है।

पुहुपावती की सखियाँ बरबस समझा-बुझाकर उसे चित्रसारी तक ले आईं किन्तु कुमारी का हृदय धड़कता था और प्रेम तथा डर के बीच झूला झूलती हुई वह कभी दो पग आगे बढ़ती तो कभी खड़ी हो जाती थी।

चलै परग दुइ पुनि होइ खड़ी। पीय डर हीयें धकधकी पड़ी॥
पूछै मुख नहि आवै बैना। भए सजल जल दुनौ नैना॥'

इस अंश में भय और व्याकुलता का कितना सजीव चित्रण है। मारे लज्जा और भय के तथा एक अपरिचित को उतने निकट पाकर कोई भी भारतीय नारी सिवाए सकुच कर एक ओर दुबक जाने के और कुछ कर ही नहीं सकती।

'पुहुपावती जीव चिंता बाढी। बैठि पिछौरे घूँघुट काढ़ी॥
हँसि कै कुँवर बात तब भाखा। अब कस कपट ओट कै राखा॥'

'बैठि पिछौरे घूँघुट काढ़ी' में शुद्ध गार्हस्थ्य जीवन की झाँकी मिलती है। आज भी गाँवों में स्टेशनों पर नव विवाहित वधू के बैठने की मुद्रा को देख कर कोई भी मनुष्य इस उक्ति की मार्मिकता का अनुभव कर सकता है।

कुमार के छेड़ने पर दोनों में वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। इस वार्तालाप में 'रहस्यात्मक' पहेलियों के बुझाने की परम्परा का पालन कवि ने किया है। इन पहेलियों के ठीक-ठीक बूझ लेने पर पुहुपावती ने समर्पण किया।

'अब मैं हारी पीय तुम्ह जीता। भा सब अङ्ग तुम्हारे नीता॥
देखत नैन नैनि मिली गैऊ। दुइ तन मह एक मन भैऊ॥'

इसके बाद कवि ने सम्भोग शृंगार का अनावृत वर्णन किया है जो सर्वथा मर्यादा का उल्लंघन करता है। 'सुरतान्त' में शृंगार की अस्त व्यस्तता का चित्रण न कर कवि ने पति पत्नी के सहज प्रेम की अनुभूति को और भी तीव्र रूप देने के लिए पुहुपावती से पुरुष की कठोरता पर हलका सा व्यंग्य कराया है जो रस की अनुभूति में सहायक ही नहीं वरन् हृदय के कोमलतम तारों को स्पर्श करने वाला है।

'तब बोली पुहुपावति रानी। मुसुकिआइ अम्रित सुख बानी॥
ये पिय तुम्ह निपट निरदई। अब काहे कीन्हा निठरई॥
ऐसन करा जो हाल हमारी। जानु हम बैरिनि तुम्हारी॥
सासति कै सब साज नसावा। जनु हम कहु तोरि चोरावा॥'

इस अंश में नव-विवाहिता पत्नी की मीठी चुटकी के साथ प्रेम को उद्दीप्त करने की भावना भी सन्निहित दिखाई पड़ती है। उस व्यंग्य से कुमार उसे फिर अपने आक्रोड में बद्ध कर लेता है और उलहने का उत्तर उलहने से ही

देता है। दोनों के इस वार्तालाप में प्रेम के गाम्भीर्य के साथ ही साथ मनुहार की भी सुन्दर अभिव्यञ्जना दिखाई पड़ती है।

'फिरि कै कुँअर नारी उर लाई। एकर उत्तर दीन्ह मुसकाई॥
जो नारही तौ बैरनी मोरी। काहे लीन्हें मन चित चोरी॥
प्रेम फांस माला गरनाई। अब पुनि कटक जोरि तु आई॥'

दोनों के एकाकार हो जाने पर कवि की उत्प्रेक्षा सुन्दर होते हुए जहां उसमें एक ओर सूफियों की 'बका' की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है वहाँ दूसरी ओर उसमें प्रकृति तथा पुरुष के प्रतीक शिव और पार्वती का सम्मिलन दिखा कर कवि ने इसे रहस्यात्मकता को भारतीयता के गहरे रंग में रंग दिया है।

'आधा कंचन पारस आधा। कुँअर श्याम पुहुपावति राधा॥
कै जनु सीव सोए कै लासा। गिरिजा कबहु न छोड़े पासा॥'

रंगीली के संयोग शृङ्गार में हावों का कोई संयोजन नहीं दिखाई पड़ता न किसी स्थान पर मार्मिक वार्तालाप ही कराया गया है। उसके समुद्र तट पर मिलने के उपरान्त ही कवि ने रति का वर्णन कर उसे कुमार के साथ उज्जैन पहुँचवा दिया है। कथा की गति में 'रंगीली' की रति केवल लौकिकता से ही पूर्ण है और कामातुरता का ही दिग्दर्शन कराती है, सात्विकता का नहीं।

रूपवती के मिलन में कवि ने लज्जा, सकुच, भय, मान के साथ-साथ किलकिंचित और कुट्टमित तथा बिब्बोक हाव का संयोजन किया है।

'तब रूपवन्ती सीस नवाइ। घूँघट काढ़ि कै रही लजाइ॥
प्रथम समागम कै डर डरी। अङ्ग-अङ्ग छुटी थर थरी॥
राजकुमार धरी तब बांहा। झीझीक कहेसि मत छुवो नाहा॥
तुम बालम निरदई निछोही। कै बिआह औ डेरे मोही॥
जद फनींद कैचुरि तजि जाइ। तसु तुम कंत हमहि बिसराइ॥
इह कहि पाव गहे जब चाही। बनिगा दाव कुँअर कर माही॥
दूनो जांघ पर जांघ चढ़ाई। हाथ पकरि लीन्हा उर लाई॥'

विप्रलंभ शृङ्गार

प्रेम की पीरसे परिपूरित इस काव्य में वियोग की नाना अन्तर्दशाओं का वर्णन परम्परा के अनुसार चतुरमासा आदि में प्राप्त होता है। जायसी की तरह विरहावस्था के वर्णन में रहस्यात्मक उक्तियां भी प्रस्तुत ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर मिलती हैं।

पुहुपावती यौवनावस्था के प्राप्त करते ही किसी अज्ञात प्रियतम के विरह

में झुलसा करती थी। सुख-सम्पत्ति के सभी साधनों के होते हुए भी वह आकुल-व्याकुल रहा करती थी।

'नाह बिना कीछु लागु न नीका। अम्रीत भोजन सो सब फीका॥
चित्त मह बिरह प्रेम अधिकाना। चाहै आपन कंत सुजाना॥
भूषन चीर हार उर चोली। बरै आगि लागि जनु होली॥
परम पीर पुहुपावती भेद न जानै कोइ॥
भाके खोल न रोसा तब कीछु सुख होइ॥'

उपर्युक्त अंश में प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति उसकी पीड़ा तथा आत्मा के सांसारिक वातावरण में रहते हुए भी किसी अज्ञात प्रियतम की लालसा का सूफियों की परम्परा में वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार का वर्णन जायसी ने पद्मावती के सम्बन्ध में भी किया है। पद्मावती रत्नसेन का परिचय प्राप्त करने के पूर्व अपनी सखी से उपयुक्त वर ढूँढने की प्रार्थना करती है।

वाटिका में घूमते हुए कुमार को देख कर पुहुपावती की यह आन्तरिक ज्वाला और भी भभक उठी और वह तुरन्त ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर आ रही। सखियों के पूछने पर उसने केवल डर जाने का बहाना किया किन्तु उसी दिन से उसे प्रियतम के बिना सेज साँपिनि के समान और सखियाँ डाइन के समान प्रतीत होने लगीं।

'बिरह दगध सें जरै अटारी। सेज भई जस सांपिनि कारी॥
काम तेज सुधि बुधि सभ गई। सखी सभै जनु डाइन भई॥
प्रान जाइ प्रीतम संग बसा। बिरह भुअङ्ग अङ्ग-अङ्ग डसा॥

शरीर का सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया। विरह में जलती हुई कुमारी अपने रूप की छाया मात्र रह गई।

'कुंद बदन अरुन तन गोरा। भयो पीत जनु हरदी चभोरा॥
सीस केस चाहै डस नागा। ससि मुख बिरह राहु सम लागा॥
भ्रुकुटि धनुष बरुनि सम सोभा। सोइ उलटि सुर लीन्हहि असोभा॥

कुमार के खो जाने के बाद तो कुमारी की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई। संसार की सारी वस्तुएँ उसे दुखदाई हो गईं। वह नित्य प्रति अपने प्रियतम के ध्यान में योगिनी की भाँति समाधिस्थ रहती थी और एक दिन तो उसकी मृत्यु भी हो गई।

'मिलि जन चारि लीन्ह कै खाटी। लेइ चले गति देवे माटी॥
चलत खाट अली सिर भुइ मारहिं। चेरी रोइ बसन तन फारहिं॥'

वियोगावस्था में दशम् अवस्था का वर्णन कर कवि ने सूफियो की 'फना' का संकेत किया है।

इसके बाद कवि ने दूती के द्वारा उसे पुनः जीवित कराकर विरह की तीव्रानुभूति को कवि ने 'पातीखण्ड' में पूर्णरूप से प्रस्फुटित किया है। नागमती की तरह बन-बन में पुहुपावती को भटकाने का अवकाश कवि को नहीं था। इसीलिए दूती के द्वारा प्रेषित पत्र का सहारा लेकर पुहुपावती की मनोदशा का अंकन करना कवि को अधिक सुलभ जँचा। वह पत्र बड़ा सुन्दर और मर्मस्पर्शी है।

प्रिय के बिछोह में उसकी स्मृतियों से परिपूरित भवन ज्वाला का एक पुंज मात्र प्रतीत होता है जिससे अवरुद्ध नायिका प्रतिक्षण प्रतिपल झुलसती रहती है।

कंत के गवन मोहि भवन लागो विरह दवन
आगी चहुँ दिस तें धाई है।
कोकिला केकु सुनि लूक हिए लागत है
कीन्ही कहा मुकता ते द्वारे बीसराई है।
नैनन्ह के नीर से सरीर चीर भीजि गइ
विना दुखहरन जी पीर महा पाई है।
चात्रिक की बोली तन गोली सी लागत मोहि
चोली उर जरत मानो होली उर लाई है।

विरह मे प्रज्वलित काम से पीड़ित पुहुपावती के लिए प्रियतम का स्मरण ही इसके लिए हारिल की लकड़ी बन गया है। कोई केवल उनसे जाकर इतना संदेश कह देता कि विरहिणी ने अपने शरीर रूपी अंगीठी मे काम की अग्नि जला रखी है जिस पर स्त्री अपने हाड़ और मास को जला रही है और जाड़े में ठंढी सेज पर अपने को वह उसी विरहाग्नि के द्वारा उष्णता प्रदान कर रही है। वह नित्य उसी के ध्यान में ही मग्न रहती है।

'अंग की अंगेठी मांहि अगिनि अनंग बारि।
लागी तपै नारि हाड़ कोइला हिए रहत बुझाइ कै।
नेह की निहाली में बेहाली दुखहरन विन।
कंपत करेज सेज जाड़न्ह जुड़ाइ के।
भागन्ह जौ मिलि जाहु कहै प्रान पिआरे तै।
तुम्ह हरील की लकड़ी के राखौ हिअ लाइ के।'

संयोगिनी नारियाँ चाँदनी रात मे सुख का अनुभव करती हैं। दीवाली में

वह प्रिय के साथ जुआ खेलती हँसती-बोलती तथा आनन्द मनाती है किन्तु विरहिणी को न चांदनी रात में ही सुख है और न किसी त्यौहार में ही।

'सर इंदु अकास उदास सो भो कह लागत है जनु अंग लुकारी।
नारी विरहा नल ते जरई तरई करई दुख की चिनगारी।
सम दंपति आनंद कंद करै निसि कंत के संग खेलत देवारी।
हम खेली दिवारी विदेसी सों प्रीति के हारो है जोबन सुख जुआरी।'

अन्तिम पंक्ति में लोक व्यवहार के द्वारा मनोदशा की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

प्रेयसि का शृङ्गार तो प्रियतम के सामने ही सुखदाई होता है। उसके वियोग में शृङ्गार के सारे उपकरण नीरस, सारहीन तथा भयावने प्रतीत होने लगते हैं इसीलिए विलख कर पुहुपावती लिखती है।

'बन भायो भवन गवन जब कीन्हों पीव,
तन लागे तवन मदन लाइ तापनी।
सुत भयो सुखन वो चुरी चुरइल भइ,
हार भयो नाहर करेजे छुटी कापिनी।
दुखहरन पीय बीतु मरन की गति,
का सो मैं बरनि कहौं बिथा कहौं आपनी।
फूल भयो सूल मूल कली भइ काटा ऐसी,
रात रकसिनी भई सेज भइ सापिनी।

उपर्युक्त पंक्तियों में भावव्यंजना के साथ ही साथ काव्य-सौन्दर्य भी बड़ा अनूठा बन पड़ा है।

नायिका ने बड़ी कठिनाई से अपने शरीर रूपी भाजन में प्रेम रूपी घृत एकत्रित किया था किन्तु औचक में ही वह ढुलक गया। प्रियतम! यह छूछा भाजन तुम्हारे बिना निस्सार हो रहा है आकर इस रिक्त पात्र को फिर से परिपूरित कर देना।

'तन कराह जीव पै अवटायो। प्रीति के जोरन दहीं जमायो॥
मन मथ मन मथ बेजो लीन्हा। मथत कआ जीव माखन कीन्हा॥
बिरहा अगिनि से रखवा घीउ। औचक माह सो ढरिगा पीउ॥
भा भाजन अब तेही बिनु छूछा। पराए याह बात के पूछा॥'

रूपवती के विरह में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अधिक संयोजन किया गया है। पुहुपावती के विरह खंड की तरह इसमें अधिक विस्तार तो नहीं मिलता किन्तु मार्मिकता उससे कम नहीं है।

संयोगिनी स्त्रियों की आनन्द क्रीड़ा और पशु-पक्षियों के दाम्पत्य सुख को देखकर वियोगिनी का हृदय दुख से फटने लगता है।

नारि कंत संग करहि कलोला। देखि सो सुख हिय उठै मलोला॥
नर पशु पंछी कीट पतंगा। दंपति सुख मानहि इक संगा॥
सोधनि झंखै कंत बिनु निसुदिन पंथ निहारि।
बहुरि खोज नहि पीय लियो जेउ तरु पातइ डारि॥

पावस की रात काटे नहीं कटती और विरह का वारपार नहीं दिखाई पड़ता।

"बिजुली चमकै बादर गरजै। सेज अकेली अति ही जिअ लरजै॥
चहु ओर बाढ़ो नदि नारा। विरह सूझै वार न पारा।"

अथवा

"मन तरसै घन बरसै सभ कोई करै धमारि।
पीव पीव रटत रैन दिन भई पपीहा नारि॥"

बड़ी मनोकामनाओं से अपने घर को सजाया था किन्तु बिना प्रियतम के सारा साज फीका पड़ गया।

"नौ जीवन को ठाट कै छाजन छावो नेह।
एक साजन प्रीतम बिना भावै कुंज सम गेह।"

विरहिणी की विक्षिप्तावस्था का एक चित्र देखिए।

"खिन रोवै खिन सोवै खिन, झंखे पछताइ।
जस सरहस कै जोरी उड़े परै भुइ आइ॥"

जिस प्रकार सुनार बार बार सोने को तपा और बुझाकर कुन्दन बनाता है उसी प्रकार वियोगिनी को विरह जलाता और प्रेम अमृत पिलाता है। यही कारण है कि वियोगिनी कभी दग्ध कभी शीतल होती रहती है किन्तु मरती नहीं।

"फिरि फिरि जारि बुझाइ जे जब कुंदन को हेम।
तैसे विरह जरावत अमी पिआवत प्रेम।"

उपर्युक्त पंक्ति मे जायसी की उक्ति "भूजेसि अस जस भूजै भारू" की प्रतिध्वनि है किन्तु विरह दशा की उस मार्मिकता की पूर्ति दूसरी पंक्ति में नहीं हो पाई।

रूपवती के रक्ताश्रुओं से टेसू लाल तथा कज्जल के मिश्रण से घुंघची काली और लाल हो गई है।

रोवत नैन रक्त के धारा। टेसु फूलि वन भा रतनारा॥
काजर सहि बुंद जनु छुटा। आजहुँ स्याम रंग नहिं छुटा॥

गुल लाला घुंघची सुठि दुखि। छवि रक्त माह मैं करि मुखी ॥
जौ सिंगार कोइ बरबस करई। अनिल समान होइ सो जरई ॥

इस उद्धरण मे नागमती के रुदन के प्रति कही गई जायसी की उक्तियों की स्पष्ट छाया मिलती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि रूपवती के वियोग वर्णन मे भाषा की सादगी है किन्तु उक्तियों की मार्मिकता पुहुपावती मे अधिक है। उपमानों के संयोजन में जीवन की दैनिक अनुभूतियों का आधार लिया गया है जो भावों को और भी प्रभावशाली बना देता है। कवि ने शैली के संयोग पक्ष का तो वर्णन किया है किन्तु वियोग पक्ष का नहीं।

भाषा

पुहुपावती की भाषा अवधी है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भाषा के क्षेत्र मे कवि ने जायसी का अनुकरण किया है। जायसी की ही भाँति इनकी भाषा में लालित्य और प्रासाद गुण मिलता है। भाषा का प्रवाह थोड़े मे शब्दों मे गम्भीर तथा भावव्यंजना जो ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है, कवि की असाधारण काव्यशक्ति का परिचय देती है।

छंद

पुहुपावती में कथानक का विस्तार दोहा तथा चौपाई छंद में किया गया है जिसमें आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे या सोरटे का क्रम पाया जाता है किन्तु कथा के रसासिक्त अंशों की मार्मिक अभिव्यंजना के लिए कवि ने कुण्डलियाँ, सोरठा, अरिल्ल तथा कवित्त छंद का भी प्रयोग किया है।

अलंकार

पुहुपावती में उपमा, उत्प्रेक्षा तथा व्यतिरेक अलंकार ही अधिकतर प्रयुक्त हुए हैं।

उपमा

'दसन जोति जस जगमग तारा। दारिम अस देखि रतनारा ॥

व्यतिरेक

'बरनो कहा अधर रतनारा। फूल बधूक जेहि पर वारा ॥
इन्द्र बधू विद्रुम रंग नीका। अधर के आगे लागे रंग फीका ॥

फलोत्प्रेक्षा

पुनि बरनो का नैन सुरंगा। मद पीए मत बार कुरंगा ॥
धनु सरे देखि मृगा भैलाही। बैनी तीधनु निकट न जाही ॥

आन्यापदेश

पुहुपावती सूफियों की साधना-पक्ष का एक आन्यापदेशिक काव्य है। जिसमें तसव्वुफ के सैद्धान्तिक तत्वों का प्रतिपादन किया गया है। अतएव पूर्ण काव्य रहस्यात्मकता का आगार है।। प्रबन्ध के बीच प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में दार्शनिक तत्वों की विवेचना और स्पष्टीकरण मिलता है इसलिए पहले इसके रूपक को समझ लेने की आवश्यकता प्रतीत होती है ?

प्रस्तुत रचना में कवि ने जायसी के पद्मावत की 'भांति' तन चितउर मन राजा कीना' जैसी उक्ति के द्वारा इसे रूपक में परिगित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है, वरन् प्रारम्भ में ही दूती के द्वारा उसने 'पुहुपावती' को ब्रह्म का प्रतीक घोषित कर दिया है। निम्नांकित वर्णन में 'नूरमुहम्मदी' के साथ साथ भारतीय प्रतिबिम्बवाद की छाया मिलती है।

ब्रह्म जोति सो लेइ जग साजै। उहै जोति सब ठाउ विराजै॥
जहा लगि जग मह जोति बखानी। उहै जोति सब माहि समानी॥
वोहि के जोति सबै भइ जोति। नहि तो जोति कह अस होती॥
जी सो जोति तुम्ह देखत नैना। विसरत रस भोजन सुख चैना॥

अथवा

'वह पुहुपावती अद्‌भुद आही। गुप्त प्रेम से देखी ताही॥
परगट भए न देखै पावै। राजा सुनतहि मार डरावै॥'

इस प्रकार पुहुपावती ब्रह्म का स्वरूप या सूफियों का महबूब है और कुमार साधक। जहाँ एक ओर कुमार साधक के रूप में अंकित है वहीं पुहुपावती के लिए वह ब्रह्म का प्रतीक बन जाता है। दूती के द्वारा कुमार के नखशिख वर्णन में यह बात बड़े स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है जिसका अंतिम अंश विशेष उल्लेखनीय है।

'जयन चरन सनकादिक धोवा। जो जल जटा माह सिव गोवा॥
जो पग परसी अहेल्या नारी। चढी वेवानु वैकुंठ सिधारी॥

राजा की फुलवारी में रहने वाली मालिन दूती गुरु है, अथवा यह सूफियों का पीर है। वह कुमार को प्रेम के पंथ पर चलने के लिए प्रेरित और अग्रसर करती है।

'कुंअर सुनत दुती मुख बाता। भा चित चेत हेत के राता॥
आइ मिला गोरख गुर भारी। छुटि के भरथहरी के तारी॥
गुर कहि चीन्हि पांव लेइ परा। रोवै लागु विरह दुख जरा॥

दूती के साथ ही कुमार पुहुपावती से मिलने चलता है। धर्मपुर में दूती के ही कारण वह उस नगर के चारों द्वारों को पारकर पुहुपावती के स्वयम्वर में पहुँचता है।

रंगीली और रूपवती पहले तो माया के रूप में अवतरित होती हैं जो कुमार को अपने वश में करके उसे 'पुहुपावती' के पंथ से विलग करना चाहती हैं। यद्यपि कवि ने उनके इन प्रयत्नों का वर्णन कहीं नहीं किया है किन्तु कथा का संविधान इस ओर इंगित करता है। आगे चल कर यह सिद्धियों का रूपान्तर बन जाती हैं और कथा के अन्तिम खण्ड में इड़ा और सुषुम्ना नाड़ी का। कवि ने अन्तिम खण्ड में महलों का वर्णन करते हुए कहा है कि—

'तीन महल तेहि माह बनावा। स्याम सेत औ अरुन देखावा॥
सेत महल रूपवन्ती लीन्हा। स्याम महल रंगीली दीन्हा॥
अरुन महल पुहुपावती पायो। दुनौ महल के बीच बनायो॥
तिन्हके संग अनेक सहेली। सबै सरूप अनुपम बेली॥
राजकुमार सबन मह कैसा। तारन मह चन्द्रमा जैसा॥

हटयोगियों के अनुसार इडा में अमृत और 'पिंगला' में विष का प्रवाह होता रहता है। अमृत का रंग श्वेत होता है और विष का काला अथवा स्याम। इसलिए रूपवती इडा और रंगाली पिंगला नाड़ी है। निर्गुनियों में कभी-कभी यह गंगा-जमुना सरस्वती के नाम से भी अभिहित की गई हैं इसलिए 'पुहुपावती' सुषुम्ना नाड़ी हुई क्योंकि कवि ने उसे अरुण महल की अधिष्ठात्री बताया है। यह रूपक 'तीन्ह के संग अनेक सहेली' से और भी स्पष्ट हो जाता है। इनसे सम्बद्ध नारियाँ शरीर की नाड़ियाँ कही जा सकती हैं। आखेट को शेरनी और बेगमपुर में मिलने वाला 'दानव' शैतान है उसी के कारण गुरु और शिष्य में बिछोह हुआ और पुहुपावती के मिलने में कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं।

रूपवन्ती की मैना भी गुरु का ही प्रतिरूप है। पुहुपावती मैना की बातें सुनने के उपरान्त कहती है—

'नागमती कँह जस मासूआ। एही मैना कह सो गुन हुआ॥

अनूपगढ और 'चित्रसारी' सहस्त्रार्द्ध कमल, हृदय एवं स्वर्ग के प्रतीक हैं। अनूपगढ़ के लिए कवि कहता है।

पुनि गै देखेसि कोट अनूपा। धौलागिरि परवत के रूपा॥
दस दुवार बावन कंगूरा। निसुदिन गढ़ पै बाजे तूरा॥
संख औ घंट भेरी सहनाई। बाजे नौबत सुनत सोहाई॥

नदी बहत्तर गढ मह बहई। पांच पचीस पहरीआ रहई॥
सात खंड उपर सब रावा। सात खंड पुनि हेठ बनावा॥

ऐसे ही चित्रसारी का परिचय देता हुआ कवि कहता है।

'कुअरहि आइ सखि सब लेइ तेहि ठाउ।
सात धरोहर उपर चित्रसारी जेहि नाउ॥

इन स्थानों और पात्रों के अतिरिक्त पुहुपावती में सूफियों के चारो अवस्थाओं और स्थानों का भी बन्धन बाधा गया है।

सूफियों के लिए अल्लाह की आर्श कुर्सी हृदय में है बाहर या विहिश्त मे नहीं। उसे पाने के लिए किसी भेदिए (मुरशिद) का होना परमावश्यक है। सूफी इस मत को शरीयत (कर्मकाड) से भिन्न मानते हैं। उपासक को जब शरीयत में सतोष नहीं मिलता तब वह किसी जानकार के पास पहुँचता है। मुर्शिद उसकी लगन देखकर उसे मुरीद बना लेता है और एक निश्चित मार्ग का उपदेश दे उसे पथ पर चलने की अनुमति दे देता है। शरीयत को पार कर वह तरीकत के क्षेत्र में पहुँचता है। तरीकत की अवस्था में उसे अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। जब वह इस क्षेत्र में सफल हो जाता है तब उसमें 'म्यारिफ' का आर्विभाव होता है और परमात्मा के स्वरूप की चिंता आरम्भ हो जाती है। तब वह हकीकत के क्षेत्र में पहुँचता है। 'हकीकत' मे पहुँचने से प्रियतम का संयोग मिलता है और वह धीरे धीरे वस्ल से 'फना' की दशा मे पहुँच जाता है।

सालिक (साधक) को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कतिपय भूमियों को पार करना पड़ता है। सूफी उन्हीं को मुकामात कहते हैं। चित्तवृतियों के निरोध से प्रज्ञा का उदय होता है और वह म्यारिफ के मुकाम पर पहुँचता है। म्यारिफ से वह 'हकीक' की भूमि पर पहुँचता है। यहाँ उसे हक का आभास होता है। इस प्रकार तसव्वुफ के मुकामात क्रमशः इश्क जहद, म्यारिफ, हकीक, वस्ल एवं फना हैं। इन्हीं को तसव्वुफ की सप्तभूमयः कहते हैं।

विचार करने से पुहुपावती का कथानक भूमियों का संकेत करता है। दूती कुमार को सौन्दर्य वर्णन द्वारा ज्ञान देती है और कुमार योगी के रूप में फुलवारी मे तीन दिन तक उसके स्मरण मे तल्लीन रहता है। यह अंश शरीयत और तरीकत तथा म्यारिफ की अवस्थाएँ कही जा सकती हैं। कुमार और पुहुपावती का बाग मे मिलना हकीकत की अवस्था है।

आदि खण्ड में कवि ने इस साधना पद्धति को बीज रूप में अङ्कित किया

है, अहेर खण्ड में यह बीज कथा की घटनाओं के बीच पुष्पित पल्लवित होता हुआ अन्त में इक की पूर्णता को प्राप्त करता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत रचना जायसी से बहुत अधिक प्रभावित है और इसकी कथा वस्तु में सूफी भावधारा आदि से अन्त तक प्रवाहित दिखाई पड़ती है।

रहस्यवाद

शृंगार वर्णन रूपक और कथा के उपदेश में सूफियों की साधना-पद्धति और रहस्यवादियों की उक्तियों का परिचय हमें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो चुका है। इस काव्य में ये उक्तियां इतनी भरी पड़ी हैं कि उनका संकलन करने में एवं उनके स्पष्टीकरण में एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है। कोई पृष्ठ ऐसा नहीं जो इससे सम्बन्धित न हो। समय और स्थानाभाव के कारण यहाँ संक्षेप में हम कतिपय बिखरी हुई रहस्यवादी उक्तियों को संकलित रूप में रखने का प्रयत्न करेंगे।

बिना गुरु के मनुष्य ज्ञान नहीं पा सकता वह चाहे जितना प्रयत्न क्यों न करे।

रे मन हेरत का तेहि पावो। जौलै गुरु न पंथ दिखावो॥
तौ लेह मिलै न प्रान पीआरा। केतीकौ रौवै करै पुकारा॥

संसार में लिप्त और सांसारिक रसों का भोग करता हुआ मनुष्य कभी भी ईश्वर की याद नहीं करता केवल दुख में ही उसे परमात्मा की याद आती है।

जौ लगि करहि केलि रस भोगू। तौ लेहि सुमिरद करै न लोगू॥
जबहि कोई कीछु दुख पावै। तबही सो प्रभु कह गोहरावै॥

इसीलिए दुखहरन जी मनुष्य से प्रार्थना करते हैं कि सारी माया ममता को छोड़कर केवल उसी परमात्मा का चिंतन करो, वही सबका रक्षक है, वही भक्ति और मुक्ति का देने वाला है। निम्नांकित अंश में उपर्युक्त भाव के अतिरिक्त भक्तिवाद भी प्राप्त होता है।

दुखहरन तजि धन्ध जग सुमिरु सोइ करतार।
दुख मह हरि सुख दायक जुगुति मुकुति देनीहार॥

सांसारिक ऐश्वर्य और सुख में रहते हुए भी जागरूक आत्मा व्याकुल रहती है। उसे तभी संतोष मिलता है जब वह अपने अभ्यन्तर की ओर दृष्टिपात कर अपने ही मन की खिड़की खोल कर सुख के साधन की खोज अपने में ही करती है। इसी भाव को लेकर कवि कहता है कि पुहुपावती जिस समय खिड़की खोल कर झाँकती थी उसी समय उसे कुछ संतोष प्राप्त होता था।

'परम पीर पुहुपावती भेद न जानै कोइ।
झाँके खोल झरोखा तब किछु सुख होय॥'

पुहुपावती ने इस प्रकार से तो कुँवर के दर्शन कर लिए किन्तु कुमार की झुकी हुई दृष्टि ऊपर को ओर न उठी और वह उसके दर्शनों का लाभ न उठा सके।

ऊपर द्रिस्टि सो पहुँची नाहीं। जाकर ऐस फूल परिछाहीं॥
हेरत अरघ सबै कह सूझा। उरघ क भेद न काहुव बूझा॥

उपर्युक्त अंश में भारतीय प्रतिबिम्बवाद के अतिरिक्त मनुष्य को संसार की मोह माया से मुड़ कर परमात्मा की ओर ध्यान लगाने का उपदेश दिया गया है। इसी भाव-धारा को कवि ने दूसरे स्थान पर भी प्रस्तुत किया है। दूती से ज्ञान पाकर कुमार के ज्ञानचक्षु खुल गए और उसने दूती से प्रार्थना की कि वह उसे साधना का सच्चा रास्ता बताए।

'धरम चरित्र अन्ध के बूझा। उरघ की जोति अनगामी सूझा॥
अब वह जाति मिले मोहि कैसे। देहु पंथ पावो तेहि जैसे॥

दूती कुमार से कहती है कि वह जोति हृदय में ही निवास करती है लेकिन चर्म चक्षुओं से देखी नहीं जा सकती।

बसै जोति सो हृदे मांही। इन्ह नैन फिर देखो नाहीं॥

हठयोगियों की साधनापद्धति का परिचय भी इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। कुमार के वियोग में पुहुपावती ध्यानस्थ योगी के समान रहती थी।

'चीर शरीर भई जनु कंथा। धरै ध्यान तीजो वै पंथा॥
सांस सुमीरनी सुमिरै नाउ। मन माला फेरहि अठाउ॥'

निर्गुनियों के यहाँ विशेष कर कबीर पंथियों की परम्परा में गिनती के अंकों का भी रहस्यात्मक अर्थ होता है। उसका परिचय हमें रवि 'दम्पा' के पूर्व पुहुपावती द्वारा पूछे गई पहेलियों में प्राप्त होता है।

प्रश्न—'पीव तुम्ह चौपरि खेल बताया। गंजीफा कस नाहि सिखाया॥
सुरज चाँद उगहीं दिन राती। केहि कारन भाँवर अजाती॥
तज दिए सिर राजा होई। पुनि कुमाच तन पहिरै सोई॥
दुलहा होइ बरात सवारे। गहि तरुआरि सो का कह मारे॥
कौन रंग है कैसन डोरी। यह संसै पीव मेटहु मोरी॥
जास रंग हम रंग जो खेलहु। कह जानि के सख मेलहु॥
एक से चारिउ दस ले लावहु। दस से एक सो काहे ले आवहु॥

उत्तर—सुनहु गंजीफा तुम्हहि सुनावों। आपन हुकुम जो मॉगा पावहुँ॥
वास चंग खेले सम कोई। हम रंग खेल हम रंग होई॥
दुयो नैन जस सुरज चंदा। भा अजाति मन प्रभु कर बंदा॥
सिर ऊपर से ताज उतारी। तजी कुमाच भा भेख भिखारी॥
मन लुह भा प्रेम बराती। काम की खरग हतो बिरहागी॥
पौन की डोरि चंग है काया। तुअ भइ मम सखा भाआ॥
एकै चीत दसौ दिसि जाई। पुनि सो एक पर ठा जाई॥
अङ्ग कुमात बरात रवि, एक सेइहै चढाइ।
ताज खरग औ दास ससि, दससे इन्हे लड़ाइ॥

इस प्रकार पुहुपावती का रहस्यवाद जायसी से लेकर कबीर और मलूक-पंथियों के विविध दार्शनिक तत्वों एवं अन्य निर्गुणियों के विश्वासों के समन्वय से निर्मित हुआ है जो उस समय की धार्मिक पृष्ठभूमि को प्रतिबिम्बित करता है।

नल-चरित्र

—कुँवर मुकुन्द सिंह कृत
रचनाकाल सं० १७९८
लिपिकाल सं० १७४०

कवि-परिचय

श्री रामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' ने मुकुन्द सिंह हाणा का परिचय अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में देते हुए लिखा है कि यह कोटानरेश थे। और इनका जन्म सं० १६३९ में हुआ था। इनके अतिरिक्त उनके इतिहास में तथा अन्य किसी इतिहास में इनका परिचय नहीं प्राप्त होता। इनके नल-चरित्र के अन्तः साक्ष्य से हमें इनकी वंशावली का कुछ परिचय प्राप्त हुआ है जो इस प्रकार है—कुँवर मुकुन्द सिंह के पूर्वज बाघदेव थे। बाघदेव की वंशावली में रुद्रसिंह जी के आप सबसे छोटे पुत्र थे। इनके जीवन के विषय में केवल इतना ही परिचय प्राप्त हो सका है।

बाघदेव
|
कीरतसिंह
|
रामसिंह
|
माधवसिंह
|
जगतसिंह
|
रामसिंह
|
सिंघदलेल
|
रुद्रसिंह
|
विष्णुसिंह — पुरुषोत्तमसिंह — मुकुन्दसिंह
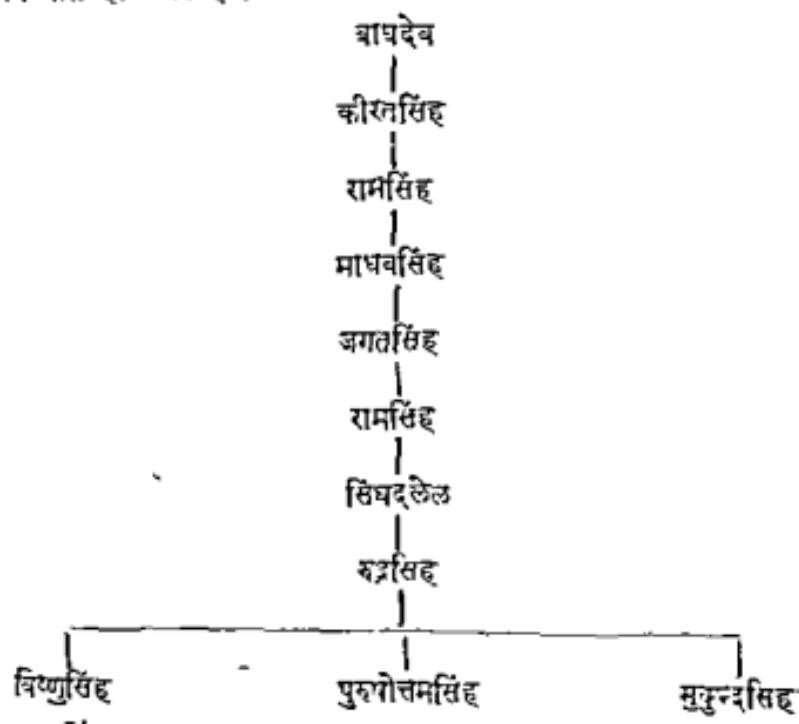
उपर्युक्त वंशावली की पुष्टि नल-चरित्र में दिए गए कवि के स्वपरिचय से होती है।

प्रथमहिं निज वंसावली कहिहौं मति अनुमान,
तहि वंसन्ह में आहिहीं बाघ देव जगजान।
ता सुत किरत सिंह नृप कीरति ससि सम जासु,
राम सिंह तिनके तनय जसु जस जगत प्रणासु।
तासु तनय विख्यात महि माधौसिंह महीप।
जगत सिंह पुनि तासु सुत भए वंश कुलदीप,
ता सुत ने कुल भानु हिंमत सिंह से नाम तसु।
रामसिंह पुनि जासु तसु सुत भए विख्यात महि,
तासु सुत सिंघ दलेल नृप जसु जस भरी संसार।
ससि सम गंगाधार सम मुक्ता सम घन सार।
रुद्र सिंह ताके तनै भए राजपि समान,
ध्रुव सम कै प्रहलाद सम जनक सरिस कै जान।
तिनहिं तनय भए तीन विष्णुसिंह नृप जेठ तंहू।
सब गुन भए प्रवीन जसु बुधि तसु को कहि सकै।
पुरुषोत्तम सिंह मध्य तसु जसु जस जगत प्रकास,
छोटे मुकुन्द तसु तिन एह कथा प्रगासहीं॥

कथावस्तु

प्रस्तुत कृति की कथावस्तु महाभारत के अनुसार है। कवि ने युधिष्ठिर के स्थान पर इस कथा को नारद के द्वारा श्री रामचन्द्र जी को अनरण्य वन में सीता के विछोह के समय सुनवाया है।

यह रचना सूफी ढंग का एक सुन्दर काव्य है जिसमें लौकिक और अलौकिक प्रेम के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कवि ने नल और दमयन्ती की प्रेम कथा को अन्यापदेशिक काव्य के रूप में उपस्थित किया है। काव्य के अन्त में कवि ने स्पष्ट लिखा है कि—

दमयन्ती नारी सती, नल नृप पुन्य स्लोक।
कर्कोटक रितुपर्न जो, पुरु अवध जस ओक॥
कलिके दोस नसावइं, पावै मंगल छेम।
पुन्य बढ़ै पातक कटै, जो सुमिरै करि नेम॥

सूफियों से प्रभावित होने के कारण इसमें प्रेम के लौकिक रूप की प्रधानता के अन्तर्गत पारलौकिक प्रेम के दर्शन होते हैं। अपने ध्येय को स्पष्ट करने के लिए

कवि ने कलि के फौज के द्वारा उच्चरित नारों में लौकिकता का स्पष्टीकरण किया है। इस पृष्ठभूमि में नल और दमयन्ती के रति वर्णन को सात्विक प्रेम का प्रतीक अंकित कर सूफियों के इश्क हकीकी और वस्ल को स्पष्टतर बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार दमयन्ती के नखशिख वर्णन में जहां नारी का स्थूल और *मासल आकर्षण प्रधान है वहीं स्थल-स्थल पर अलौकिक रूप* के दर्शन भी होते हैं। दमयन्ती का नखशिख एक ही स्थान पर न मिलकर कई जगह मिलता है। स्वयंवर के समय सजी हुई दमयन्ती के रूपवर्णन में अलौकिकता प्रधान है और मासल रूप गौण। ऐसे ही दमयन्ती के महल में अदृश्य नल ने जो अनुभव प्राप्त किए या स्त्रियों की जो चेष्टाएं देखीं उनमें कवि ने सासारिक माया का ही चित्रण किया है। यह अंश नितान्त सुन्दर और आकर्षक है। इन मायावियों के प्रभाव से बचते और भागते हुए नल को दमयन्ती के दर्शन अन्त में हुए थे। जिसे देखकर नल मोहित हो गए। दोनों ने एक दूसरे की छाया का स्पर्श किया और आनन्द से गद्‌गद् हो उठे यह आत्मा और परमात्मा का प्रथम साक्षात्कार था जो स्थूल न होकर सूक्ष्म अति सूक्ष्म था। इस साक्षात्कार के उपरान्त नल को दमयन्ती की और दमयन्ती को नल की प्राप्ति हुई। कथा के इस सयोजन में कवि ने इस प्राचीन गाथा को नूतन बना दिया है।

मसनवी शैली में रचित होने के कारण, यद्यपि इसमें शाहे वक्त की वन्दना प्राप्त नहीं होती, कवि ने निज गुरु-ब्राह्मण आदि की वन्दना की है और अपना वंश परिचय भी दिया है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन में कवि ने दो शैलियों को अपनाया है। एक में उसने उसका बाह्य सौन्दर्य परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं के द्वारा व्यंजित किया है और दूसरी में उसने दमयन्ती को अलौकिक नारी, ब्रह्म का स्वरूप, अथवा वेद और स्मृतियों के साकार रूप में अंकित किया है। पहले वर्णन में लौकिक पक्ष प्रधान है तो दूसरे में रहस्यवादी। इस स्थान पर दमयन्ती के लौकिक सौन्दर्य का ही परिचय दिया जाता है। रहस्यवाद के अन्तर्गत उसके दूसरे रूप की विवेचना की जाएगी।

तत्कालीन काव्य परिपाटी के अनुसार कवि ने दमयन्ती के नखशिख वर्णन में कवि-समयसिद्ध उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का उपयोग किया है। जैसे--उसका

मुख कमल के समान नहीं कहा जा सकता वरन् उसकी शोभा उससे भी बढ़कर है। क्योंकि दमयन्ती के सौन्दर्य को देखकर कमल शर्म से पानी में जा डूबे हैं।

मुख समय कमल भए नहि जाते। दुरे लजाए मनहु जल ताते॥

अथवा उसकी भौं कामदेव के समान सुन्दर है या झुलसे हुए कामदेव के दो टुकड़े कर शिव ने दमयन्ती की भौंहे बनाई हैं।

कामहि भसम किए सिव जबही। रहेउ स्याह सैलु तन तबही।
रिसते दुई खंड तहि किएउ। ततु सो इनके भ्रकुटि दिएउ॥

उसके लम्बे लटकारे बाल ऐसे मालूम होते हैं मानो शशिमुख के उदित होने के उपरान्त रात्रि का अन्धकार पीछे जा छिपा हो।

पूरन राका ससि समान मुख निरखत। नल द्रिग माह भयउ सुख।
कच अति सघन स्याम लहकाने। मनहु कहँ तिथि तम विस्तारे॥
मुख ससि सरिस उदय जब भयउ। कच तम भागि पीठि दिस गयउ॥

उसके अरुण अधरों में मानों संध्या दुबक कर रह गई है, दन्तावली की शोभा शशि किरणों के समान आकर्षक है।

अधर सुधर दमयन्ती केरा। संध्या सरिस छवि हेरा॥
संध्या राग अधर अरुनाई। रद दुति जनि ससि किरनि निकाई।

ठोढ़ी पर पड़ा हुआ छद ऐसा मालूम होता है मानो ब्रह्मा की उंगली का निशान है जो उसके सौन्दर्य को निरखने के लिए ठोढ़ी को पकड़ कर मुँह उठाते समय पड़ गया था।

उसके वक्षस्थल पर का मांसल भाग ऐसा प्रतीत होता है मानों दमयन्ती के लावण्य सरोवर में 'बालस्वरूप मदन ने तैरना सीखने के लिए दो कुम्भ डाले हों अथवा वह चकवा चकवी हो या सुन्दर कंचन के लड्डू हों।

दमयन्ती लावन्य सरोवर। बाल रूप मनहुँ पञ्च सर॥
तैरन सीखन है सो हठ धरि। दमयन्तो कुच दुइ कलसि करि॥
पुनि चकवा चकई जुग जैसे। सोहत जुगल पयोधर ऐसे॥
कै जुग कंदुक मजुल लोने। मढ़ेउ धौ काम सुर करि सोने॥
कैधौं है यह जुग लडु धौरे। मदन विर्वोदत अमृत बाँने॥

मध्य उदर को नापने के लिए विधि ने मानो उसे मुट्ठी से पकड़ा था इसी कारण पड़ी हुई सिकुड़न ने त्रिवली के रूप में सुशोभित हो रही है।

मध्य उदर परमान बिल, धरेउ मूठि विधिजान॥
तीनि रेख सोइ सोहइ तृयली ताहि बखान॥

कटि के नीचे के प्रदेश पर कवि ने बड़ी सुन्दर उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का व्यवहार किया है।

ललित नितम्ब वर्तुलाकारा। मनहुं विधि निज पान सवारा॥
रवि रथ एक चक्र विधि मानौं। सीखन हेतु बनाए जानों॥
लहि सिक्षा तब सोति बनाए। कांची सहित महा छवि छाए॥
रंभा सम जंघा जुग सोहें। जातरूप के मनहु रह्यो हैं॥
जलज जुगल रवि व्रत मन लाई। करै बहुत दिन तप सो राई॥
दमयन्ती पग समता न हीं। भए लजित भौम मन मांहीं॥
डूब गै जल लज्या मानी। अतिहि हलुक तिन्ह कह जल जानी॥
डुवै न दीन्ह दीन्ह उतराई। बहु विधि सांसति तिह पाई॥

इतनी सुन्दर दमयन्ती नीली साड़ी में और भी खिल उठी है।

सारी नीली जरकसी सोहै। तहि पर तन गुराई उमगो है॥
नील भीन वादर तर जैसे। आतप बाल प्रभाकर कैसे॥

नीले झीने बादलों के बीच से बाल रवि की फूटती हुई किरणें जिस प्रकार सुशोभित होती हैं उसी प्रकार दमयन्ती मालूम होती थी। कवि की कोमलानुभूति और अभिव्यञ्जना शक्ति का यह सबसे सुन्दर उदाहरण है। उपर्युक्त *अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने नख-शिख वर्णन में कवि-परम्परा का तो अनुसरण किया है किन्तु उसकी उपमाएँ तथा उत्प्रेक्षाएँ अनूठी* बन पड़ी हैं।

संयोग शृंगार

दमयन्ती ने जिस दिन से नल के सौन्दर्य की बात सुनी थी और उसपर रीझी थी उसी दिन से वह संयोग सुख का मानसिक अनुभव करने लगी थी। *नल के चित्र को अपने हृदय से लगा कर अपनी तपन शान्त करती थी* और रात्रि को स्वप्न में उसी का रूप पान किया करती थी।

निसि में उनके मिलन सुख पावहि सपना मांहि।
सोए घरी निज लेखहीं जागत कै अकुलाहि॥

यही कारण था कि वह किसी भी समय अपनी आँखें नहीं खोलती थी।

नल के बिछुरन के डर जानी। नाहि उघारत पलक सयानी॥
जागत हूँ में सोए रह हीं। नल के मिलन आन कछु न चहहीं॥

यह मानसिक सुखानुभूति विवाहोपरान्त वास्तविकता के स्तर पर उतरी। सखियों के द्वारा नल के पास पहुँचाए जाने के बाद वह प्रथम समागम के भय से डरने लगी इस स्थान पर कवि ने किलकिंचित हाव का संयोजन किया है।

सखी सकल गृह ते निकसानी । तब दमयन्ती अति डरपानी ॥
चंचल कीन्हें नैन जुग ऐसे । वधिक देखि खंजन गति जैसे ॥

राजा ने जब हँस कर उसे हृदय से लगा लिया तब यह क्षणिक घबड़ाहट उत्साह में परिणत हो गई और दोनों आनन्द में तल्लीन हो गए। इसके उपरान्त कुट्टमित हाव पाया जाता है।

नाहि नाहि करै डरै सो बाला । त्यों त्यों रभस भरहि महिपाला ॥
विंहसि नैन के कोर चिताई । मनहुं इसारा सो नृप पाई ॥

विप्रलम्भ-शृङ्गार

हंस के चले जाने के उपरान्त दमयन्ती विरह मे पीड़ित रहने लगी। विरह सौन्दर्य का काल होता है इसलिए वह सुन्दरी नल के वियोग में अपनी छाया मात्र रह गई थी।

जंघ जुगल कृसता अति लहई । मरुथल के कदली जनु अहई ॥
जो करि तकि तब कमल लजाई । भागि रहे जल में सो जाई ॥
सो कर को अब कमल हसाई । विरह ते अतिहि छीन हुति लसाई ॥

नल जब उसे सोती छोड़ कर चले गए तब तो उसके दुख का वारपार न रहा वह बन मे भटकती-कलपती नल का नाम रटती हुई घूमती थी।

धर्म शास्त्र नीके तुम जाना । सतवादी को तोहि समाना ॥
जीवन धन अरु प्रान हमारा । मम गति तुमहिं एक अधारा ॥
निद्रा बस सो मोहिका त्यागी । गएउ मोहि जानि अभागी ॥

उसे विश्वास नहीं होता कि उसका प्रियतम इतना निष्ठुर हो सकता है इसलिए वह कहती है।

प्रानेश्वर तु छिप रहेहु, जान परेउ एह मोहि ॥
कसहु प्रेम कस मोंह मोहिं । इहै हेतु मनु तोहि ॥

चकित और चिंतित दमयन्ती सोचती है कि वह नल जो तनिक मुझे भी चिंतित देखकर स्वयं दुखी हो जाते थे आज इतने निष्ठुर क्यों बन गए हैं कि मेरे विलाप करने पर भी नहीं आते। वियोगावस्था में 'प्रियतम' के व्यवहारों का याद आना स्वाभाविक ही है।

रंचक मोर मलिन मन देखी । होत तुमहिं अति सोच विसेखी ॥
सो हम रोदन बन-बन करहीं । निर्जन बन तकिकै अति डरही ॥
तोहि न दया नैकु हृदिहोई । तोहि बिनु मोहि अवलंबन कोई ॥

पति-परायणा दमयन्ती अपने लिए इतनी चिन्ताकुल नहीं है जितनी कि नल के अकेले रहने की चिन्ता से तड़पती है।

आप सोच मोहि रंच न होई। तुम अकेलहु साथ न कोई॥
सेवा कौन करिहि तुम राई। इहि सोच मम हृदि अति छाई॥
सांझ लगे जब पथ चलि जैहो। छुधा पियासहि अति दुख पैहो॥

उपर्युक्त अवतरण में सीधे-सादे शब्दों में भारतीय नारी के हृदय का बड़ा सुन्दर चित्र मिलता है। वह अपने लिए नहीं वरन् अपने पति की चिन्ता में घुल रही है और अपने जीवन को धिक्कारती है।

पापी प्रान न तजत तब मो सम अधमा कौन॥
तुअ बिछुरन अस सुनेउ मैं सालै हिये गुन तौन॥

और विक्षिप्तता में गिरि, मृग और खग से नल के विषय में पूछती फिरती है।

हे तउ हे गिरि खग जिते, मृग मैं कहौं निहोर।
गए भूप जेहि बाट में, देहु तकाए से ओर॥

इस प्रकार दमयन्ती के वियोग-वर्णन में हमें परम्परागत उत्प्रेक्षाओं, उपमाओं की झड़ी मिलती है और न ऊहात्मक वर्णनों की भरमार। इस वर्णन में जो सादगी है, हृदय के भावों की सीधे-सादे शब्दों में जो अभिव्यक्ति है और एक सती नारी के अकलुष हृदय की जो गम्भीरता है वह इतनी मार्मिक, हृदय ग्राही एवं स्वाभाविक है कि उसके सामने परिपाटी पर चलने वाले कितने ही कवियों की विरहिणी नायिकाओं को संकुचित होना पड़ेगा।

छन्द

संपूर्ण रचना दोहे-चौपाई के क्रम में प्रणीत है जिसमें आठ या सोलह अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम रखा गया है।

अलंकार

अलंकारों में कवि ने सादृश्य मूलक उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकारों का प्रयोग किया है।

भाषा

इसकी भाषा अवधी है। जिसका लालित्य कहीं-कहीं तुलसी की भाषा के समान है।

आन्यापदेश

कुंवर मुकुन्दसिंह का नलचरित्र सूरदास के नलदमन की भांति एक आन्यापदेशिक काव्य है। जिसमें एक ओर तो सूफियों का प्रभाव परिलक्षित होता है और दूसरी ओर कृष्णकाव्य की माधुर्य भक्ति का। इसमें निर्गुण की भावना उतनी प्रधान नहीं है जितना सगुण की। दमयन्ती जहाँ ब्रह्म का स्वरूप है वहीं

वेदों, पुराणों की साकार प्रतिमूर्ति और सात्विक प्रेम का प्रतीक एवं उसकी जननी है।

नल गुन सुत तन रुह उठि आवै। सात्विक भाव सकल प्रगटावै॥
सात्विक भाव जो प्रगट भो, दमयन्ती तन माहिं।
गुपुन करन बहु जतन किय, सकी छपाए न ताहि॥

इसी प्रकार स्वयंवर में उसका नख-शिख वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि दमयन्ती वेदों और शास्त्रों का स्वरूप है।

त्रिवली तीन वेद जसु छाजै। जोतिष शास्त्र दिष्टि जसु राजै॥
वेद अर्थ रोमावलि जासू। वेद षड्ग भुज सोइ अहइ॥
सर्व सास्त्र रसना बुध कहई। ... ...॥

अथवा

है विश्राम स्लोक महं भुजा संधि सो आहि।
अलंकार अद्धेस पद गृव सुक्र जानहु ताहि॥

शास्त्रों, मीमांसाओं एवं पुराणों की साकारता का भी दयन्ती में अवलोकन कीजिए।

अधर सुधर सोई जनि अहई। पुनि जहि सास्त्र मीमांसा कहई॥
जंघ जुगल सोई छवि पावै। जुगल भेद तेहु तीय लखावै॥
न्याय सास्त्र में तर्क अहै जो। सरस्वती के जानहु रद सो॥
खोड्स लच्छन है जहि मांही। ओपडसउ दैस जो आही॥

दो० मत्स्य और पदुम पुरान जो सोई कर जुग आहिं।
धर्म सास्त्र मस्तक अहै प्रणव भौ है ताहि॥
प्रनव मांह प्रभु विंदु जो रहई। भाल विंदु तसु सोइ तनु अहई॥

उपर्युक्त अंश से यह स्पष्ट है कि इन शास्त्रों की प्रतिमूर्ति दमयन्ती को समझाने के लिए एक गुरु की आवश्यकता है इसीलिए हंस गुरु के रूप में उपस्थित किया गया है। वह दमयन्ती से कहता है।

मोर अवग्यां करहु जनि पन्छी लखि वरनारि।
हम पंडित सभ जानड मोहिं सिरजए मुख चारि॥

हंस से दमयन्ती नल के प्रेम का प्रत्युत्तर देती हुई कहती है कि मैं नल के हृदय में और नल मेरे हृदय में निवास करते हैं। तुम हम दोनों के बीच माध्यम मात्र हो। अगर तुम हमारा संदेश उन तक पहुँचा दोगे तब हम दोनों के कष्ट का निवारण होगा।

मैं उनके वे मोरि हिदि बसहि सुनहु मन लाए।
कारन मात्र तु होहु दिज जिहते क्लेस नसाए॥

इसी प्रकार अदृश्य रूप में दमयन्ती के रंगमहल में उपस्थित नल को इन्द्र के दूत के रूप में देखकर जब दमयन्ती चिन्तित होती है तब हंस प्रकट होकर दोनों का परिचय करा देता है। इसी गुरु भावना को कवि ने स्वयंवर में सरस्वती को सखी के रूप में उपस्थित कर पुष्ट किया है। दमयन्ती दिव्य ज्ञान पाने के उपरान्त कहती है।

धन्य बुद्धि बानी के अहई। को इमि बच रचना करि कहई॥
बानी बच दोउ अर्थ बुझाई। मम मन जउ सो बूझि न जाई॥

नल साधक है और दमयन्ती के लिए साध्य भी। दोनों एक दूसरे के लिए आत्मा और परमात्मा के प्रतीक हैं। दमयन्ती के द्वारा भेजे हुए संदेश में निम्नांकित अंश इस बात की पुष्टि करता है।

हे नल नृप में सरन तुम, लीन्हों मन बच कर्म।
जीवन के जीवन तुमही, छाड़े होए अधर्म।

कलि सूफियों के अनुसार शैतान का स्वरूप है और भारतीयों के अनुसार पाप का प्रेरक और पोषक है जो सदैव आत्मा और परमात्मा को एक दूसरे से अलग करने में संलग्न रहता है। एक ओर तो इस प्रकार सूफियों के प्रेमाख्यानों का रूपकात्मक सगठन इस काव्य में मिलता है दूसरी ओर 'राम' के शब्दों में यह काव्य कलि के प्रभाव को नाश करने का माध्यम है जिसमें नायक और नायिका निम्नांकित प्रतीकों के रूप में अंकित किए गए हैं।

दमयन्ती नारी सती नल नृप पुन्य श्लोक।
कर्कोटक रितुपर्न जो उरु अवध जस ओक।
कलि के दोस नसावइ पावै मंगल छेम।
पुन्य बढ़ें पातक कटें जो सुमिरैं करि नेम॥

रहस्यवाद

अन्यापदेश की विवेचना और शृंगार वर्णन में रहस्यवादी दृष्टि कोण का परिचय दिया जा चुका है किन्तु बीच में ऐसे भी स्थल मिलते हैं जहाँ उस समय की प्रचलित अन्य धार्मिक भावनाओं के प्रतिबिम्ब भी दृष्टि गोचर होते हैं।

नल चरित्र का रहस्यवाद सूफी मतावलम्बियों से प्रभावित तो है किन्तु इसमें हठयोगियों की साधना-पद्धति को नहीं अपनाया गया है। शंकर के मायावाद,

वैष्णवों की माधुर्यभक्ति और सूफियों के प्रेम की पीर से इस काव्य की रहस्यात्मक भावभूमि निर्मित हुई है।

कवि ने सूफियों के शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत को उतने स्पष्ट रूप में नहीं अंकित किया है जितना कि 'पुहुपावती' में दुखहरन ने किन्तु उनका आभास हमें मिलता अवश्य है।

नल-दमयन्ती के रूप का बखान सुन 'तरीकत' की अवस्था में पहुँच जाते हैं और बाग में प्रकृति के उद्दीपन रूप उनकी इस अवस्था को और भी अग्रसर करते हैं।

तकिए भूप भ्रमर समुदाए। काम बान सम सोभा पाए।
वानउ के रव होत अपारा। तिहि विध जानहु भ्रमर गुजरा॥
हुई के हहू सिली सुख नामा। विरही तन कह दोउ दुख धामा॥

यह शरीअत की अवस्था नल के दूतत्व तक बनी रहती है। दमयन्ती के मन्दिर में नाना स्त्रियों के कामोद्दीपक प्रभाव से बचने के उपरान्त नल म्वारिफ की अवस्था में पहुँचते हैं। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि म्वारिफ और हकीकत की सन्क्रान्ति भूमि इस स्थल पर मिलती है। और स्वयंवर में हकीकत की अवस्था की पूर्णता के उपरान्त वस्ल का प्रस्फुटन हुआ है।

यहाँ कवि वास्तव में सूफियों के वस्ल तथा तान्त्रिकों के 'महासुख' की भावना से बहुत ही अधिक प्रभावित हुआ है। अन्य हिन्दू और मुसलमान कवियों ने रति के पूर्व पहेली अथवा प्रश्न आदि कराकर केवल इश्क हकीकी के वस्ल का संकेत किया है पर उनका वर्णन पूर्ण लौकिक है लेकिन कवि मुकुन्द ने रति-वर्णन में भी अलौकिकता का समावेश किया है। लौकिक के साथ अलौकिक का सामंजस्य रस की पूर्ण निष्पत्ति में सहायक है जो कवि की अद्भुत कल्पना शक्ति का परिचायक है।

वस्ल का प्रथम आभास ही नहीं संदेश भी दमयन्ती को हंस के द्वारा मिलता है। दमयन्ती की क्षीण कटि और उसके अन्य पुष्ट अंगों को देखकर हंस कहता है—

नल और तुमहि प्रीति जो भएउ। तौलन ताहि काम मन दिएउ॥
पलरा ससि कह मनहुँ बनाए। रसि जासु डोरा जनि लाए॥
नल नरा के जब रेखा लहिहौ। कुच ससि सेपर से छवि गहिहौ।

यह वस्ल आगे चलकर निगमागम के समन्वित रूप एवं पूजा-अर्चना की विधि में परिणत दिखाई पड़ता है।

हसि नृप तन ते कंचुकी सारी। करही कर ही लिए उतारी॥
स्वेद भाव सात्विक भावा! पद पछालन मनहु चढ़ावा॥
चुम्बन अधर आचमन सोई। मुख पंकज आमोहित होई॥
गन्ध पुहुप के सम सो भासे। रोम राजि लसि धूप धुआ से॥
नल पाती दुति दीप सरिस छवि। कुच जुग पडुक मनहु नेवज॥
इमि मनसिज कर पूजा नृप नल। करत भए धरि बहु आसन कल॥
जहि मदनय मुर संके कंपित। ठाढ़े सुरत अन्तरिक दम्पति॥
तिथि तिर्जक अध उर्ध उताना। समुख विमुख गति सात सुजाना॥
अस मिली जाहि दोउ एक होही। तिय पुरुष लखि परे न कोई॥

सूफियों के इस वस्ल की तुलना बौद्धों की साधना शाखा में 'इकशल्प' वीर के 'चंडु महासेन' तन्त्र में वर्णित सिद्धि की प्राप्ति के साधन से की जा सकती है। उसके अनुसार छः सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए रति प्रधान साधन है इसके बिना वह प्राप्त हो ही नहीं सकती[1]। इस तान्त्रिक भावना का प्रस्फुटित रूप उपर्युक्त अवतरण में दृष्टि गत होता है।

दूसरे स्थान पर भी आत्मा परमात्मा का मिलन सायुज्य मुक्ति और सहस्रार्ध कमल में निहित शक्ति के साथ पुरुष के सयोग को चित्रांकित किया गया है।

---

1. The (eallavira) Carda-Maharosana-Tantra explains on the *one hand the Pratiya-Smutpada according to philosophical* doctrinen of the Malayana whilst on the other hand, the cult of Yogins, such as Mahavajri, Prishunvajri etc. and that of female dieties with sexual actions are recommonded......It is shown how the sic perfections can be attained by means of sexual union. In one passage Ghagvati asks, "O Lord, can the dewlling of Canda Maharosana be attained without woman, or is that not possible? The Lord said that is not possible, O Goddess—" Enlightenment is attained by means of bliss, and there is no bliss without a woman......I am the son of Maya and I have assumed the form of Canda Maharo-ana, you are the exalted Gopa who are one with Prajna-Paranita and all womann in the universe are regarded the incarnations of her, and all men are *incarnations of myself.*

—Winternitz—P, 398 Vol. I.

मेरु धुजा सम जासु ऊँचाई। जासु दिविकंह परसाई।
दमयन्ती जुत तंह नल राई। ताहि पर चढ़े हरप अति पाई॥

प्रस्तुत रचना में शंकर के मायावाद का भी प्रभाव मिलता है। इस मायावाद का अङ्कन कवि ने दो स्थानों पर किया है। पहले कलि के सेना के वर्णन मे दूसरे दमयन्ती के *मन्दिर मे रहने वाली नारियों के वर्णन में।* किन्तु दोनों मे ही स्त्री के लौकिक आकर्षण को ही प्रधानता दी गई है।

उत्तम बचन तीत अति लागे। परमारथ जिहि देखत भागे॥
मूर्ख सकल सेवक जसु अही। माया मुगुध सब रहही॥
त्रिय पुत्र और कुटुंब जहां लौ। पंक सरिस ऐ अहहि तहां लौ॥

नारी के स्थूल आकर्षण और उसकी *मायाविनी* शक्ति का परिचय कई स्थानों पर दिया जा चुका है। इस प्रकार हमें इस काव्य के रहस्यवाद में एक ओर सूफी मतावलम्बियों और शंकर के मायावाद में विश्वास करने वाले सम्प्रदाय का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर सगुण उपासना की भक्तिपद्धति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। जैसे—दमयन्ती नल के पास संदेश भेजते हुए कहती है।

हे नल नृप मैं सरन उ लीन्हों मन बच कर्म।
जीवन के जीवन तुमहि छाड़े होए अधर्म॥

अथवा

करनामय तेहि कह सम कोई। किमि अधीन पर दया न होई॥
सबै छाड़ि मैं तेहि लव लाई। रज होय रहो चरन लपटाई॥

कथा का अन्त भी इसी भक्ति भावना और स्तुति में होता है। इस स्तुति मे रामजी तथा अन्य उपस्थित साधु नारद के साथ भाग लेते हैं।

तब पुनि नारद मुनि भगतेसा। लागे स्तुति करन असेसा॥
तुमही सभ के कारन अहहु। तुमही नीति अनीतिहु गहहु॥
तुमही सर्व मई हहु स्वामी। तुमही हहु प्रभु अन्तर जामी॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत रचना का रहस्यवाद सूफियों के इश्क हकीकी, शंकर के मायावाद और तान्त्रिकों के महा सुख वाद तथा सगुण भक्तों के अवतार वाद एवं निर्गुणियों के अद्वैतवाद से निर्मित है जो सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

नलदमन

सूरदास कृत

रचनाकाल सं० १७१४

लिपिकाल...

प्रस्तुत रचना की प्रति बंबई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम के क्यूरेटर डा० मोती चन्द एम० ए० पी० एच० डी को प्राप्त हुई थी जो फारसी लिपि में है। उनके नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे प्रकाशित परिचयात्मक लेख के अनुसार इसकी प्रतिलिपि किसी बाबुल्ला वल्द मुहम्मद जहीर ने की है। इस प्रति की नकल हिजरी सन् १११० यानी बादशाह औरंगजेब के राज्य काल से तैतासवें वर्ष समाप्त हुई थी। यह प्रति मियां दिलेर खा के लिए तैयार की गई थी। प्रति का आरम्भ बिसमिल्लाह रहमानुर्रहीम से हुआ है। इसी प्रति की प्रतिलिपि हिन्दी में टाइप की हुई १६१ पृष्ठ फुलस्केप में नागरी प्रचारिणी कार्यालय में वहां के सहायक मंत्री के पास देखने को मिली थी।

नल दमन की रचना अवधी मे हुई है कवि ने इस काव्य को 'पूरबी' अवधी मे लिखने का कारण भी लिखा है।

कवि-परिचय

इनका नाम सूरदास था तथा इनके पिता का नाम गोवर्धनदास था। वे कंबु गोत्र के थे तथा इनके पुरखो का निवास स्थान गुरुदास पुर जिले के कलनौर स्थान मे था। इनके पिता वहा से आकर लखनऊ में बस गए थे और यहीं सूरदास जी का जन्म हुआ था।

> 'सूरदास निज नाउ बताऊँ, गोवरधन दास पिता कर नाऊँ।
> कम्बू गोत माछिलै तासू, कलानूर पुरखन कर वासू।
> तात हमारो तहाँ सो आवा, पूरब दिशा कऊ दिन छावा।
> नगर लखनऊ बड़ा सो थानू, रुचिर ठौर बैकुण्ठ समानू।
> मेरो जनम यहैं ठा भयउ, कलानूर कबही नहिं गयऊ।।

दो० यद्यपि अब हूँ परदेसा । पै नित मति सुमिरौं सो देसा ।।
जैसे पंथी बसै सराई । मैंहुँ बिदेस रहौं तिन्ह नाई ।।

आपके गुरु का नाम रङ्गबिहारी था। रङ्गबिहारी जी स्याम दयाल भटनागर के शिष्य थे। रङ्गबिहारी जी लाहौर के निवासी थे।

अब गुरु देव केर गुन गाओं, रंग बिहारी जिन कर नाऊँ।
और बरनों सो कथा उज्यारी, जग जानी ज्यों रंग बिहारी।
आदि नगर लाहौर जिन्ह नाऊँ, जनम भूमि उन्हकै तिन्हठाऊँ ।।

इसके अतिरिक्त आपके विषय में कुछ पता नहीं चल सका है।

कथावस्तु

उज्जैन का राजा नल छत्रपतियों में सर्वश्रेष्ठ था। उसका पाडित्य न्याय तथा धर्म प्रियता संसार में विख्यात थी। उसके रूप की उपमा नहीं हो सकती थी 'ब्रह्म रूप जगदीय समाना, जिन्ह देखा सो देखि हिराना'। प्रेम-पंथ का वह सच्चा अनुरागी था। रात दिन प्रेमियों की कथाएँ सुन-सुन कर रोया करता था। विद्वानों से भी उसका बड़ा प्रेम था। सर्वदा राजसभा में विद्वान आया ही जाया करते थे। एक दिन सभा लगी थी। बात ही बात में प्रेम की चर्चा चल पड़ी और सौन्दर्य की बात छिड़ गई। विद्वानों ने कहा कि सोलह कलाओं से पूर्ण पद्मिनी नारी तो सिंहल द्वीप में ही मिल सकती है। इस पर एक भाटिन से न रहा गया। उसने हाथ जोड़कर कहा कि सिंहल द्वीप में पद्मिनी नारी तो होती है पर जम्बू द्वीप में एक ऐसी नारी है जिसका जोड़ा नहीं है। तदुपरात भाटिन ने कुंदनपुर नगर तथा वहां की सुन्दरियों के रूप का वर्णन किया। उसने बताया कि राजा भीमसेन के कोई सन्तान न थी। इसलिए वह दुखी रहा करते थे। कुन्दनपुर में तपस्वी आया था राजा उनके दर्शनार्थ गए। ज्ञान चर्चा के उपरात राजा को उन्होंने तीन सदाफल दिए और एक जंभीरी नीबू दिया। रानी ने उन फलों को खाया जिसके फलस्वरूप उन्हें तीन पुत्र और एक सुंदर कन्या दमयन्ती उत्पन्न हुई। भाटिन ने पद्मिनी के अपार नख-शिख सौंदर्य का वर्णन किया उसे सुनकर नल प्रेम और विरह से व्याकुल हो उठे। और राज कार्य से अलग रहने लगे। मन्त्रियों आदि ने उन्हे बहुत समझाया कि आपकी लोग हंसी उड़ाते हैं इसकी उन्होंने तनिक भी परवाह न की।

इधर नल के प्रेम की अनन्यता और सच्चाई ने दमयन्ती के हृदय में नल के लिए प्रेम जाग्रत कर दिया। इसमें सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि नल ने दमयन्ती के पास न तो कोई दूत ही भेजा था और न पत्र ही। किन्तु नल के प्रेम ने स्वतः दमयन्ती के हृदय पर प्रभाव डाला।

दमयन्ती भी नल के प्रेम को अपने हृदय में छिपाए विरह से व्याकुल रहती थी। दमयन्ती ने नल का चित्र अंकित किया और सबकी दृष्टि बचा कर वह रात भर उसे देखते देखते, रात आंखों में ही काट देती थी। दमयन्ती की धाय ने कुमारी की उदासीनता और व्याकुलता का कारण पूछा, कोई उत्तर न पाकर चुप रही। एक दिन एक सखी ने दमयन्ती को रात में चित्र देखते देख लिया। बात खुल गई और दमयन्ती तब से उस चित्र को रात दिन अपने पास रखने लगी। वह रो रोकर समय काटती थी और कृशांग होती जाती थी। इसे देखकर एक सखी ने सारा हाल पटरानी से कहा। पटरानी ने राजा से सारा हाल बताया। राजा ने स्वयंवर का आयोजन किया। नल भी आमंत्रित किया गया।

इधर भ्रमण करते हुए नारद को दमयन्ती के स्वयंवर का हाल ज्ञात हुआ। और वे इन्द्रपुरी पहुँचे। उस समय इन्द्र के पास यम वरुण और अग्नि भी थे। सबने दमयन्ती का सौन्दर्य सुना और उसे पाने के लिए लालायित हो गए। इन्द्र अन्य देवताओं के साथ कुन्दनपुर पहुँचे। किन्तु नल के सौन्दर्य को देख कर उन्हें अपने लक्ष के पाने में शंका होने लगी अतएव नल के पास पहुँच कर उन्होंने अपना संदेश दमयन्ती के पास कहलवाया। इन्द्र से अदृश्य होने का मंत्र पाकर नल पौरियों की दृष्टि बचाकर दमयन्ती के महल में पहुँचा। दमयन्ती नल को देखकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। थोड़ी देर नल एक टक उसके सौन्दर्य को देखते रहे फिर हृदय पर पत्थर रखकर उन्होंने इन्द्र का संदेश कहा। दमयन्ती ऐसा निष्ठुर संदेश लाने के लिए नल को उपालंभ देने और रोने लगी। फिर नल को इन्द्र के शाप से बचाने के लिए उसने कहा कि आप लौट जाइए मैं स्वयंवर में स्वयं आपका वरण करूँगी अस्तु नल से दमयन्ती का उत्तर पाकर चारों देवता नल का रूप धारण कर उसके पास बैठ गए। जयमाल लेकर आई हुई दमयन्ती कई नलों को देखकर आश्चर्य चकित हो गई। फिर ढारस बाँध कर उसने ईश्वर का ध्यान किया और अपने इष्ट को पाने की प्रार्थना की। ईश्वर ने उसकी विनती सुन ली और आकाश वाणी हुई जिसमें देवताओं के गुण बताए गए। इस दैवी संदेश को पाने के उपरान्त दमयन्ती ने यथार्थ नल का वरण किया। देवताओं ने दोनों को आशीर्वाद दिया और दोनों उज्जैनी आ गए। इन्द्र को स्वयंवर से लौटते हुए द्वापर और कलियुग मिले जो स्वयंवर में जा रहे थे। इन्द्र से दमयन्ती के वरण की कहानी सुनकर कलि को क्रोध आया और बदला लेने की दृष्टि से वह उज्जैनी पहुँचा। धर्म का वातावरण होने के कारण वह प्रवेश न कर पाया।

एक दिन नल सन्ध्या करके बिना पैर धोए सो गए। कलि को मौका मिला और वह पैरों द्वारा नल के शरीर में प्रवेश कर गया। द्वापर ने नल के भाई पुष्कर को जुआ खेलने के लिए प्रेरित किया। नल और पुष्कर में जुआ हुआ। नल हार कर जंगल में भटकते रहे। पक्षी पकड़ने में पक्षी द्वारा उनकी धोती को ले उड़ने की घटना घटी। दमयन्ती को छोड़कर राजा नल चले गए। दमयन्ती अकेले जंगल में भटकने लगी। एक दिन उसे एक अजगर निगलने लगा। एक ब्याधे ने उस अजगर को मार डाला पर वह दमयन्ती के रूप पर मोहित हो गया। दमयन्ती के सतीत्व के तेज से बलात्कार की चेष्टा में वह जल कर भस्म हो गया। कुछ ब्राह्मणों ने दमयन्ती को चन्देरी नगर पहुँचा दिया।

इधर नल को अग्नि की लपटों में घिरा हुआ एक सर्प मिला जिसने प्राण रक्षा की भिक्षा मांगी। नल ने उसे बचाया पर सर्प ने उन्हें डस लिया। नल सर्प के विष से काले पड गए। नल को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। सर्प ने कहा कि तुम्हारे दुर्दिन जब मिट जाएंगे तब हम तुम्हारा विष खींच लेंगे। इस समय अयोध्या में रितुपर्ण के यहा जाकर नौकरी कर लो। नल ने ऋतुपर्ण के यहा सारथी की नौकरी कर ली।

दमयन्ती के पिता ने नल के दुर्दिनों की सूचना पाकर उनकी खोज में आदमी भेजे। एक ब्राह्मण ने दमयन्ती को चन्देरी में पहचाना। तदुपरान्त दमयन्ती अपने पिता के घर पहुँची। कथा का अंत आगे पौराणिक गाथा के अनुसार ही हुआ है। केवल एक अन्तर मिलता है वह यह कि इस कथा के अनुसार नल वृद्धावस्था में दमयन्ती के मर जाने के उपरान्त अपने लड़के को राज्य देकर जंगल में चले गए। और वहीं समाधिस्थ अवस्था में उन्होंने अपना शरीर त्याग किया।

प्रस्तुत रचना मसनवी शैली मे दोहे चौपाई के क्रम से रची गई है। इसका प्रणयन शाहजहा के समय मे हुआ था। शाहे वक्त की वन्दना में कवि ने शाहजहा की न्याय प्रियता और उसके ऐश्वर्य का वर्णन किया है।

शाहजहां सुलतान चकता। भानु समान राज एक छता।
दिहली ज्या सुरज उजियारी। चहो ओर जस किरन पसारा॥

× × ×

न्याव नीत जो प्रागल गए। सो प्रथम पत के देखराए।
गऊ सिंह एक घाट पिआए। राव रंक सर कै दिखराए।
रहा न जग अमित कर चिह्ना। बाघ सौं बैर अज्या सुत लीह्ना॥

ईश-वन्दना, स्वपरिचय तथा गुरु वन्दना के उपरान्त कवि ने इस काव्य के रखने का कारण बताते हुए कहा है कि एक दिन महाभारत में नल-दमयन्ती का प्रेमाख्यान पढ़ते पढ़ते वह प्रेम की पीर से इतना व्याकुल हो उठा कि उसे तन-मन की सुधि न रही। इस प्रेम की पीर को सारे संसार में फैलाने की इच्छा से उसने इस ग्रन्थ की रचना की है।

प्रेम वैन मोरे मन आई। दवी अगिन यह दियो जगाई।
प्रेम उसास पौन सो बरुं। वार विरह वाती, वाती घृत डारूं।
प्रगट करूँ जो अलाव जग जानै। जो पेमै सिक कै सुख मानै।
पेम वीज लै पौध लगाऊ। अति पेमी जन तिन्हहि रिझाऊं।
इन्ह विच पेम खान हिय खोलूं। अवध अमोल वोल जग वोलूं।
विरह वेद वानी मुख आनूं। सान पेम सो पेन वखानूं।
और भाठी मद पेम च आऊं। नल कै कथा सो नल कै लाऊं।
ऐसो पेम मई मधु ढारों। जासों दया पेम पग वारों।
जिन्ह कै वात चाव उपजावे। जो सुन कहै सो उन कहँ जावै।
पेमी पीउ निहार जे चाखत छिन छक जॉह।
एक पियाला फिर पीवै, दोऊ भर अथदॉह॥

महाभारत के आधार पर होते हुए भी इसकी कथा वस्तु में कवि ने अपने रहस्यवादी और सूफी दृष्टिकोण के कारण कथा के प्रारम्भ में परिवर्तन कर दिया है। प्रारम्भ में राजा को प्रेमी के रूप में अंकित कर उसने इश्क हकीकी का परिचय दिया है और डोमिन के द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन कराकर उसमें प्रेम जाग्रत कराया है। यही नहीं 'हंस दूत' की प्रचलित कथा को उसने कहानी में कोई स्थान ही नहीं दिया है। उसके स्थान पर कवि ने नल के प्रेम की अनन्यता को ही दमयन्ती के प्रेम का कारण बताया है। दो अपरिचित हृदय भी अनजाने ही प्रेम के सूत्र में बँध सकते हैं यह बताना उसका उद्देश्य था। सम्भवतः उर्दू की इस भावना का कि—

तासीरे इश्क होती है दोनों तरफ जरूर।
मुमकिन नहीं कि दर्द इधर हो उधर न हो॥

कवि पर विशेष प्रभाव पड़ा है। इस परिवर्तन से कथानक का सौष्ठव तो नहीं बढ़ता लेकिन उसमें एक अलौकिकता और चमत्कारिता तो अवश्य आ गई है। कथानक का अन्त तो सर्वथा नवीन है। दमयन्ती की मृत्यु और राजा नल का सन्यासी होकर निकल जाना तथा समाधिस्थ अवस्था में उनका शरीरान्त वर्णन किसी भी अन्य काव्य में नहीं मिलता। आरम्भ और अन्त की नवीनता

इस काव्य में रहस्यवादी वातावरण को गंभीर बना देती है और लौकिक प्रेम में अलौकिक के आभास को स्पष्ट कर देती है साथ ही वह हिन्दू दृष्टिकोण की परिचायक भी है। दमयन्ती परमात्मा का प्रतीक नहीं है और न नल ही साधक के प्रतीक हैं। नल के हृदय में स्वाभाविक प्रेम लौकिक स्तर से होता हुआ पारलौकिक में सीमित होता है। गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए भी धर्म, काम और मोक्ष का समन्वय किस प्रकार हो सकता है यह काव्य उसी भावना का प्रतीक है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

काले सटकारे बाल कवियों के लिए विशेष आकर्षक रहे हैं और इन पर उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगाना और दूर की कौड़ी लाना प्रत्येक कवि की परिपाटी रही है। नख-शिख वर्णन में प्राचीन परिपाटी का अनुसरण सूरदास ने भी किया है।

प्रथम केस दीरघ घुघरारे, ठाड़े पांय परे अति कारे।
कोवंल कुटिल बरन सुठकारे, सकवकांह जनु नाग बिसारे॥

लेकिन इस प्राचीन परिपाटी में भी कवि ने शब्दयोजना से एक अद्भुत लालित्य उत्पन्न कर दिया है। उपर्युक्त अंश में 'सकवकाह' शब्द के द्वारा लहराते हुए काले और कुटिल गति से चलने वाले नागों की तुलना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। इसी प्रकार काले काले केशों के बीच सुन्दर श्वेत माग की रेखा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसकी यह माग ऐसी सुशोभित हो रही है मानो जमुना के बीच कनक की रेखा हो अथवा मुख रूपी सूर्य के प्रकाश से काली अंधेरी रात का हृदय दुख से दरक गया हो। कवि की यह उक्ति बड़ी सुन्दर एवं अनूठी बन पड़ी है।

अब बरनौं तिन्ह मांग निकाई, जमुना चीर कनक जनु आई।
तिन्ह पर पैर जाय तन पारा, अहा सों मन डूबे मझधारा।
मुख रवि कर प्रकास जस भयऊ, तब निस हियो दरक अस गयऊ।

बड़े बड़े अनियारे नेत्र चन्द्र बदनी के मुख पर ऐसे शोभा देते हैं मानो रूप के सरोवर में पड़े हुए दो सुन्दर जहाज सुशोभित हो रहे हों।

दीरघ अनियारे सुघर सुन्दर विमल सुलाज।
मुख छवि वारिध मनो नैन स्वरूप जहाज॥

कपोलों पर पड़ा हुआ तिल ऐसा प्रतीत होता है मानो रूप के दीप के लौ से भस्म होकर किसी का मन राख होकर रह गया है।

तिल कपोल पर कोटि छवि कहि न जाइ विस्तार।
बदन दीप छवि पतंग मन देखि जरा भै छार॥

सुराहीदार गर्दन तो मद से भरी मालूम होती है।

'जानो पेम मद भरी सुराही, गहन वाह रस लै सो चाही'।

भारतीय उपमानों के अतिरिक्त फारसी की उपमाओं की गहरी छाप भी हमें इनके काव्य में यत्रतत्र देखने को मिलती है। फारसी कवि कबाबे शीख के समान हृदय के झुलसाने वाले रूप की उपमा देते आए हैं। उनका संग-दिल माशूक अपने प्रेमियों के रक्त से होली खेलता आनन्द मनाता अंकित किया जाता है। इसी भाव की प्रतिच्छाया हमें दमयन्ती के रूप वर्णन में भी प्राप्त होती है जैसे—दमयन्ती की हथेली इसलिए लाल है कि वह अपने प्रेमियों के हृदय से खेलती रही है या सूर्य प्रातः काल इसलिए लाल दिखाई पड़ता है कि उसने विरहिणियों के हृदय का रक्त पान किया है।

'सूरज कांति भुज कंवल हथोरे। राते सौं रहर सो बोरे।
उबा नगर वन सुठ रहर चुचाते। वैरिन रहर पियत न अघाते॥
पुनि पहरे ससि नखत अंगूठी। जनु पावक रासिस गह मूंठी।
जो जिउ काढ़ हाथ पर लेई। सो तिन हाथन दिष्ट करेई॥

इस वर्णन में युद्ध भूमि में वर्णित यक्षनियों का रूप सामने आता है जो वीभत्स रस का द्योतक है रस राज शृंगार का नहीं।

रोमावली त्रिवली और कुचा के वर्णन में कवि ने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है—

हिय सरवर कुच कुंज करे। संपुट बंधे करेरे खरे।
निकसत किरन बदन ससि दई। निपट कठोर सकुच होइ गई।
ऊपर स्याम अधिक छवि छाई। ते अलि छौन पैठ जनु आई।
धरे मैन होउ लूट खिलौना। ऊपर स्याम लहाइ डिठौना।

शशिकुल से संकुचित कमल की उत्प्रेक्षा में कार्यकारण का सम्बन्ध बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ऐसे ही किसी सुन्दर वस्तु को नजर से बचाने के लिए डिठौने का प्रयोग नितान्त भारतीय ही नहीं वरन् भारतीय विश्वास का एक प्रतीक भी है। दोनों उपमाएँ बड़ी सुन्दर और अनूठी हैं। रोमावली की श्यामता और कटि की कृशता पर कवि ने भारतीय उपमानों का ही प्रयोग किया है।

अलख पेम चौगान हियु वाव खेल मैदान।
कुच मनोज साजे तहाँ, मनु गति गेंद निसान ॥

× × ×

कालिन्दी रोमावली, त्रिवली औघट घाट।
नाभि भँवर तन परयो तंह, कह निकसै किन्ह बाट।

यह कवि नख-शिख वर्णन में जंघाओं और त्रिवली आदि के वर्णन के अतिरिक्त और भी आगे बढ़ गया है। भारतीय दृष्टिकोण से गुप्तांग का वर्णन शृंगार रस के अन्तर्गत निषिद्ध है। किन्तु इस शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन इस रचना में हमें प्राप्त होता है। यह अवश्य है कि ऐसे स्थल की भाषा बड़ी परिमार्जित एवं आलंकारिक है जिसके कारण अश्लीलता का आभास प्रत्यक्ष नहीं दृष्टि गोचर होता फिर भी ऐसे अंश रसाभास के अन्तर्गत ही आएंगे[1]।

संयोग शृंगार

कवि ने जिस प्रकार नख-शिख वर्णन में उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग कर लालित्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है उसी प्रकार संयोग शृङ्गार में बड़े बड़े रूपकों का प्रयोग किया है जिनमें मदन की चढ़ाई और उसकी विजय के चारु चित्र अंकित किये गए हैं। यह अवश्य है कि संयोग के पूर्व हावों का वर्णन लगभग नहीं के बराबर है। स्वयंवर के उपरान्त प्रथम मिलन के लिए सखियों द्वारा सजाई हुई दमयन्ती को उसने साकार काम के कोप को जीतने के लिए युद्ध भूमि में जाती हुई वीरांगना के रूप में अंकित किया है। यह रूपक बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही है। इसमें स्त्री के शरीर पर उस समय पहनाए हुए अलंकारों के वर्णन के अतिरिक्त उसकी गति और भावभंगिमा का चित्र भी बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

कोप काम जीतन मनु चली। चढ़ी गयंद गौन पर अली॥
आंगा अङ्ग अङ्गी उजियारे। चीर खमक कुच पाखर डारे॥

---

१. नाभि सो निपट लाज के ठाउ। हौं अबला केहि भाँति बताऊ॥
मिरग खोल उपमा कित दीजै। जिउ को होन खेर तो कीजै॥
जोबन समुद सीप तिन्ह माहीं। स्वात बूंद रस पायस नाहीं॥
जिन्ह हत लिये स्वाति कर बुंदा। टिकत न अजहूं सम्पुट मूंदा॥
कवंल कली पै सुरज न देखा। मुख बाँधे निवसी तिन्ह रेखा॥
दुहु को सुरज माग को वली। जाको किरन खिली सो कली॥
वंह को भँवर बीध रस मानै। जीवन जनम सुफल कै जानै॥

भौंह धनुक बरुनी ते बानी । खरक दसन दुति अधर मसाना ॥
ठाड़ तिलक जमधर अनियारै । मानिक सांग गह सीस उद्‌धारै ॥
सोही चमक आरसी रही । बाएं हांथ ढाल जनु गही ॥
नैन चपल हैं कोतल कांछे । कजल बाग लगैं पुनि आछे ॥
पवन लागि अञ्चल फरहरा । सोई जान ध्वजा के धरा ॥
कटक कटाच्छ न जांह गिनावा । छदर घंट मारु जनु गावा ॥
रोमावली कमान अडोला । ढिगही कुच कंचन के गोला ॥

दो० फेरि भंवर सुर राजहीं, नूपुर बजहींनिसान ।
ऐसी सजि कामिनि चली, सेज जुद्ध मैदान ।

सखियाँ बीच में आकर थोड़े समय तक इस युद्ध में व्यवधान उत्पन्न कर देती हैं। पद्मावती में जायसी ने भी ऐसे स्थान पर रत्नसेन और पद्मावती के वार्तालाप में रसायन शास्त्र आदि का बखान कराया है। उसी का अनुकरण सूरदास ने एक स्थान पर किया है। ऐसे स्थान पर रहस्यवादी उक्तियां काव्य सौष्ठव की दृष्टि से अनुपयुक्त मालूम होती हैं किन्तु कवियों ने वस्तु को व्यक्त करने के लिए ऐसे स्थलों पर पहेलियों आदि का प्रयोजन किया है अस्तु सूरदास की ऐसी उक्तियों का परिचय निम्नांकित पंक्तियों में प्राप्त होता है।

जाइ सेज मन्दिर पग धारा । दुलहन चाँद सखी संग तारा ॥
अजहुँ प्रीतम दिस्टि न आवा । बीच सखी एक खेल उठावा ॥
पांच सखी चंचल अति तिन माही । निपट खिलारन खेल अघाही ॥
अंगय आह दमन होई गई । दूल्हन कर अन्तर पट भई ॥
देखन देह न कन्त पियारा । घर ही में अन्तर कर डारा ॥
सबही रचा खेल व्योहारू । लागी करन हांस कर चारू ॥
सुन दुल्हा दूल्हन हम पांहां । आवन देंह नतिन तुम पांहां ॥
जब लगि हंमह न खेल हरावहु । तौ लगिताह न देखन पावहु ॥

दो० सखी आपुनौ खेल सो, खेलै लागी खेल ।
दूल्हन तिनकर बस परी, पिउ सो होई न मेल ।

इन पहेलियों के बाद कवि ने संभोग शृंगार का वर्णन किया है। कवि का यह वर्णन सांकेतिक न होकर सश्लिष्ट है साथ ही कवि ने हावों आदि का भी संयोजन नहीं किया है। यही कारण है कि ऐसे स्थान पर कामुकता और लौकिकता के ही दर्शन होते हैं। कवि ऐसे स्थल पर यहाँ तक बढ़ा है कि उसने प्रथम समागम में होने वाले रक्तस्राव तक का वर्णन कर डाला है।

सम्पुट बंधी कली खिल गई। सिज्या पर बसंत रितु भई॥
इना वियोग होरी कर जारा। किन्ह बखान जौन विधि मारा॥

विप्रलंभ शृंगार

आश्चर्य है कि प्रेम की पीर से परिप्लावित इस काव्य में नल और दमयन्ती के वियोग की नाना मानसिक दशाओं की अभिव्यंजना में वह लालित्य नहीं मिलता जो संयोग शृंगार में मिलता है और न वह गहरी अनुभूति ही दिखाई पड़ती है जो जायसी के नागमती के वियोग वर्णन में दिखाई पड़ती है। दमयन्ती को जंगल में भटकती हुई अंकित करता हुआ कवि उसकी मानसिक अवस्था के विषय में कहता है—

तन बिन जीउ पीउ महँ जीऊ। तन महँ जीउ रहै सो पीऊ॥
मन पिउ मँह तन के सुध नाहीं। भौंती फिरे बीच बन माहीं॥

इस वर्णन में दमयन्ती की उन्मत्तावस्था का पता तो चलता है किन्तु बीच में इसे दार्शनिक तत्व को लाकर कवि ने इसकी सरसता कम कर दी है। जैसे—

'खोज खोज भई, खोज मिलै कोउ नाँह।
कंत गवायो गाँव मँह, कत पावै बन माँह॥

निरन्तर आँसुओं की बहती हुई धारा और अधरों पर प्रिय का नाम रटती हुई दमयन्ती का यह चित्र भी सुन्दर है। जैसे—

नैनह चली जाइ जल धारा। जनु समुद्र जल लीन्ह अकारा॥
उमग मेघ बरखन मनु लागे। चातक पिक बलेह अनुरागे॥

पत्ते के खटकने पर भी उत्सुक होकर दमयन्ती चौंक कर नल के आने की आशा से उस ओर देखने लगती है। यह स्वाभाविक है जब हम किसी की प्रतीक्षा में होते हैं तो एक हलका सा शब्द भी उसके आने का सूचक बन जाता है। इस मनोवैज्ञानिक अनुभव को कवि ने दमयन्ती के वियोग वर्णन में बड़े सुन्दर ढंग से दिखाया है।

पौन भकोर पात जो डोला। चौंक उठे जानहुँ नल बोला॥
धावत मिरग रूक जो आवै। होइ बिरूँधु पाछे उठि धावै॥

ऐसे ही हवा से भी वह प्रार्थना करती है कि मेरा संदेश मेरे प्रियतम के पास पहुँचा देना और कहना कि दमयन्ती को इस प्रकार तुम्हें छोड़ते क्या पीड़ा नहीं हुई?

अहो बयेर जंह जंह तुम डोलहु। तंह तंह यही वचन मुख बोलहु॥
संग सुवाइ छाड़ी दुख डाढ़ी। चादर चीर कियो लै आधी॥
बड़ो निठुर ति भई न पीरा। तन मन जीउ चीर ज्यों चीरा॥

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि सूरदास ने नल दमन में संयोग शृंगार पर अधिक ध्यान दिया है और वियोग पर कम। इसलिए इनकी इस रचना में विप्रलंभ शृंगार सम्बन्धी उक्तियां मिलती तो हैं लेकिन बहुत कम। दमयन्ती के विरह वर्णन से तो नल का विरह वर्णन अधिक सुन्दर बन पड़ा है।

दमयन्ती को छोड़कर चले आने के थोड़ी ही देर उपरान्त नल वियोग से पीड़ित हो उठे। और इस पछतावे में कभी वह अपना सिर धुनते थे और कभी भ्रमते हुए इधर उधर फिरते थे।

कबहुं सीस धुनै पछिताही। मनहुं नाग मनि बैठि गवाई ॥
बूझंह लोका बांह गहयाता। उतर न देह पेम मद माता ॥

उनके नेत्रों से अश्रुधार निरन्तर बहती रहती थी फिर भी हृदय को शान्ति नहीं प्राप्त होती थी। उनके दिन और रात कटे नहीं कटते थे। मन भ्रमित चकित तथा अशान्त हो भागता फिरता था।

विरह व्याध भयो जिउ लेवा। तरफै ज्यो नौ वझा परेवा ॥
जदपि नैन मेघ झर लावंह। आंसू नीर उन नदी बहावंह ॥
तदपि चित चातक न सिराई। कं तिन्ह स्वाति बूंद लव लाई ॥
दिव ज्यों त्यों दुख पीर सहारी। विरह रैन दूभर अति भारी ॥
तपा सूर दिन मैं निस मांही। नीरज नैन खुलै न मुंदाही ॥
मन भया भंवर भंवै चहुंओरा। वेक कमोदनि ज्यो गह मोरा ॥
चलंह भखरात तपत ऊस्वांसा। बढ़ी प्रेम मग पीपासा ॥

उनकी विरह की वेदना इतनी बढ़ गई थी कि उनका विलाप एक क्षण रुकता नहीं था। नल न स्वयं सोते थे और न किसी दूसरे को सोने देते थे।

अब अति झरै वकै औ रोवै। और न सोवन देह न सोवै ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि नलदमन में विप्रलंभ शृंगार हमें प्राप्त होता है उसमें मार्मिकता भी है किन्तु ऐसे स्थल कम हैं और हमारे विचार से कवि के संयोग एवं वियोग शृंगार का सतुलन नहीं कर सका है।

भाषा

जैसा कि हम पीछे कह आए हैं कि प्रस्तुत रचना की भाषा पूरबी अवधी है कवि ने स्वयं कहा भी है—

यारो पेह कछू में अखिया। इदक फिराक पूरबी भखिया ॥

किन्तु इसकी भाषा में ग्रामीणता नहीं मिलती वरन् वह शुद्ध, सरस और परिमार्जित है—

अब बरनौ तिन्ह मांग निकाई । जमुना चीर कनक जनु आई ॥
तिन्ह पर पैर जाय तन मारा । अहा सो मन डूबै मझधारा ॥

हम यह कह सकते हैं कि सूरदास के नलदमन की भाषा में हमें जायसी की भाषा की तरह सरसता और भावव्यञ्जना की शक्ति मिलती है ।

पुस्तक के प्रारम्भिक अंश में जहाँ कवि ने इस रचना के उद्देश्य का वर्णन किया है वहाँ की भाषा कुछ पंजाबी मिश्रित है । सम्भव है कि इस स्थल पर अपनी मातृ भाषा के ज्ञान को दर्शाने के लिए कवि ने ऐसा प्रयोग किया हो क्योंकि कवि को अपनी भाषा पर भी अभिमान था ।

'हौं अपनी भाषा भी जानूं । नुकता नुकता सब पहचानूं ॥
उस भाषा विच शैर घनेरे । इश्क हकीकत अँखें मेरे ॥
अस अपनी भाषा विच बानी । बनै भली पै कोदह सतरानी ॥
होवै मरसैं कल जो कामी । जिस किस तां सो जाइ न बखानी ॥
बाज पारखी होरे ना जानै । रतन पारखी रतन सजानै ॥

भाषा का यह पंजाबीपन आगे कहीं नहीं मिलता ।

छन्द

प्रस्तुत रचना प्रेमाख्यानों की परम्परा मे दोहा-चौपाई छन्द मे रची गई है और इसमें आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम साधारणतः प्राप्त होता है ।

अलंकार

अन्य प्रेमाख्यानक कवियों की तरह इस कवि ने भी सादृश्य मूलक उपमा अलंकार का बहुतायत से प्रयोग किया है । इसके साथ ही साथ हेतूत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं ।

रहस्यवाद

प्रस्तुत रचना मसनवी शैली मे लिखा हुआ एक प्रेम प्रबन्ध है जिसपर सूफियों का गहरा प्रभाव पड़ा है । प्रेम की मधुर पीर और उससे जनित विरह की मीठी कसक का रसास्वाद कराते हुए प्रेम मे अलौकिक-लौकिक की झांकी दिखाना ही इस कवि का उद्देश्य था । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उसने राजा नल को प्रेम का पुजारी अंकित किया है जो सदैव प्रेम की कथाएँ सुनकर रोया करता था । इस प्रेम परिपूरित हृदय को केवल एक ठेस ही लगनी शेष थी जिसे डोमिन ने दमयन्ती का रूप वर्णन कर पूरा किया । कथा का आरम्भ अलौकिक वातावरण मे होता है । डोमिन के द्वारा कुन्दनपुर के सरोवरों, वृक्षों, पक्षियों आदि के वर्णन मे कवि ने प्रकृति-रहस्यवाद का संयोजन

किया है। डोमिन कहती है कि वहाँ के पेड़ इस प्रकार खड़े हैं मानों वह परमात्मा के प्रेम और उसके ध्यान में मस्त होकर एक पैर से खड़े हैं।

प्रभु के प्रेम गड़े होई गाढ़े। तिनहीं ध्यान एक पग ठाढ़े ॥
ज्यों-ज्यों पेग अगिनि तन जारे। कै पतझरि ठूठ कर डारे ॥

उनमें होने वाली पतझड़ नहीं है वरन् प्रेम की अग्नि में वे अपने बाह्य सौन्दर्य और आडम्बर को भस्मीभूत कर रहे हैं। उसी प्रकार विरह में जलते हुए वहाँ के पक्षियों की भी बुरी अवस्था है! कोकिल विरह से काली दिखाई पड़ती है, मोर उसी से विकल होकर कूकता है।

कोकिल विरह जरी भइ कारी। कुहू-कुहू सब दिवस पुकारी ॥
× × ×
महर जो पेम दाह दह रही। तिन दुख सदा पुकारे दही ॥
मोरो निपट पेम दुख दाई। निसु दिन मेउ मेंउ चिल्लाई ॥

दरके हुए अनार और फाँक-फाँक हुई नारंगी अलौकिक विरह के कारण जान पड़ते हैं।

नारङ्ग विन वन्ह पेमी सोई। फाँक-फाँक जाकर हिय होई ॥
कहै देखाई दरार अनारा। सो पेमी जो हिये दरारा ॥

महुआ, आँवले और खिरनी भी उसी विरह का अलख जगा रही हैं।

महुआ टपक देखावंह रोई। मात मोह मद यह गन हाई ॥
खिरनी कहै देह यह खिरनी। चेतन बहुत खरी सो करनी ॥
अमलै कहै मोहि मधु अमले। जाग नींद मेटी सो मिले ॥

ऐसे ही पुष्प भी विरह में मदमाते दिखाई पड़ते हैं।

बुल बुल कहै जो पिउ विरह, घुल घुल काली देह।
सोई मन पिउ मिलै, रलै रसीले नेह ॥

कुन्दनपुर के पक्के सरोवर मानो प्रेम की अग्नि मे पकाई हुई मिट्टी में बने हैं। जिनमें उठती हुई तरंगे प्रेम की हिलोरे हैं जो डबडबाई हुई आँखो की तरह सुशोभित हो रहे हैं।

चहुं दिसि पोक पार बनाई। पाक पेम जनु मिटि कचाई ॥
जदपि पेम हिलोर उठावै। उमंग आंस जल ढरन न पावै ॥
नीरज नैन पेम रंग राते। पुतरी चंवर मीत मद माते ॥

पनघटों पर पनिहारियों का रूप देखने योग्य है।

सारी सुरंग हरी रंग अंगी। अति छीनी जानो उर नांगी ॥
प्रगट कवॅल कुच दीन्ह दिखाई। निरखत मन मधुकर होइ जाई ॥

लेकिन यह पनिहारियाँ पनिहारियाँ नहीं हैं वरन् वे जगत की प्रपञ्च मयी माया का रूपान्तर हैं। इनके फेर में पड़कर मनुष्य अपनी पूंजी को खोकर पछताता रह जाता है।

माया रूप धरे अति मीठी। मोहन मंत्र बसै तिन दीठी॥
जो चित देइ चतुर यह माहा। चित चितवत चराहिं तिन्ह पाहां॥
तिनसो उरझि धने चित खोवा। और देइ सीस हाथ बहु रोवा॥

किन्तु इन्हीं पनिहारियों में कुछ ज्ञानमयी भी हैं जो अपनी उन सखियों को समझाती हैं जो सदैव नीचे की ओर देखती हुई केवल अपने घर का ही ध्यान करती हैं। वे उनसे कहती हैं कि दृष्टि को सीधी कर देखो, राह रपटीली है, सर पर बोझ है, ऐसा न हो कि पैर फिसल जाय और तुम घड़ा फोड़कर खाली हाथ घर लौटो।

लेजू पाट गहे गह हाथैं। नैनन्ह पानी कलसा माथैं॥
निपट लाज सो आवहि जाहीं। पायन दिस्टि सुरत घर माहीं॥
जो कोइ सखी नेक दृग फेरे। 'सूफी' दिस्टि बंक कर हेरे॥
मिल सब सखी ताह समुझावहं। जन परदेसिन्ह पंथ बतावहं॥
बलि चेतहु घर मन देहू। बाकी दिस्टि सूध कै लेहूँ॥
माथें बोझ बाट रपटीली। रपट परैं टुक होइ छबीली॥
जो घट फोरि जाहु घर छूछें। का पुनि कहहुँ कंत जब पूंछे॥

उपर्युक्त अंश में सूफ़ी दृष्टिकोण को बड़ी सुन्दरता से सामने रखा गया है इस ससार की रपटीली राह में कर्मों का घड़ा सर पर रखकर चलने वाली पनिहारी तनिक भी चूकने पर अपना अनिष्ट कर सकती है और उसे खाली हाथों प्रिय के पास आना पड़ेगा। पनिहारी का रूपक जहाँ आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को स्पष्ट करता हुआ अन्तस्साधना तथा यम-नियम आदि अंगों का ओर इङ्गित करता है वहीं भरे घड़े के टूटने के फारसी प्रतीक द्वारा जन्मान्तरवाद का भी पोषण करता है।

रपट फोरि घट खोई जल, बिन पानी बिल्लाहि॥
पुनि धौं कब आवा चढ़ै, कब कुम्हार कँह जांहि॥

माया की ठोकर से टूटा हुआ घट (शरीर) पता नहीं फिर कब पुनर्निर्मित होकर प्रेमामृत से पूर्ण होने के लिए मिल सके इसीलिए हमें अपने हाथ आए हुए अवसर को बड़ी संलग्नता से काम में लाना चाहिए।

कुन्दनपुर के उच्च सौध मन्दिर और राजा के गढ़ वर्णन में योग-साधना को

भावना मिलती है जो मेरुदंड पर स्थित सहस्रार्ध कमल, अनहत नाद और ब्रह्मरंध्र का प्रतीक है।

बड़ी पंवर पर ऊंच दिवारा। तिन्ह ऊपर बाजे घर बारा॥
चेतन पुरुष बैठ घर बारी। घरी घरी जन साधु उतारी॥

यही आगे चलकर शरीर में स्थित आत्मा का भी प्रतीक है।

जनु गढ़ कहै कि समुझि नर, तू गढ़पति गढ़ माहिं।
ज्यों मोसो गढ़पति सदा, जदपि मोहिये माहिं॥

दमयन्ती के सौन्दर्य में भी अलौकिकता या चमत्कार और पर शक्ति के सौन्दर्य का आभास मिलता है। किसी किसी स्थान पर तो 'पद्मिनी' के सौन्दर्य की तरह प्रतिबिम्बवाद और परमात्मतत्व का आभास भी पाया जाता है। जैसे–दमयन्ती की दृष्टि से कौन ऐसा है जो न बंधा हो।

देखै बीधत कथन का, सुन बेधा ससार॥
जो नै सुना सो बिध रहा, कह न जांइ विस्तार॥

यही नहीं हमें जायसी की उक्ति 'हंसत जो देखा हंस भा निमल नीर सरीर' की प्रतिच्छाया दमयन्ती में प्राप्त होती है।

जाकी दिस्टि परी यह कौंधा। नैनन लागि रहे तिन्ह चौंधा॥
पाहन रतन होहं सो जोती। होहं सजोत न जाते जो मोती॥
मेरे जान बिहंस जब बोली। यहै चमक चपला भइ डोली॥

सारा संसार उसके चरणों से लिपटा हुआ है किन्तु वह किसी से प्रेम करेगी या नहीं—

तिन्ह चरनन उरझा जगत, रहा आस जिय लाइ॥
सो पुनि वह कापर धरै, रीझै न जानी जाय॥

नारद के वचनों में दमयन्ती का ईश्वरीय अंश साफ निखर उठा है।

चरनहु रुपहि रूप जिन, घट घट रहा समाइ॥
जिन हेरा तिन हेरि छवि, आया दीन्ह हिराई॥

जहाँ हमें प्रकृति चित्रण में चेतन प्रकृति की रहस्यमयी अनुभूति का परिचय मिलता है, पनिहारियों में ज्ञानमयी और अज्ञानमयी माया का रूप देखने को मिलता है तथा दमयन्ती के सौन्दर्य में परम सौन्दर्य का आभास प्राप्त होता है वहीं संयोग शृंगार में सूफियों के इश्क हकीकी और वस्ल का चित्रण, पंच इन्द्रियों का समागम में व्यवधान उपस्थित करना आदि बड़े मार्मिक रूप में प्राप्त होता है। सखियों से घिरी हुई दमयन्ती उसी प्रकार शैय्या पर पहुँची जिस प्रकार चाँद तारों से घिरा हुआ आकाश पर सुशोभित होता है। किन्तु

पाच सखियों ने चंचलता में ऐसा खेल रचाया कि प्रिय की दृष्टि से प्रियतम ओझल हो गया।

अजहूँ प्रीतम दिस्टि न आवा। बीच सखी एक खेल उठावा॥
पंच सखी चंचल अति तिन मांहि। निपट खिलारन खेल अवाही॥
आगे आइ दमन होइ गई। दूल्हन कर अन्तर पट भई॥
देखन देह न कन्त पियारा। घर ही में अन्तर कर डारा॥
सबही रचा खेल ब्योहारू। लागी करन हास कर चारू॥
सुन दूलह दूलहन हम पांहा। आवत देंह न तिन तुम पांहां॥
जब लगि हमेंह न खेल हरावहुँ। तौ लगि ताह ने देखन पावहु॥
दो० सखी आपुने खेल सो, खेलै लागी खेल।
दूल्हन तिनकर बस परी, पिउ तो होइ न मेल॥

जायसी ने पद्मावती और रतनसेन से रति के पूर्व वादविवाद कराया है जिसमे 'पद्मिनी' ने रत्नसेन को इश्क हकीकी की सीख दी उसका स्पष्ट प्रभाव इस स्थल पर दिखलाई पड़ता है किन्तु सूरदास का वर्णन अधिक नाटकीय है जिससे रस परिपाक मे व्यवधान नहीं पड़ता।

विवाह के उपरान्त विदा होती हुई नव वधू का, आत्मा का परमात्मा के पास जाने वाला रूपक जो सूफियों के 'फ़ना' का परिचायक है हमे दमयन्ती के बिदाई के वर्णन मे दिखाई पडता है।

कोरा गहि जब कन्त बुलावै। सबही समद विवान चढ़ावै॥
रोवंह भाई बाप महतारी। रोवंह सखी जिनहीं अति प्यारी॥
सब रोवंह झंखह मन मांहा। बस न चलै चली धन ताहा॥
कीन्ह पयान विवान उठावा। चोठ करारन्ह राम चलावा॥
लाख लोग जे हितू कहाए। तिनूह छन मे भए पराए॥
गौन संग चला न कोई। सब मिल ततखन कीन्ह बिछोई॥

आत्मा के प्रयाण का यह रूपक दमयन्ती के पुनः स्वयंवर की सूचना पाकर जाते हुए रितुपर्ण के वर्णन मे बडा स्पष्ट है।

काया रथ मन सारथी, तन में राजा प्रान॥
छिन में सौ जोजन चलै, स्वास चपल है जान॥

जिस प्रकार पद्मावती और रत्नसेन सूफी दृष्टि के अनुसार साध्य और साधक के रूप में अवतरित किए गए हैं उसी प्रकार दमयन्ती और नल भी आत्मा और परमात्मा के रूपान्तर होकर साध्य और साधक के रूप में दिखाई पड़ते हैं। 'भारतीय माधुर्य भक्ति' के अनुसार प्रेम का पवित्र बन्धन और प्रियतम के हृदय

में स्थान उस समय तक नहीं प्राप्त हो सकता जब तक उसका 'अनुग्रह' न हो। साधक केवल आत्मसमर्पण कर सकता है। अपनाना या न अपनाना उसी के हाथ है। नल दमन में हमें इन दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय परिलक्षित होता है। दमयन्ती नल के लिए विलाप करती हुई कहती है—

पिउ मो में यह बल नाहीं, जौ आप मिलौ तुम आइ।
जब लग तुमहीं कृपा कै, लेहु मोहि मिलाइ।
हौं अनाथ कछु होय न मोसों। जो कछु होय नाथ सब तोसों॥
मोसों यहै पेम दुख भरना। नाउ तिहारो सुमिरन करना॥
यह बल नाहि कि तुम पँह आऊं। मिलि कै तन कै तपन बुझाऊं॥
तुमही प्रघट होहु जो आई। आपा आन देहु आन दिखराई॥

इस अंश में जहाँ भारतीय नारी की पति-निर्भरता मिलती है वहीं एक भक्त की भगवान से विनती के साथ ही साथ आत्मसमर्पण और भगवान को सगुण रूप में देखने की याचना परिलक्षित होती है जो शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण की परिचायक है। अनुग्रह की महिमा और उसकी याचना भी बड़े सुन्दर ढंग से कवि ने एक स्थान पर व्यंजित की है।

दो० जदपि पीउ को चाह बिन, पीउ को चहै न कोइ।
पिउ पियार पुनि तिन्ह चहै, जाह चाह जिउ होइ।

इसी 'अनुग्रह' की महिमा को पुष्ट करने के लिए ही कवि ने दमयन्ती के हृदय में स्वयंभू प्रेम उत्पन्न किया है। दूत या हंस का माध्यम ही हटा दिया है।

जहाँ उपर्युक्त अवतरणों में दमयन्ती आत्मा के रूप में नल से विनती करती हुई दिखाई पड़ती है जो उसके लिए परमात्मा है वहाँ दमयन्ती के वियोग और उसकी स्मृति में खोए नल का वर्णन एक हठयोगी साधक की अनन्य भक्ति और समाधिस्थ अवस्था का चित्र अंकित करता है—

'जनु अवधूत रोक तनु सासा। मन लै गयौ प्रान कै पासा॥
काया समुझ आप सो न्यारी। रहा लगाय तिन्हैं सन तारी॥
अब तन सो कुछ रहा न नाता। मन तन त्याग मीत रंग राता॥

इस हठयोगी साधना की आवश्यकता दमयन्ती के पिता भीमसेन को उनके नगर में आया हुआ सिद्ध बड़े स्पष्ट शब्दों में बताता हुआ कहता है कि जब मनुष्य अपने मनरूपी दर्पण को भली प्रकार स्वच्छ कर लेता है तब उसे परम ज्योति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ने लगता है और उस समय अनहद नाद को सुनता हुआ वह 'सहज' का अनुष्ठान करता है। इस 'सहज-प्रियतम' के संयोग

द्वारा साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है और आत्मा-परमात्मा के बीच द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है। इस अद्वैतावस्था में साधक परम ज्ञान का लाभ कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्रथम मांज मन दरपन काई। तब निरमल छवि देह दिखाई॥
सो हों स्वास सबद मत कला। सह जंइ जाइ रैन दिन चला॥
तासो छज सोई मन मांजे। मांज ज्ञान अंजन दृग आंजे॥
अबरहं नैन ज्ञान हिय होई। रहै न द्वैत रहस होइ सोई॥
मुकत होइ अलख जब सूझै। सहजै सकल मरम तब बूझै॥

कहना न होगा कि सम्पूर्ण रचना में जहाँ हमें स्थान-स्थान पर सूफियों के प्रेम की पीर उनके साधन की चार अवस्थाओं शरीयत, तरीकत, मारिफत, हकीकत एवं स्थानों जैसे वस्ल, बका, और फना के दर्शन होते हैं वहीं सिद्धों के हठयोग, शंकर के मायावाद, वल्लभ की माधुर्य भक्ति एवं वैदिक अद्वैत वाद और पाराशिक बिम्बप्रतिबिम्बवाद के भी दर्शन होते हैं। पूरी रचना रहस्यवाद के गम्भीर वातावरण से परिव्याप्त होते हुए भी उसकी गरिमा के भार से दबी हुई न होकर हलकी सुन्दर और हृदयग्राही है। भाषा और भाव का लालित्य ओज और प्रसाद गुण एवं कल्पना की ऊँची उड़ान तथा अनुभूति की गहराई ने इसे उत्कृष्ट रचना बना दिया है।

इस दृष्टिकोण को सामने रखते हुए प्रश्न उठता है कि क्या यह काव्य एक अन्यापदेशिक काव्य है? जायसी ने पद्मावत को अन्यापदेशिक काव्य कहा है किन्तु वह पूर्वार्द्ध में ही घटित होता है। नूर ने कहीं भी इसे इस नाम से नहीं पुकारा है इन्होंने अपना उद्देश्य तो पहले ही बता दिया है कि वह प्रेमाग्नि से संसार को दग्ध करना चाहते हैं इसलिए उन्होंने उसकी रचना की—

ऐसो पेम मई मधु ढारी। जासो दया पेम पग चारी॥
जिन्ह के बात चाव उपजावै। जो सुन कहै सो उन कह जावै॥

वह यह जानते थे कि इस प्रेम के पीर की एक बार अनुभूति हो जाने पर परम सत्य की अनुभूति में प्राणियों को देर न लगेगी। जिस प्रकार काठ से अग्नि प्रकट होकर काठ को जला देती है उसी प्रकार इस पंचभूत शरीर में प्रकट हुई सच्चे विरह की अग्नि पंचभूतों और माया के बन्धनों से आत्मा को स्वतन्त्र कर परमात्मा तक पहुँचाने में सहायक होगी।

अगिन प्रकट जब काठ तें, काठे देइ जराइ।
तबहि काठ तासों मिलै, नातर मिलै न जाइ।

इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने इस लौकिक प्रेमकथा को अलौकिकता से अनुरंजित कर उपस्थित किया है कहीं-कहीं लौकिक पक्ष में अलौकिकता का अंश दब न जाय इसलिए स्थान-स्थान पर उसे बड़े कलात्मक ढग से वह अभिव्यंजित करते गए हैं, जिसके कारण 'नल-दमन' आत्मा-परमात्मा के प्रतीक मालूम होने लगते हैं किन्तु कथा का अन्त लौकिकता को स्पष्ट कर देता है अगर इस काव्य को आन्यापदेशिक काव्य बनाना हो कवि को अभीष्ट होता तो वह दमयन्ती और नल के वृद्धावस्था का वर्णन न करता। इसलिए कि भारतीय विचार के अनुसार आत्मा और परमात्मा अनादि और अनन्त हैं । लेकिन यहाँ कवि स्पष्ट रूप से कहता है—

चलत-चलत जौवन चल भयेऊ। रहा न रूप रङ्ग उड़ गयऊ ॥
सूखा सरवर रहा न पानी। दाऊ कवल वेलि मुरझानी ॥
तिन्ह सब अङ्ग रङ्ग पलटाए। भवर केस वक रूप दिखाए ॥
दो० तन फुलवारि निपट गयो, जस आन हेमन्त।
ताहि पन भई वसंत पुनि हहि फिर पति न वसन्त।

यही नहीं उन्होंने दमयन्ती की मृत्यु के उपरान्त नल को अपने पुत्र को राज्य भार सौंप कर जङ्गल में तपस्या करने और वहाँ परम हंस को प्राप्त करने की घटना का वर्णन किया है।

'मन तिन्ह देइ तन सुख गंवाई। प्रान तिनहिं में रहा समाई ॥
उपज ज्ञान अज्ञान हेराना। चल वियोग संजोग समाना ॥
सुमिरन भजन विसर सब गयऊ। जाकर भजै सोऊ अब भयऊ ॥'

अगर कवि का उद्देश्य रचना को पूर्ण रूपेण आन्यापदेशिक काव्य ही बनाने का होता तो वह दमयन्ती की मृत्यु, नल के वाणप्रस्थ लेने और योग साधना में तल्लीन होकर परमात्मा से तदाकार हो जाने की बात का उल्लेख न करता। अस्तु यह काव्य बीच-बीच में अन्योक्ति पूर्ण होते हुए भी आरम्भ से अन्त तक 'अन्यापदेश' नहीं कहा जा सकता।

———

नल दमयन्ती चरित्र

(नल पुराण)

—सेवाराम कृत

—रचनाकाल—सं० १८५३ के पूर्व

—लिपिकाल—१८५३

कवि-परिचय

प्रस्तुत रचना कवि ने किसी राम पाल के लिए की थी। यह रामपाल कौन थे पता नहीं। न कवि के विषय में ही कुछ ज्ञात है।

कथा वस्तु

कवि ने पौराणिक गाथा के प्रारम्भ और मध्य में कई परिवर्तन कर दिए हैं। अस्तु इसका संक्षिप्त कथानक निम्नलिखित है :—

मानसरोवर में एक हंस रहता था जो स्वर्ण के समान पीत वर्ण था। तथा वेदों और स्मृतियों का पण्डित था। भूमि के दर्शन करने के लिए वह एक बार पृथ्वी पर आया। दक्षिण देश में एक विचित्रनगर था वहाँ का राजा सिंहघोष था। उसके दमयन्ती नाम की एक अनुपम सुन्दरी कन्या थी। वह दस सहस्र सखियों के बीच में रहती थी और आनन्द क्रीड़ा किया करती थी। एक दिन एक सखी ने उसे 'कोक' पढ़कर सुनाया जिससे उसकी सुध बुधि में विकार हुआ।

'एक जुतीय 'कोकिन' जु पढ़ी दिन प्रति दिन सुधि बुधि अति बढ़ी।'

एक दिन चित्रसारी पर दमयन्ती अपनी सखी चित्रा के साथ चढ़ी उसी समय वह हंस भी थक कर वहीं आ बैठा। दमयन्ती के रूप को देखकर वह अपने को भूल गया और उड़कर दमयन्ती के हाथों पर बैठ गया।

हंस को हाथ पर बैठा देखकर दमयन्ती ने उससे पूछा कि तुम तो मानसरोवर के वासी हो पृथ्वी पर कैसे आए ? हंस ने उत्तर दिया मैं ब्रह्मा की बनाई

को देखने निकला था। इस पुर में आकर बड़ा सुख पाया। वास्तव में रे हाथों और कमलों में कोई अन्तर नहीं है। तुम्हारा सौन्दर्य अद्वितीय ऐ राजकुमारी मेरे हृदय में तुम्हारे लिए दया उत्पन्न हो गई है। मैं समान तुम्हारा वर खोजूंगा। वह योगी होगा, वीर होगा और कामकामी भी होगा। जब तक मैं तुम्हारे लिए ऐसा वर न खोज लूं तब तक मैं विधि का वाहन होने योग्य न कहाऊं। दमयन्ती इसे सुनकर प्रसन्न हुई और उसने कहा कि तुम अपने वचन को मत भूलना।

इसके बाद इधर उधर वर की खोज में घूमता हुआ हंस नरवर पहुँचा और राजा नल के सौन्दर्य पर मोहित हो गया और सोचने लगा कि दमयन्ती के लिए यही उचित वर है यह सोचकर उसने नल के हाथों का स्पर्श किया। नल ने इतने सुन्दर हंस को देखकर उसे पकड़ने की इच्छा से हाथ बढ़ाया। हंस बोला कि मुझे क्यों पकड़ते हो। मैं तो देश देश का भ्रमण करने निकला हूं। नल ने कहा भाई तुम तो मानसरोवर के वासी हो नीर-क्षीर विवेकी हो मोती चुगने वाले हो फिर तुम मेरे हाथों पर क्यों आ बैठे।

हंस ने कहा कि मैंने भ्रमण करते हुए सिंघघोष की पुत्री दमयन्ती को देखा है उसके समान सुन्दरी ससार में नहीं है। मैं अब उसके लिए वर ढूढ़ रहा हूं तुम ही मुझे उसके लायक लगे हो मेरी बात मान लो नल ने इसे स्वीकार कर लिया। हंस ने लौटकर दमयन्ती को सारा हाल बताया। और फिर मानसरोवर लौट गया। दमयन्ती तब से नल के लिए पीड़ित रहने लगी। उसकी सखी चित्रा ने नल का एक चित्र निर्मित किया। दमयन्ती सदा उसे हृदय से लगाए रहती थी।

दमयन्ती के पिता ने उसके स्वयंवर की घोषणा की। नल भी स्वयंवर में जाने के लिए चला। नारद से इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी दमयन्ती के के सौन्दर्य और स्वयंवर की चर्चा सुनी थी इसी उद्देश्य से वह भी जा रहे थे। इन्द्र ने नल को देखकर उन्हें अपना दूत बनाया और दमयन्ती के पास अपने विवाह का संदेश लेकर भेजा। दमयन्ती ने उसे अस्वीकार कर दिया। इसके अनन्तर कथानक महाभारत के अनुसार ही मिलता है।

दमयन्ती को विवाह कर नल सौ योजन पहुँचे तब इन्द्र ने उनके मार्ग का अवरोध किया। और कहा मुझे दमयन्ती दे दो या युद्ध करो। नल और इन्द्र में युद्ध होने लगा। युद्ध की भयंकरता देखकर नारद ने दोनों का बीच बचाव किया। देवता और मनुष्य के बीच युद्ध को उन्होंने अव्यवहारिक बताया। इन्द्र ने युद्ध तो बन्द कर दिया किन्तु नल को बारह वर्ष तक पत्नी के बिछोह

का शाप दिया। शाप का *समय आया और नल ने अपने भाई पुष्कर से जुआ* खेलने की इच्छा प्रकट की। पुष्कर ने उन्हें बहुत मना किया किन्तु जब वह नहीं माने तब जुआ हुआ और नल हारे।

लेखक ने नल और दमयन्ती पर जंगल में पड़ने वाली आपदाओं को तनिक और विस्तृत कर दिया है तथा इन घटनाओं में चमत्कार लाने का भी प्रयत्न किया है। *जैसे—नल ने भूख से पीड़ित होकर एक मछली पकड़ी किन्तु जिस* समय दमयन्ती ने उसे भूनने के लिए छुआ उसी समय उसकी उँगलियों के अमृत से जीवित होकर मछली पानी में कूद गई। नल ने फलों को तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाए और पेड़ ऊँचे हो गए। क्षुधा से पीड़ित होकर उन्होंने एक तीतर को उसकी पत्नी और बच्चों के साथ पकड़ा। किन्तु जैसे ही उसे भूनने चले *अग्नि ठंडी हो गई और एक-एक कर तीतर उड़ने लगे। तीतर के बच्चों को* पकड़ने के लिए नल ने अपनी धोती फेंकी लेकिन वे धोती सहित उड़ गए। एक रात दमयन्ती को सोता छोड़ नल चल दिए। आगे की घटनाएँ महाभारत के अनुकूल हुई हैं।

प्रस्तुत कथानक के प्रारम्भिक परिवर्तनों में सूफियों की रूढ़ि का प्रभाव विदित होता है। नल और इन्द्र से युद्ध कराकर कवि ने नायक को धीरोदात्त नायक अंकित करने का प्रयत्न किया है। साथ ही सूफी कथानकों की कथा का संयोजन और लोकवार्ताओं की परम्परा का अनुसरण परिलक्षित होता है।

इन्द्र का शाप और उर्वशी के द्वारा ऐच्छिक फल की प्राप्ति का वरदान एवं गणेश की पूजा और स्थापना के वर्णन द्वारा इस कथा में दैवी शक्तियों का योग भी सूफी शैली के अनुसार ही है। इन परिवर्तनों से आश्चर्य तत्त्व इस कहानी में महाभारत से अधिक मिलता है।

कवि ने नल पुराण की रचना की है। जिसका उद्देश्य गणेश महिमा का वर्णन करना है। कथा का प्रारम्भ गणेशायनमः से होता है। कृष्ण जी युधिष्ठिर से गणपति की पूजा करने को कहते हैं और उसी सम्बन्ध में नल चरित्र उन्हें सुनाते हैं।

हे नृप गणपति पूजन कीजे। अरि को जीत परम सुख लीजे।
सनों एक अतिहास सुचपाला। है बन में तुम को सुख शाला।
सुत समान छिति पाल कीनौं। मन वांछित दीनन को दीनौं।

सम्पूर्ण कथानक में स्थान स्थान पर कवि ने गणेश की महिमा का वर्णन किया है। दमयन्ती से उसकी सखी चित्रा नल को ढूढ़ने के लिए ब्राह्मणों को भेजने के पूर्व गणेश की स्थापना और पूजन और व्रत के लिए कहती है।

या व्रत का देवांगना करै।
जानि उरवशी चित्र में धरै।
सुर मुनि जन ताको धावै।
सो निज मन वंछित फल पावै।

इसी प्रकार उर्वशी दमयन्ती से वन में गणेश की स्थापना करा कर पूजा कराती है और वांछित अभिलाषा पूर्ण होने का वरदान देती है। तदन्तर गणेश महिमा के वर्णन में ही काव्य का पर्यवसान होता है। दमयन्ती और नल ने राज पाने के उपरान्त गणेश की वन्दना की।

दमयन्ती महलन में गई। संग विचित्रा आनंद भई।
नल ने पंडित राज बुलाए। गणपति के निज मंत्र जपाए।
ऐसे गणपति दीन दयाला। नल राज दियों भू पाला।
जो जन गुण गणेश के गावें। भवसागर के दुख नसावें

श्री कृष्ण के द्वारा गणेश की इस प्रकार वन्दना कराकर कवि ने गणेश पद के महत्व को बढ़ाया है।

संपूर्ण काव्य में नीति विषयक सूक्तियाँ सती स्त्री के तेज का दर्शन तथा पति-परायणता के उदाहरण बिखरे मिलते हैं। प्रेम काव्य होते हुए भी उसमें शृंगार की प्रधानता न होकर शांत और करुण रस की प्रधानता पाई जाती है। नीति विषयक कुछ सूक्तियाँ निम्नांकित हैं। जो मनुष्य अपने वचन का पालन नहीं करता उसे नर्क में जाना पड़ता है।

'अपने मुख के वचन को, जो न करे प्रतिपाल।
कोटि जनम लै नरक में, सदा रहे बेहाल॥'

मनुष्य को प्रीति और वैर लायक से करना चाहिए। अपने से निम्न स्तर के मनुष्यों से ऐसा व्यवहार करना निषिद्ध है।

'प्रीति वैर लायक सों कीजै। पुनि संबंध पाइ रस लीजै॥'

अपने समान वीर से युद्ध करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

'अपने सम सो जुद्ध जु कीजै। तजै प्रान सुरपुर पग दीजै॥'

संसार में केवल भाग्य प्रधान है कर्मगति टाले नहीं टल सकती।

'करम रेख मेटे नहि कोई, कबहूँ और ते और न होई।'

× × ×

विधना लिख्यौ जगत में होई। सो नहि पलटि सकै मुनि कोई॥
कर्म रेख लिखि दानी जैसे। परै भोगनी जन को तैसे॥

अपने धर्म का पालन करना ही मनुष्य का परम धर्म है। सासारिक मोह-माया मे पड़ना भूल है इसलिए कि यह जीवन क्षण भंगुर है।

हरि कौ कियौ उलंघन कीजे। किते दिवस अपनी पै जीजे॥
यह छिन भंग सरीर कहावै फिरि काहू के काम न आवै॥

ऐसे ही जीवन मे हार-जीत लाभ-हानि तो लगी ही रहती है कोई चीज ससार मे स्थिर नही है।

द्रव्य न काहू की रही सदा रहै नहि प्रीति,
कबहुक रन मैं हारि कबहूँ पाइये जीति।

× × ×

परै दुःख जो तन मैं भारे। रंचक गनिए प्रीतम प्यारे॥
दुःख में सोच न कीजिए राई। नहीं हरख कीजै सुख पाई॥

मनुष्य को मोक्ष की कामना करनी चाहिए यही उसके जीवन का ध्येय है। गृहस्थाश्रम मे केवल वंश चलाने के लिए रहना चाहिए एक पुत्र के उपरान्त वानप्रस्थ ले लेना चाहिए—

एक पुत्र जब होत सुजाना। बन मे जाइ रहै जु निदाना॥
बन में जाइ समाधि लगावै। योनि जु देह मनुष्य की पावै॥

पतिव्रता स्त्री का धर्म और भारतीय ललना का आदर्श दमयन्ती के चरित्र मे निखर उठा है। दमयन्ती कहती है—

युवती को पति एक है पति को युवति अनेक।
हम सी नल को बहुत हैं नल से हमको एक॥

नल के अतिरिक्त किसी पर पुरुष का विचार मात्र रौरव नर्क का भागी बना देगा—

जौ उर मे हम और विचारै। जन्म जन्म नर्क पगुधारै॥
वेद अगम्या करी न जाई। समुझ लेउ ऐसे सुख पाई॥

पत्नी का धर्म है कि पति को भोजन कराने के बाद उसका उच्छिष्ट भोजन पाए। इस अश मे भारतीय नारी के वैवाहिक जीवन के आदर्श के साथ साथ तत्कालीन स्त्री की सामाजिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है।

भोजन प्रथम पीय को दीजै। उचिष्ट आप लै लीजे।
ऐसे धरम बाम को रहै। सुति सुम्रित बानीं यो कहै॥

इस प्रकार प्रस्तुत रचना मे नीति-रीति और सामाजिक जीवन की तत्कालीन अवस्था का चित्रण अन्य काव्यों से अधिक प्राप्त होता है।

विप्रलम्भ-शृंगार

दमयन्ता के विलाप और विरहवर्णन में करुण रस बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। दमयन्ती विलाप करती हुई पति के दर्शन की अभिलाषा के हेतु कहती है कि हे प्रियतम जिसे तुम सर्वसुन्दर कहते थे वही आज तुम्हारे वियोग में सूखी जा रही है।

अहो कंत वन तजी अकेली। सूकति है कंचन की वेली।
अमृत मय दरसन दरसाओ। हमको वन में क्यों तरसाओ।

फिर वह विक्षिप्त अवस्था में पेड़ों और पल्लवों से नल के बारे में पूँछती फिरती है—

अहो कदंव अम्ब गम्भीरा। देखे कितहूँ रणधीरा॥
पीर हरन सुख करन पलासा। पुजवौ वीर हमारी आसा॥

× × ×

पीपर पूजन निसिदिन कीनौ। तुम्ह कंथ बताइ न दीनौ।
जो असोक तुम नाम धराओ। करा आज मेरो मन भायौ॥

'पीपर की पूजा' वाली उक्ति में गार्हस्थ्य जीवन की एक सुन्दर झाँकी और भारतीय विश्वास का परिचय मिलता है। आज भी हमारे यहाँ की स्त्रियाँ विशेष पर्वों पर बरगद और पीपल आदि पूँजती हैं।

धर्म और नीति प्रधान होने के कारण प्रस्तुत रचना में संयोग शृंगार नहीं प्राप्त होता।

छंद

प्रस्तुत रचना दोहा-चौपाई छन्द में प्रणीत है। किन्तु कहीं-कहीं चौपाई और कुण्डलिया का भी प्रयोग किया गया है।

भाषा

इसकी भाषा अवधी है।

यह काव्य अपनी कोटि का एक विशेष काव्य है जिसमें प्रेम काव्य के द्वारा जाति-धर्म आदि का प्रतिपादन किया गया है।

———

लैला-मजनूं

—राम जी सहायकृत

—लिपिकाल...

—रचनाकाल...

कवि-परिचय

कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

यह कृति सूफियों से प्रभावित एक छोटी सी रचना है। इसकी लिखावट बड़ी दोषपूर्ण और अस्पष्ट है। अन्त की सात आठ पंक्तियाँ तो पढ़ी ही नहीं जातीं। किसी प्रतिलिपि-कार ने एक छोटी सी 'बही' के पृष्ठ पर ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित लेखों, कुण्डलियों एवं अन्य रचनाओं के साथ इसकी भी प्रतिलिपि कर ली थी, किन्तु प्रतिलिपिकार कोई कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति ज्ञात पड़ता है, इसलिये कि इसमें पाठ्यों आदि की बड़ी अशुद्धियाँ मिलती हैं इसी प्रति के आधार पर रचना का परिचय दिया जाता है।

लैला को ढूँढ़ता हुआ मजनूं फकीरी वेष में मुल्तान से दिल्ली पहुँचा। रास्ते में एक मनुष्य ने उसका परिचय पूछा। उसने बताया कि वह मजनूं है उसका निवासस्थान मुल्तान में है, जाति का पठान है, लैला को ढूँढ़ता हुआ वह दिल्ली आया है। किन्तु लैला के निवासस्थान का उसे पता नहीं मिलता है। इस मनुष्य को मजनूं की इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि लैला का मिलना बड़ा कठिन है, उस तक तो वायु और पक्षी भी नहीं पहुँच पाते। अन्त में मजनूं के आने की खबर लैला को मिली और उसने मजनूं को बुलवा भेजा। लैला के द्वार पर मजनूं आकर रुक गया और कहला भेजा कि 'तुम्हारे महल के द्वार पर तो हजारों की भीड़ लगी है, फिर मैं फकीरी वेश में हूँ कैसे तुम तक पहुँच सकूँगा।' मजनूँ के इस संदेश को पाकर लैला सुसज्जित होकर छज्जे पर आ बैठी। और वहीं से मजनूँ से पूछा कि वह उसके महल तक मुल्तान से आ कैसे सका है? रास्ते में मिलने वाले भूत-पिशाच तथा अन्य भयंकर जीवों ने उसे

जीवित कैसे रहने दिया ? मजनूँ ने अपने प्रेम की दुहाई देते हुए कहा कि वह लैला को 'सुरति' की डोर पकड़ कर यहाँ तक आ सका है। लैला ने कहा कि अगर मजनूँ को अपनी जान प्रिय है तो वह लौट जाए अन्यथा उसे राजा पकड़ कर मरवा डालेगा। मजनूँ ने उत्तर दिया कि 'आशिक' को मौत का डर नहीं हुआ करता। इस पर लैला ने कहा कि तुम गन्दे हो तुम्हारे शरीर पर फटे कपड़े हैं रास्ते की धूल से लथपथ हो, मैं स्वच्छ हूँ तुम्हारा हमारा मिलन असम्भव है। मजनूँ न माना, इस पर लैला ने कहा कि अगर तुम्हारा प्रेम सच्चा है तो मेरे कहने से आग में कूद पड़ो। मजनूँ सहर्ष कूदने के लिये तैयार हो गया। अग्नि प्रज्वलित की गई और मजनूँ उसमें कूद पड़ा, किन्तु जिस प्रकार भगवान ने प्रकट होकर प्रह्लाद को बचा लिया था उसी प्रकार लैला ने भी प्रकट होकर मजनूँ को अग्नि से बचा लिया। इस प्रकार दोनों का संयोग हुआ।

इस रचना का कथानक लैला मजनूँ की शामी कथा पर अवलम्बित होते हुए भी भिन्न है। शामी कथा के अनुसार लैला और मजनूँ इरान में पास ही पास रहते थे और बाल्यावस्था में एक ही चटसार में पढ़ते, थे उस समय दोनों में प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ था। लैला कोई परम सुन्दरी न थी लेकिन लड़कपन का स्नेह युवावस्था के प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गया था। दोनों के कुलों के पारस्परिक कलह के कारण उनका विवाह न हो सका। लैला का विवाह अन्य 'अमीर' के साथ हो जाने के उपरान्त मजनूँ उसके प्रेम में पागल होकर जंगलों और सड़कों तथा रेगिस्तान में भटकता रहता था। इधर लैला भी उसके लिये व्याकुल रहा करती थी तथा छुक-छिप कर उससे मिलने भी जाया करती थी। विरह और दुख के कारण मजनूँ दुर्बल होता गया और एक दिन उसकी मृत्यु हो गई। लैला ने मजनूँ के प्राण त्याग का संदेश पाकर आत्महत्या कर ली। इस प्रकार मूल शामी घटना दुखान्त है[१]।

प्रस्तुत रचना सुखान्त है। इसके अतिरिक्त कवि ने लैला को 'दिल्ली' की रहने वाला अंकित किया है। मुल्तान में लैला के रूप सौन्दर्य को सुनकर अपना राज-पाट छोड़ मजनूँ दिल्ली उसके दर्शन के लिए आया और वहाँ उसने कवि के अनुसार लैला को प्रथम बार देखा भी। लैला ने उसके प्रेम की परीक्षा ली और उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के बाद दोनों का संयोग हुआ। अस्तु प्रारम्भ से लेकर अन्त तक की सारी घटनाएं इस रचना में शामी कथानक से भिन्न है।

१—लैला मजनूँ का किस्सा विविध रूपों में मिलता है उपर्युक्त कथानक इस किस्सा की मूल घटनाओं पर अवलम्बित है।

इस कथानक के परिवर्तन के दो प्रधान कारण प्रतीत होते हैं पहला यह कि कवि हिन्दू था इसलिए उसने दुखान्त के स्थान पर हिन्दू काव्यों की परम्परा के अनुसार सुखान्त रचना ही की है। दूसरे यह कि प्रत्येक सूफी काव्य में नायक अपने प्रियतम के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन सुनकर माया मोह को त्याग उसकी खोज में निकल पड़ता है। कथा के प्रारम्भ में नायक के मार्ग में पड़ने वाली कठिनाइयों की प्रधानता रहती है और प्रारम्भ में प्रेम भी विषम रहता है। धीरे धीरे नायिका के हृदय में भी प्रेम का सञ्चार दिखाया जाता है, इस प्रकार इन काव्यों में वर्णित प्रेम विषम से सम की ओर उन्मुख हो जाता है। मेरे विचार से कथानक को सूफी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ही कवि ने सम्भवतः इतने परिवर्तन किए हैं।

इस रचना के अन्त में वर्णित मजनूं की अग्नि-परीक्षा की लोकोत्तर घटना, सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। कारण कि कवि ने इस घटना का साम्य प्रह्लाद के पौराणिक गाथा से स्थापित किया है जो इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि हिन्दू सूफीमत की ओर आकृष्ट हो चले थे वे मुसलमानों की प्रसिद्ध कहानियों को उसी प्रकार अपनाने लगे थे जिस प्रकार मुसलमान हिन्दुओं की कहानियों को। यही नहीं तात्विक दृष्टि से वे पौराणिक गाथाओं और शामी कथाओं में निहित 'दार्शनिक' सिद्धान्तों में कोई विशेष अन्तर नहीं मानते थे। सत्य की खोज ने हिन्दू-मुसलमानों का भाव क्षीण कर दिया था। अस्तु हम यह कह सकते हैं कि तत्कालीन युग में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो सांस्कृतिक साम्य और सहृदयता उत्पन्न हो चुकी थी उसकी स्पष्ट छाया इस काव्य में दिखाई पड़ती है।

जहाँ तक काव्य-सौष्ठव और प्रबन्धात्मकता का सम्बन्ध है, यह काव्य उच्च-कोटि का नहीं कहा जा सकता, कारण कि इसमें 'इतिवृत्तात्मक' वर्णनों और लोकोत्तर घटनाओं की ही अधिकता मिलती है, संयोग, वियोग की नाना दशाओं तथा नख-शिख वर्णनों आदि में रसात्मक स्थलों पर कवि का चित्त नहीं रमा है।

रहस्यवाद

जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि यह रचना सूफियों से प्रभावित है। इसकी कथावस्तु का विकास भी उन्हीं कथाओं के अनुसार ही हुआ है। उदाहरणार्थ मजनूं लैला के सौन्दर्य की बड़ाई सुनकर मुल्तान से चल पड़ा था।

> हुआ यह हवाल सुरति उसकी लागी।
> छोड़े गज राज बाज माया त्यागी॥

उपर्युक्त उद्धरण में 'सुरति' शब्द विशेष उल्लेखनीय है। सन्तों ने अपनी बानियों में 'सुरति' शब्द का प्रयोग निरन्तर किया है इसका तात्पर्य दार्शनिक शब्दों में ब्रह्मज्योति से सम्बन्धित उस क्रांतिदर्शी किरण से है जिसके द्वारा जीव इसी जीवन में ब्रह्म-साक्षात्कार करके मुक्त हो सकता है। वास्तव में मन की बहिर्मुखी वृत्ति का कारण इस संसार की प्रत्यभिज्ञा, (स्मृति ज्ञान) है, वहाँ (परमात्मा) की सुरति (स्मृति) उसे अन्तर्मुखी बनाती है। मन के प्रसरण शील स्वभाव को पीछे की ओर मोड़ना ही, सुलटी सुरति को उलटी करना ही साधना-मार्ग है, प्रभु के सम्मुख रहना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मजनूं के हृदय में प्रेम, सुरति के कारण जाग्रत हुआ और वह राजपाट आदि छोड़कर लैला की खोज में चल पड़ा, और भटकता हुआ दिल्ली पहुँचा। दिल्ली में सितव के द्वारा वर्णित लैला के निवास स्थान के परिचय में उसकी अलौकिकता और परमात्मतत्व का संकेत मिलता है—

> लैले नव खंड जाइ किसि विधि पावै।
> पंछी जीव जंत्र कोउ पहुँचत नाही।
> जै हो किस भांति राज सुनि है सारी।

इसी प्रकार लैला के पास मजनू के भेजे हुए सन्देश में भी 'रहस्य' की छाया मिलती है वह कहता है कि तुम्हारे द्वार पर तो राजाओं, रायों की भीड़ लगी रहती है, तुम्हारा दर्शन मुझ भिखारी को किस प्रकार हो सकेंगे—

> 'मैं राये कैसे चलो लगी साह की भीर।
> दरस कौन विधि होइगो दूजे भेख फकीर॥'

उपर्युक्त अंश मे साधकों की उस भीड़ का चित्रण मिलता है जो उस तक पहुँचने के मार्गों पर लगी रहती है जिसे देखकर एकाकी आत्मा घबड़ा उठती है और वह परमात्मा से अनुग्रह की मांग करती है।

लैला का मजनूं को बुलवाना भी रहस्यमयी प्रेम व्यंजना का संकेत करता है। यह प्रेम उसी प्रकार का है जैसा कि परमात्मा को अपने भक्त के प्रति होता है। बिना किसी के बताये हुए भी लैला मजनू के लिए चिंतित हो उठी और उसने उसे बुलवा भेजा। ऐसे ही लैला के पूछने पर कि तुम यहाँ तक पहुँचे कैसे मार्ग में मिलने वाले सरोवरों और जङ्गलों के जीवों ने तुम्हें जीवित कैसे रहने दिया, मजनूँ का उत्तर एक साधक की मनोवृत्ति और परमात्मा तक पहुँचने के माध्यम प्रेम पर बड़ी सुन्दर उक्ति है—

'लगी लगनि सरीर में जागि उठी सब देह।
आग कोस हजार ते अटकी सुरति सनेह'॥

अथवा

लागी डाक मुल्तान ते, सआइ सिकन्दर पास।
अया उसकी झूल गहि सु तेरी लागी आस।
पकरी जब झूल अधिक अकलै दौरी।
आई चित फूलि सुरति तुजमें दौड़ी॥

तुम्हारी 'सुरति' की झूल को पकड़ कर मुल्तान से दिल्ली तक दम मारते मैं आ पहुँचा हूँ। इस झूल के पकड़े रहने पर मार्ग के रहने वाले जीव-जन्तु मेरा क्या कर सकते थे। इस उक्ति में मुलतान संसार और दिल्ली परमात्मा का निवास स्थान तथा मार्ग के 'झील' और 'गैल' में बसने वाले जीव जन्तु 'माया' के रूपान्तर बन जाते हैं।

कहानी के अन्त में मजनूं का लैला के आदेश पर अग्नि प्रवेश, फिर उसका लैला द्वारा जलने से बचाया जाना, भगवान् की भक्त को अपनाने के पूर्व कठिन परीक्षा लेने की प्रवृत्ति का द्योतक है जिसके पूर्ण होते ही भक्त और भगवान प्रेम के आक्रोड़ में एकाकार हो जाते हैं।

अस्तु प्रस्तुत रचना में रूपक काव्य की छटा भी मिलती है।

भाषा

यह रचना भाषा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है संभवतः इसकी रचना उस समय हुई थी जब रेखता (उर्दू) का विकास हो रहा था और लोग इस साधारण बोल-चाल की भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं के बीच-बीच में करने लगे थे। अस्तु इस रचना में ब्रजभाषा के बीच 'रेखता' का प्रयोग किया गया है। जैसे—

जा दिन ते बिछुरत भयो फिरि न देखे नैन।
जैसे घाइल नीर बिनु तलफत हौं दिन रैन॥

रेखता—ढूँडी मुल्तान सहर डिल्ली आरो।
ढूँड़ी लाहौर ओर नगर सहारो।
साहिब के हाल चित्त ह्वैले।
खबर कर सिताब जहां बसी लैले॥

अथवा

लागी जब सुरति पास तेरे आया।
फूला जब चित्त मित्र अपना भाया।
देखा महबूब खूब साहिब अपना।

जहाँ तक अलंकार आदि का सम्बन्ध है उनकी छटा इस काव्य में देखने को नहीं मिलती इसलिए कि कवि की दृष्टि रसात्मक स्थलों पर नहीं जमी है।

छन्द

सम्पूर्ण रचना दोहा चौपाई छन्द में प्रणीत है।

लैला मजनूं इस प्रकार सांस्कृतिक पक्ष और भाषा दोनों की दृष्टि से महत्व-पूर्ण खण्डकाव्य है।

रूपमंजरी

नंददास कृत

रचनाकाल सं० १६२५ के लगभग

कवि-परिचय

अष्टछाप के कवि नन्ददास के विषय में हिन्दी संसार काफी भिज्ञ है इस-लिए इस कवि के जीवनवृत्त को लिखकर लेख के आकार को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ता। अस्तु हमने इस स्थान पर उनके जीवन के विषय में कुछ कहना अनुपयुक्त समझा है। डा० दीनदयालगुप्त अपनी पुस्तक में अष्टछाप के कवियों पर काफी गम्भीर अध्ययन कर चुके हैं।

कथा-वस्तु

निर्भयपुर के राजा धर्मधीर के अत्यन्त सुन्दरी रूपमंजरी नाम की एक कन्या थी। जब वह विवाह योग्य हुई तब उसके पिता ने उसके अनुरूप किसी योग्य वर के साथ उसका विवाह करने का विचार किया। वर की खोज का कार्य उन्होंने एक ब्राह्मण को सौंप दिया। ब्राह्मण ने लोभवश कन्या का विवाह एक क्रूर और अयोग्य व्यक्ति के साथ करा दिया। इस अनमिल विवाह से रूपमंजरी के माता-पिता को अपार दुख हुआ। इधर रूपमंजरी भी अपने पति से असंतुष्ट रहने लगी। उसकी एक इंदुमती नाम की सखी थी जो उसे बहुत अधिक प्यार करती थी और उसके रूप-गुण के ऊपर मुग्ध थी। वह सदैव इस विचार में रहने लगी कि रूपमंजरी का रूप गुणसंपन्न नायक के उपभोग के योग्य है। लोक में इसके अनुरूप कोई नायक नहीं दिखाई देता। लोक से अतीत कृष्ण भगवान जो अनन्त रूप और अनन्त शक्तिधारी हैं इसके उपयुक्त नायक हैं।

इंदुमती ने मन में सोचा 'यह विवाहिता है इसलिए इसके हृदय में उपपति का बीज अंकुरित करना चाहिए। उसने कृष्ण के रूप और गुणों का वर्णन रूपमंजरी से किया। एक दिन वह उसे गोवर्धन पर्वत पर ले गई और वहाँ कृष्ण के रूप के दर्शन कराये। इन्द्रमती भगवान कृष्ण से नित्य प्रार्थना करती थी कि भगवान मेरी इस सखी को अपनाएँ।

राजकुमारी को एक दिन स्वप्न में कृष्ण के दर्शन हुए। दूसरे दिन रूप-मंजरी ने अपने स्वप्न की अनुमति अपनी सखी इन्द्रमती को सुनाई। रूपमंजरी काल्पनिक नायक कृष्ण के ऊपर ऐसी मुग्ध हो गई कि दिन-रात उसी के ध्यान में रहने लगी। रूपमंजरी के प्रगाढ़ प्रेम ने उसके हृदय को ऐसा प्रभावित किया कि स्वप्न में उसे श्रीकृष्ण का संयोग सुख अनुभव हुआ और तब से वह आनन्द-मग्न रहने लगी। कृष्ण प्रेम में मतवाली रूपमंजरी एक दिन अपने घर और अपनी सखी इंद्रमती से छिपकर वृन्दावन चली गई। इन्द्रमती भी उसकी खोज में वृन्दावन पहुँची वहाँ पहुँच कर इंद्रमती ने अपनी सखी को कृष्ण के रास मे निमग्न देखा और इतनी प्रसन्न हुई कि उसका वार-पार न रहा। इस प्रकार इन्द्रमती और रूपमंजरी एक दूसरे की संगति से इस जीवन मे निस्तार पा गई।

नन्ददास कृत रूपमंजरी विद्वानों के अनुसार उनकी व्यक्तिगत जीवनी पर आधारित है। २५२ वैष्णवों की वार्ता में रूपमंजरी का नाम आया है और वह अकबर की रानियों में से एक थी। जो अकबर को अपने पास न आने देती थी। वार्ता यह भी लिखती है कि रूपमंजरी नन्ददास से मिलने के लिए आकाश से नित्य आया करती थी। प्रस्तुत रचना में इन्द्रमती के रूप में नन्ददास ही अवतरित हुए हैं ऐसी लोगों की धारणा है। यद्यपि नन्ददास ने स्वय इस आख्यान को कल्पित कहा है फिर भी इसमें कवि के वास्तविक जीवन का इतिहास और कल्पना का कुछ ऐसा मिश्रित रूप हो गया है कि कल्पना और इतिहास को ठीक ठीक अलग नहीं किया जा सकता।

हिन्दी साहित्य प्रस्तुत रचना को नन्ददास की कृष्णभक्ति सम्बन्धी और वल्लभ संप्रदाय की भक्ति के अनुकूल एक छोटा सा आख्यान काव्य मानता आया है। किन्तु हमारे विचार से प्रस्तुत रचना हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की परम्परा में रचा गया है।

प्रश्न यह उठता है कि रूपमञ्जरी हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की परंपरा का काव्य कहां तक कहा जा सकता है।

हम पिछले पृष्ठों में कह आए हैं कि हिन्दू कवियो ने शुद्ध प्रेमाख्यान एवं आन्यापदेशिक प्रेमाख्यानों की रचना की है। अलौकिक प्रेम को व्यंजित करने वाले प्रेमाख्यानों पर सूफियों का प्रभाव पड़ा है। किन्तु इन कवियो ने सूफी धार्मिक परम्परा और विश्वासों को प्रश्रय देते हुए सनातन धर्म के विश्वासों तथा अन्य धर्मों के विचारों और भावनाओं को भी अपनाया है। इसलिए ऐसे काव्यों में सगुण और निर्गुण दोनों में ब्रह्म की उपासना प्राप्त होती है।

रूपमंजरी सगुण ब्रह्म को रूपमार्ग से प्राप्त करने की साधना का प्रतिपादन करने वाला आन्यापदेशिक काव्य है। इस काव्य की आरम्भिक वन्दना से ही स्पष्ट है कि कवि ने प्रेम की साधनापद्धति को इस तरह आधार बनाया है जिसमें पढ़ने अथवा सुनने से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो सकता है। आरम्भ में ही इस विषय का संकेत करने के उपरान्त कवि ने निर्भयपुर के राजा धर्मधीर की पुत्री रूपमंजरी का परिचय दिया है। ध्यान देने की बात है कि अलौकिक प्रेम से सम्बन्धित प्रेमाख्यानों में राजाओं और उनके निवास स्थानों तथा पात्रों के सारगर्भित और सोद्देश्य नाम देने की परम्परा प्राप्त होती है। जैसे सर्वमंगला, रंगीली, धर्मपुर, आदि जिसका अनुसरण हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रेमाख्यानक कवियों ने किया है और यही बात हमें नन्ददास में भी दिखाई पड़ती है।

उपर्युक्त प्रेमाख्यानों की कथा की भूमिका के रूप में कवि नायक नायिका के निवास स्थान, नगर और महल का वर्णन मूल कथा प्रारम्भ करने के पूर्व करते आए हैं जिसमें उच्च धौरहर का वर्णन अवश्य किया गया है। रूपमंजरी में कवि ने इस परिपाटी का भी अनुसरण किया है[१]।

प्रेमाख्यानों की सामान्य विशेषताओं के सम्बन्ध में हम कह आए हैं कि इन प्रेमाख्यानों का शीर्षक नायिका के नाम पर ही दिया जाता था जैसे पद्मावती इन्द्रावती, पुहुपावती आदि। जो रूपमंजरी में भी पाया जाता है।

अब घटना के संविधान पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। प्रेमाख्यानों में नायिका के हृदय में प्रेम जाग्रत करने के लिए कवियों ने दूती, स्वप्नदर्शन, गुणश्रवण, चित्रदर्शन आदि का सहारा लिया है। रूपमंजरी में इन्दुमती दूती का कार्य करती है और इस दूती के द्वारा कवि ने रूपमंजरी के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुराग जाग्रत किया है। जिसके फलस्वरूप उसे नायक का दर्शन स्वप्न में होता है। पूर्व राग के अन्तर्गत वियोगावस्था की नाना अवस्थाओं का वर्णन

---

१. अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही। जो कुछ मो उर अन्तर आही॥
धर पर इक निर्भरपुर रहै। ताकी छवि कवि का कहि कहै॥
नए धौरहर सुखद सुबासा। जनु धर पर दूसर कैलासा॥
ऊँचे भटा धटा बतराहीं। तिन परि केकी केलि कराहीं॥
नाचत सुभग सिखंड झुलत यों। गिरधर पिय की मुकुट लटक ज्यों॥
'नंददास ग्रंथावली'
'ब्रजरत्नदास' पृ. ११९।

षड्ऋतु आदि का संयोजन प्रेमाख्यानों की एक रूढ़ि थी जिसका अनुसरण नंददास ने किया है।

रूप-सौन्दर्य वर्णन, संयोगावस्था में हावों आदि का शास्त्रीय संकेत तथा रति आदि के कामोत्तेजक वर्णन ऐसे आख्यानों की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं जो रूपमंजरी में प्राप्त होती हैं।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त प्रस्तुत रचना प्रेमाख्यानों की परम्परा में दोहा-चौपाई छंद मे रची गयी है। अस्तु कथा प्रारम्भ करने की शैली में, नायक और नायिका के हृदय मे प्रेम जाग्रत करने के तरीकों मे, संयोग वियोग आदि के वर्णन मे, कथा के शीर्षक के चुनने मे तथा छन्द योजना मे हमें रूप मंजरी हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की परिपाटी का अनुसरण करते दिखाई देती है। पृथ्वीराज की वेलि और नंददास की रूपमंजरी मे कोई विशेष अन्तर नहीं लक्षित होता हाँ रूपमंजरी के अन्त मे रहस्यात्मकता की छाया कुछ अधिक गंभीर और लोकोत्तर जान पड़ती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि रूपमंजरी हिन्दू कवियो के प्रेमाख्यानो मे लिखा हुआ एक आन्यापदेशिक काव्य है।

प्रबन्ध कल्पना

प्रस्तुत रचना घटना प्रधान है। इसमे चरित्र की अनेकरूपता या घटना के स्थान पर केवल प्रेम व्यापार का ही प्राधान्य है। कहानी-कला की दृष्टि से यह एक सफल रचना नहीं कही जा सकती।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

प्रस्तुत रचना मे नन्ददास ने अपनी भक्ति-पद्धति के दो रूपों का वर्णन किया है। एक ससीम लोक सौंदर्योपासना द्वारा निस्सीम दिव्य सौन्दर्य को पाना और दूसरा प्रेम के उपपति भाव द्वारा भगवान् के नैकट्य को प्राप्त करना। कवि ने रूपमंजरी के रूप में इन्दुमती की आसक्ति द्वारा रूपोपासना के मार्ग का वर्णन किया है। और कृष्ण में जार भाव से रूपमंजरी की आसक्ति द्वारा भक्ति के माधुर्य भाव को दिखाया है[1]।

काव्य-सौंदर्य

रूपमंजरी के स्वभाव-वर्णन के लिए कवि ने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है जो कवि समय सिद्ध परम्परानुकूल हैं। किन्तु अनूठी उत्प्रेक्षाओं और मनोहर उक्तियों द्वारा कवि ने वर्णन की रोचकता को हृदयग्राही बना दिया है। मुग्धा के रूप सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसके

---

१. देखिए अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय (डा० दीनदयाल गुप्त) भाग २।

अंग-अंग शुभ लक्षण से युक्त हैं। दृष्टि के पदार्थों का सौन्दर्य सीमित होकर जैसे उसमें बस गया हो। उसकी मुख की शोभा इतनी उज्ज्वल और कान्तिपूर्ण है कि उसके पिता का घर बिना दीपक के ही प्रकाशमान रहता है।

संयोग श्रृंगार

संयोग श्रृङ्गार का वर्णन कवि ने बड़े संक्षेप में किया है जो रूपमंजरी के स्वप्न के समय अंकित किया गया है। इस संयोग में रति के कुछ चित्र मर्यादा का उल्लंघन कर गए हैं। स्वप्न संयोग के बाद कवि ने रूपमंजरी को सम्भोग दुर्विता नायिका के रूप में अंकित किया है और इसी स्थान पर कवि ने नायिकाओं के २८ अलंकारों में से स्वभाव सिद्ध कुछ अलंकारों के नाम गिनाए हैं। जिसमें विलास, संभ्रम, कुट्टमित आदि का उल्लेख किया गया है[१]।

विप्रलंभ श्रृंगार

रूपमंजरी की विरह दशा का वर्णन षड्ऋतुओं के अन्तर्गत किया गया है। पावस ऋतु में काले काले बादल वियोगिनी रूपमंजरी को भयंकर दिखाई देते हैं उसे अनुमान होता है मानो मन्मथ अपनी सेना लेकर उसके ऊपर आक्रमण कर रहा है। जब रूपमंजरी बहुत विकल होने लगती है तब उसकी सहचरी इंदुमती वीणा बजाकर उसका मनबहलाव करती है। कवि कहता है यदि मर्मस्थान में कोई सीधा शत्रु घुस जाता है तो वह महान दुखदायी होता है परन्तु जहां ललित त्रिभंगी रूप की टेढ़ी गांसी हृदय में घुस जाय तो उसकी पीड़ा का तो कहना क्या[२]। कहने का तात्पर्य यह है कि नंददास का विरह वर्णन बड़ा सुन्दर स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।

भाषा

नंददास के लिए प्रसिद्ध है कि 'और सब गढ़िया नंददास जड़िया' भाषा के सौष्ठव, शब्दविन्यास और अनूठी उपमा तथा उत्प्रेक्षा के लिए ब्रजभाषा काव्य में नंददास को अन्य कवि कम पा सके। इनकी भाषा का सौष्ठव हिन्दी साहित्य को इनकी बहुमूल्य देन है।

छंद

प्रस्तुत रचना दोहा,—चौपाई छंद में प्रणीत है।

---

१. 'उमगे बादर कारे कारे। बड़रे बहुरि भयानक भारे।
घुमड़न मिलन देख डर आवे। मन्मथ मानों हाथी हरावे॥

२. 'सूधी जो कछु उर गड़े, सो काढ़े दुख होय।
ललित त्रिभंगी जेह गड़े, सो दुख जाने सोय॥

नीतिप्रधान प्रेम-काव्य

रहे। तदुपरान्त अपने को सम्हाल कर मधुकर ने कहा कि हमारे तुम्हारे प्रेम की गति उसी प्रकार होगी जिस प्रकार मृग और सिंहनी के प्रेम का फल हुआ था। इस पर मालती ने सिंहनी और मृग की कथा पूंछी। मधुकर ने बताया कि एक मृग बड़ा सुन्दर था लेकिन उसमें काम वासना बहुत थी, वह नौ दस मृगियों के साथ घूमता रहता था। एक दिन एक सिंहनी उसे देखकर काम पीड़ा से पीड़ित हो उठी और उसके पास पहुँची। सिंहनी को देखकर मृग भागने लगा किन्तु सिंहनी ने उसे रोक कर अपना प्रेम प्रदर्शित किया और कहने लगी कि मेरे साथ रतिसुख का लाभ करो तुम्हें मृगिया भूल जाएंगी। मृग को विश्वास न आया, उसने कहा कि तुम्हारे साथ रहने से तो मेरी दशा घूहर और काग की तरह हो जाएगी। सिंहनी ने घूहर और काग की कहानी जानने की अभिलाषा प्रकट की मृग ने बताया कि जंगल के सारे पक्षियों ने घूहर को राज देने की सोची। इतने में ही एक कौवा वहाँ पहुँचा और उसने पक्षियों को मना किया और कहा कि गरुड़ के स्थान पर तुम घूहर को राज्य देकर अपना बड़ा अनिष्ट करोगे। तुम लोग गरुड की शक्ति से क्या परिचित नहीं हो, जिसके पंख के पवन से शेष भी कम्पित होता है, पहाड़ भी चूर चूर हो जाते हैं। सागर भी डरता है जो टिटिहरी के अंडों की बात से स्पष्ट है। इस पर पक्षियों ने टिटिहरी के अंडों की बात पूंछी। कौवे ने बताया कि सागर के तट पर एक टिटिहरी का जोड़ा रहता था। टिटिहरी जब गर्भवती हुई तो उसने अपने पति से अंडा देने का स्थान पूछा और कहा कि सागर के तट पर अंडे देने से समुद्र द्वारा उनके बहा ले जाने की आशंका है। टिट्टु ने कहा कि तुम्हारी अक्ल मारी गई है, अगर समुद्र तुम्हारे अंडे बहा ले गया तो उसे उसी प्रकार लौटाना पड़ेगा जिस प्रकार अगस्त मुनि को लौटाना पड़ा था।

टिटिहरी ने अंडे समुद्र तट पर दिए किन्तु समुद्र उन्हें बहा ले गया। टिटिहरी विलाप करने लगी। टिट्टा गरुड़ के पास गया और उनसे अपने अण्डों को समुद्र से दिलवाने को कहा। गरुड़ समुद्र की ओर क्रुद्ध होकर चले। समुद्र गरुड को आते देखकर डर गया और रत्नों सहित उसने अण्डे लौटा दिए। इसे सुन कर पक्षियों ने गरुड़ को राजा बना दिया।

घूहर का नाम 'अरिमर्दन' राय था। उसने अपनी जाति बुलवा कर मेघवरन (कौओं) को मरवा डालने की मन्त्रणा की। रात्रि में घूहरों ने सैकड़ों कौवे मार डाले। तब मेघवरन घूहरराज के पास पहुँचा और उनसे क्षमा याचना कर सन्धि कर ली। तदुपरान्त वह घूहरराज को फुसला कर एक गुफा में ले गया और गुफा में आग लगा कर घूहरराज को मार डाला। इसीलिए मैं कहता

हूं कि जिनमे दुश्मनी होती है उनमें दोस्ती कभी नहीं हो सकती। मृग ने कहा इसीलिए मुझे तुम्हारे प्रेम पर विश्वास नहीं होता।

सिंहनी ने उत्तर दिया कि तुमने तो हमें काक के समान जान लिया है, किन्तु मैं अगर अपने बचन का पालन न करूं तो कुलांगना नहीं हूं। साधु का बचन कभी नहीं टलता चाहे ध्रुव और मेरु अपने स्थान से टल जाएं। इन वचनों को सुनकर मृग को सन्तोष हुआ और वह सिंहनी के पास आया। सिंहनी ने कहा कि तुम मेरे साथ काम क्रीड़ा करो और देखो मृगनियों को भूल जाते हो या नहीं। जब तक सिंह नहीं आया तब तक दोनों बड़े आनन्द से रहे।

बहुत दिनों के उपरान्त सिंह पहाड़ियों से उतरा। सिंहनी ने आगे बढ़ कर सिंह का सत्कार किया और बड़ी दूर से उसका आहार ले आई। उसने सोचा कि इतनी देर मे मृग भाग जाएगा। किन्तु इतने दिन सिंहनी के साथ रहने से मृग अपनी चपलाई भूल गया था और मारे डर के वह नदी तट पर ही बैठा रहा। सिंह ने मृग को देखा और मार डाला।

मालती ने उत्तर दिया मधु तुम मुझसे प्रपंच करते हो, वास्तव में सिंह ने मृग को इस प्रकार नहीं मारा वरन् घटना जिस प्रकार घटी मैं बताती हूं। सिंह को आया जान कर सिंहनी ने मृग को छिपा दिया और सिंह के साथ केलि करती रही। सिंह थोड़ी देर बाद नदी पर पानी पीने गया और मृग को देखा किन्तु मृग भागा नहीं। इसे देख कर सिंहनी पछताने लगी। उसने सोचा कि मेरे जीवन को धिक्कार है जो मृग मुझसे पहले मारा जावे। इसलिये ज्योंही सिंह मृग को मारने के लिये उछला त्योंही सिंहनी उछल कर मृग के सींगों पर जा पड़ी और पेट फट जाने के कारण मर गई, तब मृग मारा गया। मधु तुमने कथा भूल से गलत बताई है वास्तव में इस प्रकार सिंहनी ने मृग से प्रेम निभाया। इस पर मधु ने कहा कि यह तो और भी बुरा हुआ, दोनों के प्राण गए।

मालती ने झुंझला कर कहा कि मधु मैं तो तुम्हारे प्रेम में वैसे ही व्याकुल हूं, विरह से जल रही हूं और तुम जले पर नमक छिड़कते हो। मधु ने उत्तर दिया कि प्रेम 'दूर से एक दूसरे को देखते रहने में जितना अधिक तीव्र होता है उतना परस्पर पास रहने और स्पर्श से नहीं होता।'

मधु की इस उक्ति पर मालती ने कनाज के कुंवर कर्ण की कथा कही और बताया कि कुँवर कर्ण का विश्वास था कि जो अबला प्रथम उसका हांथ पकड़ कर अपनी शय्या पर ले जायेगी उसके साथ ही वह रमण करेगा। अस्तु उसने कितनी ही स्त्रियों से विवाह किये। सुहागरात को दोनों एक ही कमरे

में बैठे रहते किन्तु नव विवाहिता नारी संकोचवश एक कोने में दुबकी बैठी रहती थी और कुमार दूसरी ओर चुपचाप अपनी स्त्री के द्वारा प्रथम काम चेष्टा की अभिलाषा करते बैठा रहता था। प्रातःकाल होने के उपरान्त वह उस स्त्री को अधकूप में डाल देता था। शूरसेन की पुत्री पद्मावती के कानों में भी कर्ण के इस असाधारण व्यवहार की बात पड़ी और उसने उसी से विवाह करने की ठानी। पद्मिनी के साथ कुंवर कर्ण का विवाह हुआ। कुंवर ने पद्मिनी के साथ भी उसी प्रकार रात बितानी प्रारम्भ की। दो पहर रात्रि के व्यतीत होते देखकर पद्मिनी ने गुलाब की पिचकारी भर कर कुंवर की पीठ पर मारी और फिर उसे अपने हृदय से लगा लिया। फिर दोनों में परस्पर प्रेम हुआ। मालती ने कहा कि मधु मेरे साथ कब ऐसा व्यवहार करेगा। मधु ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार कुमारी ने समझ बूझकर अपने पति को चुना था उसी प्रकार समझ बूझकर तुम्हें भी अपना पति चुनना चाहिए। तुम राजा की पुत्री अनजान सी बातें कर रही हो' तुम मेरे राजा की पुत्री हो और हमारे तुम्हारे गुरु भी एक हैं, इसलिए हमारा तुम्हारा सम्बन्ध नहीं हो सकता। यह कह मधु चला गया। उस दिन से उसने पढ़ने आना बन्द कर दिया।

स्त्रियों से मधु के रामसरोवर के तट पर रहने की बात को सुनकर मालती वहाँ गई। उसके रूप को देखकर चन्द्रमा के धोखे में कमल सम्पुटित हो गए और भ्रमर उसमें बन्द हो गए। मधुकरी ने आकर मालती से अपने पति को बन्धन से मुक्त करने की स्तुति की, किन्तु मालती ने उत्तर दिया कि मधुकर के लिए क्या कहती हो वह तो कठोर काठ को भी काट डालता है। भ्रमरी ने उत्तर दिया कि प्रेम के कारण वह कमल से ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। चकवी ने अपने बिछोह की याचना की और प्रेम की मार्मिकता को बताया। मालती चकवी को एक सुन्दर पिंजड़े में बन्द कर अपने महल में ले आई। चकवी के कहने पर ही मालती ने अपनी सखी से सारी वेदना स्पष्ट कह सुनाई और मधु को पाने की अभिलाषा प्रकट की।

उसकी सखी जैतमालती मधु को वशीभूत करने के लिए राम सरोवर के तट पर गई। मधु और जैतमालती में वार्तालाप हुआ और मधु ने बताया कि वह कामदेव का अवतार है। शिव के द्वारा भस्म होने के पूर्व वन में 'मालती' पुष्प के रूप में रहती थी और भ्रमर के रूप में वह। शिव के द्वारा भस्म हो जाने के उपरान्त इस मालती ने पुनः दूसरे भ्रमर से प्रेम करना प्रारम्भ कर दिया था, इसलिए वह मालती के प्रेम मे दुबारा बद्ध नहीं हो सकता। जैतमालती के पास सम्मोहन मन्त्र था वह धीरे-धीरे इसका प्रयोग बातें करते-करते मधु पर कर रही थी

और मधु धीरे-धीरे वशीभूत हो रहा था। इस सखी ने इस बीच मालती को बुलवा लिया। मालती के रूप को उस समय देखकर मधु अपनी सुध-बुध खो बैठा। इसी बीच चैतमालती ने उसे पूर्ण रूप से अपने वश में कर लिया और मधु से उषा अनिरुद्ध के समान विवाह करने को कहा। मालती और मधु का गांधर्व विवाह हुआ। दोनों सरोवर के तट पर के कुंज में रतिसुख लेने लगे।

एक माली ने इनको इस अवस्था में देखा और राजा से खबर कर दी। राजा ने दोनों को पकड़ लाने के लिये सेना भेजी। इस खबर को एक सखी ने मालती से बताया। मालती ने मधुकर से किसी दूर देश में भाग चलने को कहा। मधुकर न माना और उसने 'मलंद सुत की कथा मालती को सुनाई जो इस प्रकार थी।

चम्पावती और कुँवर मलन्द के चन्दा नाम का पुत्र था। बीस वर्ष की अवस्था में वह उस देश का सबसे सुन्दर युवक गिना जाता था। उस राजा के मन्त्री के एक चौदह वर्षीय कन्या 'अनवरी' नाम की थी। वह नित्य राज-वाटिका में पुष्प चुनने आती थी। एक दिन कुँवर ने उसे देखा और मोहित हो गया। मालिन से उसने अपने मन की व्यथा बताई। मालिन ने दोनों को मिलाने का वचन दिया। जब दूसरे दिन कुमारी फूल चुनने आई तब उसे मालिन ने बात में उलझा लिया और कुँवर को बुलवा भेजा। कुँवर को देख कर कुमारी भी मोहित होकर मूर्छित हो गई। उसकी मूर्छा को मिटाने के लिए मालिन ओषधि ढूढ़ने गई। इसी बीच में कुमारी को होश आ गया, एकान्त पाकर दोनों ने रतिसुख का लाभ किया। तब से नित्य कुमारी रात में कुँवर के पास उसी कुंज में आ जाया करती थी। एक दिन जब कि दोनों रति में संलग्न थे एक शेर आ पहुँचा। उसे देख कर दोनों भागे नहीं, जब शेर मुँह फाड़ कर उनकी ओर बढ़ा तब कुमार ने उसी अवस्था में पड़े-पड़े ऐसा तीर मारा कि शेर के दोनों तालू बिंध गए। कुमार रति क्रीड़ा में उसी प्रकार फिर संलग्न हो गए। जो प्रेम में ऐसी हिम्मत करता है उसे यम से भी डर नहीं होता। इसलिये तुम घबड़ाओ नहीं मुझे किसी का भी डर नहीं है। इतने में सैनिक निकट आ गए। मधु ने उन्हें गुलेल से मार गिराया और फिर मालती की सुगन्ध चारों ओर विकीर्ण कर दी जिससे लाखों भौंरे इकट्ठे हो गए। राजा ने सैनिकों के मारे जाने की बात सुन कर विशाल वाहिनी भेजी किन्तु उन्हें भौंरों ने काट-काट कर खदेड़ दिया। राजा को इस पर विश्वास नहीं आया और उसने दूत को भेज कर वास्तविक बात का पता लगवाया। दूत ने मधुकर से बातें कीं। मधुकर ने

राजा को चुनौती दी और कहला भेजा कि अगर उनमें शक्ति हो तो आकर मुझसे मालती को छुड़ा ले जाएँ।

राजा ने इसे सुनकर दलबल के साथ चढ़ाई कर दी। राजा को इस प्रकार आते देख मालती ने विष्णु की स्तुति की और अपने सुहाग की अखंडता माँगी। विष्णु ने उसकी विनती सुन ली और गरुड, चक्र एवं शिव की शक्ति सिंह को उनकी रक्षा के लिए भेजा। राजा की फौज को एक ओर से गरुड़ ने दूसरी ओर से सिंह ने तीसरी ओर से चक्र ने और चौथी ओर से भँवरों ने संहार करना प्रारम्भ कर दिया। राजा इस दशा को देखकर भागा किन्तु सिंह उसका पीछा करता गया। तब राजा ने 'तारन' मंत्री को बुलवाया। 'तारन' मंत्री ने अपने स्वामी को बचाने के लिये मंत्र बल से सिंह का मुख फेर दिया और राजा को मधुमालती के विवाह की मंत्रणा दी। इस प्रकार राजा ने दोनों का विवाह कर दिया और वे आनन्द से रहने लगे।

चतुर्भुजदास की मधुमालती प्रेमाख्यान होते हुए भी अन्य प्रेमाख्यानों से भिन्न है। इसकी पहली विशेषता रचना शैली में ही मिलती है, कारण कि कवि ने एक कहानी के बीच छोटी छोटी पाँच कहानियाँ दी हैं जिनमें पशु-पक्षी की कहानी 'तोता मैना' और पंचतन्त्र की कहानियों की शैली में मिलती है। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति और धर्म तथा नीति की सूक्तियाँ इतनी सुन्दरता से गुंफित की गई हैं कि यह एक नीति काव्य भी कहा जा सकता है। कवि ने काव्य के अन्त में कहा भी है कि यह प्रेम प्रबन्ध अवश्य है किन्तु इसका विषय यहीं तक सीमित नहीं है, वरन् राजाओं के लिये यह राजनीति का ग्रन्थ है और मन्त्रियों के लिये उनकी बुद्धि को उद्दीप्त करने वाली रचना है।

'काम प्रबन्ध प्रकाश पुनि मधुमालती प्रकास।
प्रद्युम्न की लीला यहै, कहै चतुर्भुज दास॥'

× × ×

राजनीत किये मैं साखी। पंच उपाख्यान बुद्ध यों भाषी॥
वरनायक चातुरी बनाई। थोरी थोरी सब कुछ पाई॥
'राजा पढ़े तो राजनीत मंत्री पढ़े सुबुद्ध।
कामी काम विलास ज्ञानी ज्ञान सुबुद्ध॥'

यही कारण है कि हितोपदेश और जातक की शैली में पशु-पक्षियों की छोटी छोटी कहानियाँ पात्रों से कहला कर कवि ने कथा को ही कुशलता से आगे नहीं बढ़ाया है वरन् नीति सम्बन्धी सूक्तियों को भी एक सुन्दर लड़ी में पिरो दिया है। कथोपकथन के बीच अवान्तर कथाएँ इतनी सुन्दरता से यथास्थान

लाई गई हैं कि पाठक बिना रुके बड़े चाव से उन्हें पढ़ता हुआ आगे बढ़ता चलता है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इन कथाओं के कारण आधि-कारिक कथा का सूत्र कहीं भी छिन्न नहीं होता वरन् कथा के पात्रों की चारित्रिक विशेषता भी प्रस्फुटित होती जाती है। इसलिये कवि की यह उक्ति कि 'कथा माँझ मधुमालती ज्यों षटऋतु मों बसन्त' अत्युक्ति नहीं है।

नीति-पक्ष

इस कथा के नीतिपक्ष का अवलोकन कीजिए—एक बार हृदय में मैल पड़ जाने के उपरान्त फिर कभी भी दो हृदय निश्छल होकर मिल नहीं सकते। इसलिए अपने पूर्व बैरी पर कभी भी विश्वास न करना चाहिए। चाहे वह कितना भी मिष्टभाषी क्यों न बन जाय, अपने बैर को भूल कर फिर स्नेह-भाजन बनने का प्रयत्न क्यों न करें। 'न विश्वसेः पूर्व विरोधस्य शत्रोर्मित्रस्य न विश्वसेत्'। जिस प्रकार कुएँ मे ढेकुल जितनी ही नीचे की-ओर झुकती है उतनी ही वह कुएँ का जल सोखती है, उसी प्रकार बैरी जितना ही विनम्र होता जाता है, उतना ही उससे हानि की सम्भावना बढ़ती जाती है।

'ज्योंइ जन प्रण अति करे तो न पतीजौ गंभीर।
ज्यों ज्यों नीमै ढ़िगुली त्यों त्यों सोखे नीर॥'

मनुष्य को अपने वचन का पालन करना नितान्त आवश्यक है। देवता भी इससे प्रसन्न होते हैं—

'वाचा बंध सार जो गहई। उनको देव देव कर कहई॥
झूठे वचन अकारथ लहिए। सो अपने सुकृत को दहिए॥'

मनुष्य को बिना किसी प्रयोजन के दूसरे के घर न जाना चाहिए। जो मनुष्य बिना प्रयोजन दूसरे के घर जाते हैं उन्हें जीवन में दुःख और लघुता ही का अनुभव करना पड़ता है।

'रवि गृह गयो चन्द भयो मन्दा। हारे बामन बल के करि छन्दा॥
शंकर जटा सुरसरी आई। ऐसे घर कर लघुता पाई॥'

धन की अधिकता और काम की तीव्रता में मनुष्य इस प्रकार अन्धा हो जाता है कि उसमें और जन्मांध में कोई अन्तर नहीं रह जाता—

'जो गति अंधो जन्म की, सोगत काम को अन्ध।
लक्ष्मवान धन अन्धरो अन्तर पूरन अन्ध॥'

क्षुधा तथा काम से पीड़ित मनुष्य को लज्जा तथा भय नहीं रह जाती।

'क्षुधा अर्थ मेरी अनुरागी। चिंता कामि काम कर जागी॥'
लज्जा डरते मेरी भागी। सुन सखी जैल भान यों त्यागी॥'

भले मनुष्य सदैव परोपकार में संलग्न रहकर स्वयं दुख सहते हैं, उनकी गति पेड़ के समान होती है जो पत्थर मारने पर फल देते हैं और शीत और घाम को अपने सर पर बर्दाश्त कर दूसरों को छाया देते हैं—

'देखी धरनी अंबु की सर्व विस्व के हेत।
पुनि तरवर की गति कहा परहित काज करेय।।-
धूप सहे शिर आपने औरे छाम करेय।'

जो मनुष्य उद्यम, साहस, युद्ध और पराक्रम से कार्य करते हैं उनसे यम भी डरता है—

'उद्यम जस साहस प्रबल, अधिक धीर नर चित्त।
ताके बल की मत कहो यम की कटक संकित्त ।।'

कवि ने जहां एक ओर नीति और धर्म विषयक उक्तियों से अपना काव्य अलंकृत किया है वहां काम की अवहेलना उसने नहीं की। उसका मधु प्रद्युम्न का अवतार है और देव का अंश है। जैत माल्ती कहती है कि मधु का विनाश करने वाला कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ। प्रेम और काम तो सृष्टि के साथ ही संसार में उत्पन्न हुए हैं वह संसार के अणु-अणु में प्रतिबिम्बित है और कोई भी मनुष्य इससे शून्य नहीं हो सकता।

'जा दिन से पुहुमी रची जिय जंत जगनाम।
भवन मध्य दीपक रहे त्यों घट भीतर काम।।'
शरीर मध्य जाग्रत सदा जग की उत्पति धाम।
ज्यों ढूँढो त्यों पाइए प्रान संग नित काम।।
गोरस में नवनीत ज्यों काष्ठ मध्य ज्यों आग।
देह मध्य त्यों पाइये प्रान काम इक लाग।।
विजुरी ज्यों घन मो रहे मंत्र तंत्र महि राम।
देह मध्य ज्यों काम है फूल मध्य पैराग।।
दर्पन मो प्रतिबिम्ब ज्यों छाया काया संग।
कामदेव त्यों रहत हैं ज्यों जल वसतु तरंग।।

---

१. मधुकर को ऐसो को मारी। देव अंश पूरन अवतारी।।
उनकी अकथ कथा बहु न्यारी। तीन लोक सिगरे जिन जीते।
ऐसे ख्याल बहुत इन कीते। सुर मुनि असुर नाग नर सोई।
व्यापो सकल रह्यो नहि कोई। जोगी होइ कै जिन मारे।
औरन को सहि दुख बिदारे। शशि सराप या को गुरु पायो।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

मालती के नखशिख वर्णन में कवि की शृंगारी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। उसकी उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं परम्परागत होते हुए भी अनूठी मालूम होती हैं। काली-काली निकुर राशि के बीच निकली हुई माग की रेखा पर काशी करवत की उत्प्रेक्षा बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। इसी प्रकार ललाट पर दिए हुए मृग-मद को रस की रसना से साम्य देकर बड़ा सुन्दर बना दिया है—

'बेनी मध्य मांग दश पाटी। मनहुँ शेश फनी करवत काटी ॥
तापुर शीश फूल मन धारी। मृग मद तिलक रसना है कारी ॥'

चन्द्रमुख पर बरौनियों की श्याम रेखा के सौन्दर्य पर सदेहालंकार की कवि ने झड़ी सी लगा दी है। जैसे कवि कहता है, मानों चन्द्रमुखी के मुख पर सर्पों ने सुधा पान के लिए अपना डेरा जमा रक्खा है अथवा मधुकरों की पंक्ति खिले हुए कमल पर मंडरा रही है। अथवा नायिका ने मदन से युद्ध करने के लिए अपनी भौं रूपी कमान खींच रखी है। 'बुंदे' की मुक्ता के पास तीन चार लटकती हुई और उस पर पड़ी हुई लटें ऐसी सुशोभित होती हैं मानों अंडों को सेती हुई नागिन सुशोभित हो रही हो—

'मुक्ता चार अलक ढिग सोहें। अण्डन पर मनो नागिन सो है ॥'

बिम्बाधरों के पास दमकती हुई दन्तावली ऐसी सुशोभित हो रही है मानो रक्तघन में बिजली सुशोभित हो रही है—

'अधर पर वारे निरखन हारे। पुनि बिम्बाफल पाके न्यारे ॥
तामे दशन अति मुसकति सोहैं। बिजुरी मनो रक्तघन को है ॥'

रक्तघन में बिजली का सयोजन कवि की अपनी उद्भावना है जो कवि परिपाटी से सर्वथा नवीन है। नाभि के वर्णन में भी हमें एक अनूठापन मिलता है उसे कवि ने काम के चढ़ने की 'पेड़ी' अथवा सीढ़ी माना है।

'नाभ कूप हाटक जैसी । पुनि त्रिलोक सोभा सह ऐसी ॥
पेड़ी काम चढ़न की कीन्हीं। कै विधि आह अङ्कुरिया दीन्हीं ॥'

कटि की क्षीणता की मृगमरीचिका से उपमा देकर कवि ने बड़ी सुंदर उद्भावना की है। इस उक्ति में स्थूल और सूक्ष्म का साम्य बड़ा सुन्दर और अनूठा बन पड़ा है। जिस प्रकार मृगमरीचिका दिखाई पड़ते हुए भी सूक्ष्म होती है, इन्द्रियों के द्वारा अनुभव नहीं की जा सकती, उसी प्रकार नायिका की कटि दिखाई तो पड़ती है किन्तु वह इतनी सूक्ष्म है कि उसकी स्थूलता का अनुभव नहीं किया जा सकता—

'केहरि कटि किधौं मृग छाहीं। मानो टूट परे जिन अबहीं ॥'

'टूट परे बिन अबहीं' में 'जिन' का प्रयोग एक अद्‌भुत लालित्य उत्पन्न कर देता है। ऐसा मालूम होता है कि यह अभी टूटी, अभी टूटी, यह शब्द कटि की स्वाभाविक लोच को भी बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त करता है।

संयोग-पक्ष

काम की विशालता तथा उसके प्रभाव को इस कवि ने स्वीकार किया है, इसलिये नीति विषय की प्रधानता होते हुए इस काव्य में नारी का स्थूल सौंदर्य प्रेमाख्यानों की परम्परा के अनुकूल स्फुरित हुआ है। यह अवश्य है कि इसकी शृंगारी भावना मर्यादा का उलंघन नहीं करती। यही कारण है कि इस काव्य में रति या सुरतान्त का न तो वासनामय चित्रण मिलता है और न हावों का सयोजन ही। ऐसे स्थलों का उसने कहानी के संघटन में ही संकेत कर दिया है। केवल एक स्थान पर ही कंचुकी के तड़पने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती है। मधु को देखकर काम से पीड़ित पनिहारियों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'प्रगट्यो मैन कंचुकी तरके। जल के कुंभ शीश ते ढरके।'

बाकी अंशों में वह केवल संकेत मात्र करता है। उसके अनुसार स्त्री का यौवन पति के बिना उसी प्रकार सूना है जिस प्रकार रात्रि तारों के बिना या सरोवर कमलों के बिना।

'ज्यों निशि उड़गन चंद बिहूनी। जैसे वाड़ी चंपा पिक बिन सूनी॥
रित बसंत पिक बिन नहिं नीकी। बरखा घन दामिनि बिन फीकी॥
मनि धर लाल हेम बिन सूनी। त्रय बिन जोवन कंत बिहूनी॥'

इतना होते हुए भी कवि की रुचि बड़ी परिमार्जित प्रतीत होती है। उसने रति और संभोग के अश्लील वर्णनों से अपने को भरसक बचाया है। यही कारण है कि इस कवि का संयोग शृंगार कहीं भी अमर्यादित नहीं होने पाया है।

भाषा

इस रचना की भाषा अवधी है, किन्तु नीति सम्बन्धी स्थलों पर इस कवि ने संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग किया है और उनके भावार्थ को कहीं कहीं उन्हीं के नीचे अपनी भाषा में अनूदित कर के दे दिया है।

'विश्वासः पूर्वं विरोधस्य शत्रोर्मित्रस्य न विश्वसेत।
दग्धं उलूकः किंदरामध्ये काक हुतासने॥'
'ज्योंह् जन प्रण अति करे तो न पतीजौ गभीर।
ज्यों ज्यों नींमें ढिगुली त्यों त्यों सोखे नीर॥'

छन्द

सम्पूर्ण रचना दोहे और चौपाई में वर्णित है जिसमें अभी तक आठ अर्घालियों के बाद एक दोहे का क्रम प्राप्त होता है, लेकिन स्थान-स्थान पर कवि ने सोरठा कुण्डलियां, कवित्त आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

इस प्रकार कथा के संयोजन, भाव, भाषा और अलंकार की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना ठहरती है।

माधवानल कामकंदला चउपई

...कुशललाभ कृत

रचनाकाल सं० १६१२

लिपिकाल स० १६७९

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

एक समय इन्द्रपुरी में राजा इन्द्र ने प्रसन्न होकर अप्सराओं को नाटक खेलने का आदेश दिया। इन्द्रपुरी की अप्सराओं में सबसे सुन्दर अप्सरा जयन्ती को अपने रूप और कला पर बड़ा घमंड हो गया था इसलिए उसने यह सोचकर कि उसके बिना नाटक हो ही नहीं सकता, भाग ही नहीं लिया। इन्द्र ने जयन्ती को क्रुद्ध होकर शाप दे दिया और वह शाप के फलानुसार मृत्युलोक में शिला के रूप में अवतरित हुई। इन्द्र ने शाप देने के उपरान्त जयन्ती के विनती करने पर यह वरदान भी दे दिया था कि जब माधव ब्राह्मण उसका वरण करेगा तब वह शाप मुक्त हो जाएगी।

जयन्ती शिला रूप में पुष्पावती नगरी में अवतरित हुई। कैलाश पर्वत पर योगिराज शंकर बारह वर्ष की समाधि में अविचल बैठे थे। एक दिन समाधिस्थ अवस्था में ही उनका मन उमारमण के लिए चंचल हो उठा और उसी अवस्था में वह इस विचार से स्खलित हो गए। शंकर के वीर्य के पृथ्वी पर गिरने की आशंका तथा उसके द्वारा होने वाले संभाव्य उत्पात के विचार से प्रेरित होकर विष्णु ने प्रकट होकर उस बिंदु को अपनी अंजुली में ले लिया और उसे एक कमलिनी की नाल में रख दिया।

गङ्गा तट पर पुष्पावती नगरी में राजा गोविंद चन्द राज करता था इस राजा के पुरोहित शंकरदास को कोई पुत्र नहीं था इसलिए वह बहुत दुखी रहता था। एक रात उसे शिव ने स्वप्न में बताया कि गंगातट पर जाओ वहाँ तुम्हें

एक पुत्र मिलेगा। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ गङ्गा तट पर गया और एक बड़े ही सुन्दर बालक को पाया। इस ब्राह्मण ने पुत्र का नाम माधवानल रखा जो बड़ा बुद्धिमान एवं तेजस्वी था। एक दिन बारह वर्षीय बालक माधवानल अपने समवयस्कों के साथ नदी तट पर पहुँचा वहाँ शिला रूपिणी नारी को देख कर बालकों ने खेल ही खेल में माधवानल को दूल्हा बना कर इस नारी से विवाह कराया। माधवानल के पाणिग्रहण संस्कार के उपरान्त वह शिला अप्सरा बन कर आकाश में उड़ गई और सारे बालक अवाक होकर उसे देखते रह गए।

इन्द्र लोक में पहुँच कर जयन्ती बड़ी दुखी रहने लगी। उसे बार-बार माधव का ध्यान आता था, वह सोचती थी कि माधव ने उसका बड़ा उपकार किया है साथ ही साथ वह माधव की विवाहिता पत्नी भी है इसलिए एक रात्रि को माधव के पास वह फिर आई और आकर उसने अपनी सारी कहानी एवं हृदय की व्यथा माधव पर प्रकट की। तदुपरान्त प्रति रात वह माधव के पास आती और दोनों दाम्पत्य सुख लाभ करते। एक दिन 'जयन्ती के सो जाने के कारण इन्द्रलोक पहुँचने में देर हुई जिसके कारण अन्य अप्सराओं ने उसका भेद पा लिया और उन्होंने इन्द्र से जाकर शिकायत की। इन्द्र के डर से जयन्ती ने थोड़े दिन आना बन्द कर दिया। उसके न आने से माधव बड़ा दुखी रहने लगा कुछ दिवस उपरान्त जयन्ती माधव के पास आई और उसने सारी बात माधव को बताई, यह भी बताया कि किस विवशता के कारण विवाहिता स्त्री होते हुए भी वह माधव के पास नहीं आ सकती है। उस दिन से माधव स्वयं इन्द्रपुरी जाने लगा। एक रात इन्द्र ने फिर अपने यहां नाटक का आयोजन किया। जयन्ती बड़े संशय में पड़ गई अन्त में उसने माधव को भ्रमर का रूप देकर अपनी कंचुकी में अवस्थित कर लिया। सभा में नृत्य करते समय वह अपने अंगों को विशेष रूप से इसलिए नहीं मोड़ती थी कि कहीं कंचुकी के बीच में अवस्थित भ्रमर रूपी माधव दब न जाय। इन्द्र ने जयन्ती की इस दशा को ध्यान से देखा और माधव रूपी भ्रमर को कंचुकी में अवस्थित देखकर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने जयन्ती को वेश्या के रूप में मृत्युलोक में जन्म लेने का शाप दिया। इस शाप के कारण कामावती नगरी में कन्दला वेश्या के रूप में जयन्ती ने जन्म लिया।

इधर माधव अप्सरा के प्रेम में व्याकुल रहने लगा। अनजान में माधव का रूप उसके लिए घातक था। नगर की सारी स्त्रियां उसके रूप पर मोहित थीं तथा अपने घर का काम छोड़कर उसकी याद में समय व्यतीत किया करती

थी और अपने पति की ओर ध्यान नहीं देती थीं। एक दिन कुछ आदमियों को लेकर एक महाजन ने राजदरबार में माधव के ऊपर स्त्रियों को दुश्चरित्रा बनाने का अभियोग लगाया और उसके निष्कासन की प्रार्थना की। राजा ने माधव के रूप का प्रभाव देखने के लिए उसे अपने यहाँ निमंत्रित किया जहाँ उसकी रानियाँ एवं अन्य स्त्रियां भी थीं। माधव के रूप को देखकर स्त्रियां विह्वल हो गईं और कुछ अपने को संभाल न सकीं। स्त्रियों की इस दशा को देखकर राजा ने माधव को निष्कासन की आज्ञा दे दी। माधव पुष्पावती को छोड़ कर घूमता हुआ कामावती पहुँचा।

इन्द्रमहोत्सव के दिन राजा कामसेन के यहां नाटक खेला जा रहा था। मृदंग आदि बाजे बज रहे थे। माधव भी राजद्वार पर पहुँचा किन्तु अन्दर होते हुए तंत्रीनाद एवं मृदंग की धुन सुनकर अपना सर धुनने लगा। द्वारपाल के पूछने पर उसने बताया कि पूर्व की ओर मुँह किए हुए जो पखावज बजा रहा है उसके अंगूठा नहीं है इसलिए स्वर भंग हो रहा है। द्वारपाल के द्वारा इस बात के मालूम होने पर राजा ने माधव का बड़ा सत्कार किया और उसे अन्दर बुला लिया। माधव को काम कन्दला ने देखा और कन्दला ने माधव को। दोनों एक दूसरे को परिचित से जान पड़ने लगे। माधव सोचने लगा कि सम्भवतः यह वही अप्सरा तो नहीं है जिसने मुझे अपने कुच के बीच में रख लिया था और कन्दला यह सोचने लगी कि सम्भवतः मैंने इसे अपने कुच के बीच कभी स्थान दिया था कब दिया था स्मरण नहीं आता। इतने में कन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ और एक भँवरा कन्दला के कुच के अग्र भाग पर आ बैठा। उस भ्रमर के बैठते ही कन्दला की स्मरण शक्ति जाग्रत हो गई और उसने माधव को पहचान लिया। इस स्मरण शक्ति के जाग्रत होने के साथ ही भौंरों ने कुच पर दंशन किया और काम कन्दला ने उसे पवन स्रोत से उड़ा दिया। नर्तकी की इस कला की ओर माधव को छोड़कर किसी ने ध्यान नहीं दिया अतएव माधव ने नर्तकी को पास बुलाकर राजा द्वारा प्रदत्त सारे आभूषण आदि को कामकन्दला पर निछावर कर दिया। माधव के इस व्यवहार को राजा ने अपना अपमान समझा और उसे देशनिकाले का दण्ड दे दिया। कामकन्दला ने माधव से मिलकर उसे अपने पूर्व जन्म का सारा हाल बताया और घर ले गई। माधव कुछ समय तक कामकन्दला के साथ रह कर राजाज्ञा के अनुसार कामावती छोड़कर चल दिया। कन्दला के वियोग मे भटकता हुआ माधव राजा विक्रमादित्य के राज्य में पहुँचा और उसने पर दुःख भंजन विक्रमादित्य द्वारा अपने वियोग दुख से छुटकारा पाने की अभिलाषा हेतु शिव मन्दिर मे गाथा लिखी जिसे पढ़कर विक्रमादित्य

पड़ा दुःखी हुआ। विक्रमादित्य की आज्ञा से सारे नगर निवासी इस विरही को ढूंढ़ने निकले। गोपविलासिनी नाम की वेश्या ने शिव मन्दिर में माधव को ढूंढ़ निकाला। तदुपरान्त विक्रमादित्य ने वेश्या के प्रेम को त्यागने के लिए बड़ी विनती की एवं प्रलोभन दिए लेकिन माधव के न मानने पर विक्रमादित्य ने कामावती पर चढ़ाई कर दी। कामावती में विक्रमादित्य ने कन्दला की परीक्षा लेते समय माधव की मृत्यु का झूठा सन्देश कहा जिसके कारण कन्दला की मृत्यु हो गई। कन्दला की मृत्यु का हाल जानकर माधव भी मर गया। वैताल की सहायता से अमृत प्राप्त कर विक्रमादित्य ने दोनों को पुनः जीवित किया और उसके उपरान्त विक्रमादित्य के कहने पर कामसेन ने कन्दला माधव को सौंप दी इस प्रकार कन्दला को पाकर माधव अपने पिता के यहाँ पुनः लौट आए।

कुशललाभ का माधवानल कामकन्दला प्रेम काव्य होते हुए भी नीति और उपदेश प्रधान काव्य कहा जा सकता है। इसलिए कि कवि ने चउपाई में तो कथा का वर्णन किया है किन्तु दोहों, सोरठों और गाहा एवं संस्कृत के श्लोकों तथा मालनी छन्दों में उपदेश और नीति का प्रतिपादन किया है। यह नीति सम्बन्धी उक्तियाँ कथा की घटनाओं के साथ ऐसी गुम्फित कर दी गई हैं कि पाठक का न तो जी ऊबता है और न कथा के रस परिपाक में कोई बाधा उत्पन्न होती है जैसे—पुहुपावती को छोड़कर माधव कामावती नगरी पहुँचा। वहाँ के सुन्दर नर-नारियों एवं नगर की शोभा को देखकर हर्षित हुआ किन्तु कोई उससे बात न पूछता था। इस पर कवि कहता है कि मनुष्य को उस नगरी में न जाना चाहिए जहाँ अपना कोई न हो।

माधव पुहुतउ नगरी मझारी, रूपवंत दीसइ नर नारी।
मन हरखिउ नगरी मांहि भ्रमइ, कोइ बात न पूछै किमइ।
तिणि देसड़इ न जाइंइ, जिहाँ अप्पणु न कोई।
सेरी सेरी हीउंता, वत न पूछइ कोइ॥

अथवा माधव को राजा ने कुपित होकर कामावती से निर्वासित कर दिया इस पर कवि कहता है यदि माँ पुत्र को विष दे, पिता पुत्र का विक्रय करे और राजा प्रजा का सर्वस्व हर ले तो इसमें वेदना अथवा दुख की कोई बात नहीं—

माता यदि विषं दद्यात्, पिता विक्रयते सुतम्।
राजा हरति सर्वस्वं, यत्र का परिवेदना॥

यहां एक बात और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है वह यह कि इन उक्तियों में तत्कालीन सामाजिक अवस्था का भी पता चलता है। उपर्युक्त अंश से यह स्पष्ट है कि उस समय राजा का एकाधिकार माना जाता था, प्रजा को राजाज्ञा का उल्लंघन करने अथवा उसका निरादर करने का कोई अधिकार न था, 'पुत्र' पर माता-पिता का अधिकार उसी प्रकार था जिस प्रकार राजा का प्रजा पर। इस उद्धरण में राजा की आज्ञा-भंग करना अथवा महत् पुरुष का मानमर्दन करना एवं नारी के लिए पृथक शय्या रखना उनका शस्त्र के द्वारा वध करने के समान कहा गया है।

आज्ञा भंङ्गो नरेन्द्राणां महंतां मान मर्दनम्।
पृथक शय्या च नारीणाम शस्त्र वध उच्यते॥

इस अंश में राजा और महापुरुषों के तत्कालीन सम्मान की सूचना के अतिरिक्त स्त्री का पुरुष पर ही अवलंबित रहने की प्रथा का पता चलता है। उपर्युक्त अंश इसी रूप में या कुछ परिवर्तनों के साथ दामोदर, गणपति एवं अज्ञात कवि नामा माधवानल कामकंदला में भी मिलते हैं। जिनकी रचनाएं सं० १६०० से १७०० के बीच में हुई हैं। अस्तु हम कह सकते हैं कि इन रचनाओं मे आए हुए ऐसे अंश तत्कालीन सामाजिक अवस्था के दर्पण हैं।

अब कुछ नीति और उपदेश विषयक सूक्तियों के भी उदाहरण लीजिए। मनुष्य को अपने सद्गुण एवं हृदय को चुप्पी के ताले में बन्द रखना चाहिए जब कोई गुणवान पुरुष मिले तभी इस ताले को वचन रूपी कुंजी से खोलना चाहिए अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति से अपने मन की बात कहना मूर्खता है।

मन मंजूषा गुण रतन चुपकर दीधी ताल।
को सगुण मिलइ तो खोलइ, कुञ्जी वचन रसाळ।

संसार में कुछ ही ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो दूसरों के गुणों का आदर करते हैं, कुछ ही निर्धनों से प्रेम कर सकते हैं और कुछ ही ऐसे व्यक्ति हैं जो दूसरे के कार्य के लिए चिन्तित और दुख मे दुखित होते हैं।

विरला जांणसि गुणा, विरला पालंति निद्धणा नेह।
विरला पर कज्जकरा, पर दुक्खे दुक्खिय विरला॥

अथवा दुर्जनों का स्वभाव ही दूसरों के कार्यों का विनाश करना है उन्हें इसी में तृप्ति मिलती है जैसे चूहा वस्त्रों को काट डालता है लेकिन उससे उसका कोई लाभ नही होता।

दुर्जनस्य स्वभावोयं परकार्य विनाशकः।
न तस्य जायते तृप्तिः मूषको वस्त्र भक्षणात्॥

कहने का तात्पर्य यह है कि इस रचना में नीति और उपदेशात्मक कथनों की बहुलता मिलती है।

काव्यप्रणयन की शैली की तरह कथावस्तु मे भी कवि ने अपनी कहानी-कला की कुशलता का परिचय दिया है। अप्सरा जयन्ती के अभिशप्त होने की कहानी आलम की बड़ी प्रति में भी मिलती है किन्तु इस कवि ने उसे दो बार इन्द्र से अभिशप्त कराया है। पहले शाप से वह प्रस्तर की मूर्ति के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुई और दूसरे शाप से कंदला वेश्या के रूप में। इन दोनों घटनाओं के द्वारा कवि ने जयन्ती के तीन जन्मों की कहानी का संयोजन कर जहाँ एक ओर कथानक में लोकोत्तर घटनाओं और कुतूहल का संयोजन किया है वहीं माधव और कंदला के प्रेम में स्वाभाविकता उत्पन्न कर दी है! इसी प्रकार माधव को शिव का अंश अंकित कर कवि ने माधव और कंदला के सम्बन्ध को आदर्श प्रेम का प्रतीक बना दिया है!

कथानक के सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से आलोच्य कथानक दो भागों में बाटा जा सकता है। आधिकारिक और प्रासंगिक।

आधिकारिक कथा के अन्तर्गत माधव और कंदला की प्रेम कहानी आती है, जो उनके पूर्व जन्म से सम्बन्धित है। जयन्ती के शाप की घटनाएँ, माधव का पुष्पावती और कामावती से निष्कासन, कामावती मे माधव और कंदला का मिलन तथा माधव का कंदला को पाने का प्रयत्न मूलकथा के अन्तर्गत आते हैं।

भ्रमर के दंशन की घटना, मृदंगियों आदि का त्रुटि पूर्ण वादन, विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा एवं बैताल द्वारा अमृत लाभ प्रासगिक कथा के अन्तर्गत आते हैं।

जहाँ तक आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का सम्बन्ध है दोनों का गुम्फन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है जैसे अमृतलाभ के लिए ही कवि ने बैताल का उल्लेख किया है, इसके अतिरिक्त नहीं। ऐसे ही भ्रमर के दंशन की घटना को कवि ने इन्द्र सभा में भ्रमर रूपी माधव से सम्बन्धित कर जहाँ इस प्रासंगिक घटना में लोकोत्तर वातावरण का अंकन किया है वहीं भारतीय तत्व का भी समावेश कर दिया है।

अस्तु हम कह सकते हैं कि कथा प्रबन्ध की दृष्टि से यह रचना बड़ी सफल और सुन्दर बन पड़ी है।

कार्यान्वय की आरम्भ मध्य और अन्त की अवस्थाएँ स्फुट हैं। इन्द्र के शाप से लेकर कामावती में माधव-कंदला के मिलन का प्रसग आरम्भ, कामावती

से निष्कासन से लेकर विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा तक मध्य और अमृत लाभ से माधव और कंदला के पुर्नमिलन तक कथा का अन्त कहा जा सकता है। आदि अंश की सब घटनाएँ मध्य अर्थात् कंदला के प्रेम की अनन्यता की ओर उन्मुख हैं। इसके बीच आए हुए नखशिख वर्णन संयोग-वियोग के चित्रण आदि मध्य के विराम के अन्तर्गत आते हैं। अमृत लाभ के उपरान्त घटना प्रवाह फिर कार्य की ओर मुड़ जाता है। इस प्रकार 'कार्यान्वय' के सभी अवयव इस काव्य में मिलते हैं।

जहाँ तक गति के विराम का सम्बन्ध है हम यह कह सकते हैं कि मार्मिक परिस्थितियों के विवरण और चित्रण जो इस स्थल पर मिलते हैं वह सारे प्रबन्ध में रसात्मकता लाने मे बड़े सहायक हुए हैं।

अस्तु कथा के संगठन, कार्यान्वय के सामञ्जस्य और मार्मिक परिस्थितियों की अभिव्यञ्जना की दृष्टि से यह रचना पूर्ण उतरती है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

कंदला के रूप वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों का ही वर्णन किया है जैसे वह चम्पक वर्ण है। अधर 'प्रवाल' के समान लाल और चाल हंस के समान मन्थर है, नाक दीप शिखा के समान है, नेत्र भयभीत मृगी की आखों की तरह चञ्चल हैं।

चंपक वर्ण सकोमल अङ्ग। मस्तकि वेणि जाणि भुयंग॥
अधर रंग परवाली वेलि। गयवर हंस हरावइ गेलि॥
नाक जिसी दिवानी सिखी। माहि रतन जड़ित यहिर सी॥
मुख जाणि पूनिमतु चंद। अधर वचन अमृत मय बिंद॥
पीन पयोधर कठिन उतंग। लोचन जणि त्रस्त कुरंग॥

संयोग शृङ्गार में कवि ने भोग विलास का वर्णन नहीं किया है केवल उसका सकेत मात्र मिलता है।

काम कंदला विषय रस, माधव विलसइ जेह॥
ते सुरत जाणइ ईसवरह, किइ वलि जाणइ तेह॥

पहेली बुझाने, गाहा गाथा और गूढा कहने और सुनने की प्रथा का अनुसरण इस काव्य में सयोग शृंगार में प्राप्त होता है।

प्रिय पर दीपइ नीयजइ, दता मांहि समाइ।
जिणि दीठइ पीउ रंजीइ, सो मुझ मूके माइ॥
—'काजल' (उत्तर)

डूंगर कड्ड घर करइ, सरली मुंकि धाइ।
सो नर नयणे नीपजइ, तसु मुक सदा सुहाइ॥
—'मोर' (उत्तर)

विप्रलंभ शृंगार

इस काव्य का विप्रलम्भ शृङ्गार भी उतना ही हृदयग्राही है जितना कथा भाग। वियोगिनी की मानसिक अवस्था का सवेदनात्मक वर्णन करने में कवि बड़ा सफल हुआ है। जैसे विरह के दिन और रातें काटे नहीं कटतीं कन्दला के लिए 'निमिष' दिन के समान और रात्रि छः मास की तरह लम्बी प्रतीत होती है।

निमिप इक मुझ दिन हुआ, रयणि हुई छः म्यास।
वालंभ! विरहइ तुझ तणइ, जीव जलइ नींसास॥

प्रियतम के वियोग में भी हृदय के टुकड़े टुकड़े न हो गए इसपर झुंझला कर नायिका कहती है कि ऐ हृदय तू वज्र का बना है या पत्थर का जो प्रियतम का बिछोह तुझसे सहन हो सका।

रे हिया! वज्जर घड़ीयउ, कि पाषाण कुरंड।
वालंभ नर निच्छोहीयउ, हुउ न खंडउ खंड।

माधव को भेजे हुए सन्देश में कन्दला कहलाती है कि प्रियतम तुम मुझसे इतनी दूर हो तो यह न समझना कि तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कम हो गया है।

दूरंतर के वास, मत जाणउ तुम्ह प्रीति गई।
जीव तुम्हारइ पास, नयन विछोहे पर गये॥

तुम्हारे वियोग में मैं इतनी कृश हो गई हूं कि उँगली की अंगूठी हाथ का कंगन बन गई है।

विरह जे मुझ नइ करिउ, ते मंह कहण न जाइ।
अंगुल केरी मुद्रड़ी, ते बांहड़ी समाइ।

मेरे हृदय में अग्नि जल रही है और उसका धुंआ अन्दर ही अन्दर घुट कर रह जाता है मैं दिन-दिन पीली पड़ती जाती हूँ।

हियड़ा भीतरि दव बलइ, धूंआ प्रगट न होइ।
वेलि विछोहया पानण्डा, दिन दिन पीला होइ॥

मेरे नेत्रों की ज्योति रोते-रोते चली गई है और हाथों में वस्त्र निचोड़ते-निचोड़ते छाले पड़ गए हैं।

कन्ता मंह तू वाहरी, नयण गमांया रोइ।
हत्थली छाला पड्या, चीर निचोइ निचोइ॥

लोक काव्य होने के कारण जन साधारण में प्रचलित बहुत सी उक्तियाँ भी इसमें मिलती हैं जिनकी भाषा भी परिवर्तित है। जैसे—

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लालन देखन मैं चली मैं भी हुई गुलाल॥
इह तन जारू, मसि करूं धूयां जाइ सरगि।
जय प्री वादल होइ करि, वरस बुझायइ अगि॥
या
लोचन तुम हो लालची अति लालच दुख होइ।
जूठा सा कछूतर मोहि, सांच कहेगो लोइ॥

अलंकार

कवि ने अलंकारों में सादृश्य मूलक उपमा अलंकार का ही प्रयोग किया है जो स्वतः आए जान पड़ते हैं। काव्यकौशल और अलंकारों की छटा-दिखाने में कवि नहीं उलझा है इसलिए इसमें दूर की कौड़ी लाने का प्रयास नहीं मिलता।

भाषा

इसकी भाषा चलती हुई राजस्थानी है जिसमें कहीं कहीं अपभ्रंश के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

छन्द

आधिकारिक कथा की रचना कवि ने चउपई छन्द में की है लेकिन नीति आदि का प्रतिपादन करने के लिए उसने सोरठा, गाहा, दूहा एवं संस्कृत के मालती छन्द का भी प्रयोग किया है।

सत्यवती की कथा

—ईश्वरदास कृत

—रचनाकाल—सं० १५५८

कवि-परिचय

कवि का जीवनवृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

एक दिन जन्मेजय ने व्यास से पांडवों के वनवास की कथा पूँछी। उन्होंने बताया कि आठ वर्ष तक पाडव नाना वनों में घूमते हुए नव वर्ष झारखण्ड वन पहुँचे। जहाँ उन्हे मारकण्डेय मुनि मिले। मुनि ने युधिष्ठर को सत्यवती की कथा सुनाई जो इस प्रकार थी—

मथुरा में चन्द्रोदय राजा राज्य किया करता था जो बड़ा पराक्रमी एवं धार्मिक था। सन्तानहीन होने के कारण वह बहुत दुखी रहता था। एक दिन अपने इस कलुष को मिटाने के लिए वह राजपाट छोड़कर वन में चला गया और वहाँ शिव की आराधना और कठिन तपस्या करने लगा। शिव उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रकट होकर राजा से वरदान माँगने को कहा। राजा ने कहा—

सुनु स्वामी सिव संकर जोगी। पुत्र लागि मैं भयउ वियोगी।
पुत्र लागि मैं तजा भंडारा। देस नगर छाड़ा परिवारा।।

शिव ने उत्तर दिया कि पूर्व जन्म में तुमने ब्राह्मणों और स्त्रियों को निरपराध दुःख दिया है। इसलिए तुम्हे पुत्रलाभ ब्रह्मा ने नहीं लिखा है। मैं कर्म की रेखा को नहीं बदल सकता; किन्तु जाओ तुम्हारे यहाँ एक कन्या का जन्म होगा उसका नाम सत्यवती रखना—अस्तु शिव के वरदान स्वरूप राजा के यहाँ कन्या का जन्म हुआ।

बड़ी होने पर यह कन्या बड़ी धर्मपरायणा निकली वह नित्य शिव का पूजन किया करती थी।

इन्द्र का पुत्र रितुपर्न बड़ी दुष्ट प्रकृति का था एक दिन वह अहेर खेलने गया किन्तु रास्ता भूल जाने से उसके साथी बिछुड़ गए। वह भटकता-भटकता एक वटवृक्ष के पास पहुँचा जिसकी शाखाएँ तीस कोस तक फैली हुई थीं। उस पर चढ़कर उसने पूर्व की ओर देखा—कुछ दूर पर उसे एक सुन्दर सरोवर दिखाई पड़ा जिसमें कुछ सुन्दर बालाएं नहा रही थीं। उसमें से एक के रूप को देखकर वह मोहित हो गया और एक टक देखता रहा। इस बाला की दृष्टि भी उस पर पडी उसका मन भी तनिक विचलित हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण अपने को अर्द्धनग्नावस्था में देखकर वह सकुचित हुई और उसने रितुपर्न को शाप दे दिया कि तुम तुरन्त ही कुष्टि हो जाओ। शाप के फल-स्वरूप कुष्टि होकर रितुपर्न पृथ्वी पर गिर पड़ा। पीड़ा से वह रात-दिन तड़पा करता था और उसके शरीर से निकली दुर्गन्ध से सारा जङ्गल व्याप्त हो रहा था।

एक दिन वनदेवियाँ उधर से निकलीं और रोगी की इस शोचनीय अवस्था को देखकर उन्होंने वरदान दिया कि चन्द्रोदय की पुत्री से विवाह करने के उपरान्त तुम्हारा शरीर ठीक हो जायगा।

चन्द्रोदय राजा कुछ दिनों के उपरान्त उसी जङ्गल में आखेट खेलने आया। रोगी की दुर्गन्ध से वह इतना विचलित हुआ कि नगर में लौटकर उसने दान आदि देकर प्रायश्चित किया। फिर भोजन करने बैठा। बिना अपनी पुत्री सत्यवती को साथ में बैठाए वह भोजन नहीं करता था। सत्यवती उस समय तक महल में पूजा के बाद लौट कर नहीं आई थी। राजा ने दूत को भेजकर उसे बुलवाया किन्तु सत्यवती ने कहला भेजा कि राजा से कह दो वह भोजन कर ले मैंने अभी पूजन समाप्त नहीं किया है। आज्ञाभंग से राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने सत्यवती को जंगल में पड़े कुष्टी को सौंप दिया।

सत्यवती तब से चौदह वर्ष तक उसी पेड़ के नीचे अपने पति की सेवा करती रही। एक दिन सत्यवती ने अपने पति से 'प्रभावती' तीर्थ नहाने के लिए कहा और बताया कि उस पुण्य तीर्थ में देव कन्याएँ आदि भी नहाने आती हैं। किन्तु चलने में असमर्थ होने के कारण उसके पति ने जाने से मना कर दिया इस पर सत्यवती उसे अपने कन्धे पर लाद कर तीर्थ की ओर चली। दिन भर चलने के कारण वह बहुत थक गई। सन्ध्या के झुट-पुटे में वह पर्वत पर चढ़ती चली जा रही थी, एक स्थल पर एक ऋषि तप कर रहे थे। रितुपर्न का पैर ऋषि के लग गया इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने शाप

दिया कि जिस मनुष्य ने उन्हें ठोकर मारी है उसका शरीरान्त प्रातःकाल तक हो जाए।

इस शाप को सुनकर सत्यवती काप उठी और उसने तुरन्त ही कहा कि अगर मैं वास्तव में सती हूँ तो कल से सूर्य निकलना ही बन्द हो जाएगा।

सत्यवती के प्रताप से रात्रि बढ़ गई। सारे संसार में अंधेरा छा गया। इस अनहोनी बात को देखकर देवतादि बड़े चकित हुए। अन्त में ब्रह्मा सत्यवती के पास पहुँचे। सत्यवती ने उन्हें शाप की बात बताई और अपने पति को कंचन वर्ण बना देने का वरदान मागा! ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसकी बात मान ली। प्रातःकाल हुआ रितुपर्न ने प्रभावती तीर्थ में स्नान किया। उनका रोग दूर हो गया।

पार्वती ने सत्यवती और रितुपर्न का विवाह कराया सारे देवता बराती बने। तदुपरान्त दोनों चन्द्रोदय के पास आए। चन्द्रोदय पुत्री और जामाता को पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

प्रस्तुत काव्य की रचना सिकन्दर शाह के समय में हुई थी। डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास के प्रथम संस्करण में प्रेम काव्यों की सूची में इसे भी स्थान दिया था। सम्भवतः मसनवी शैली में रचित होने के कारण डा० साहब ने इसे प्रेम काव्य समझा किन्तु जहाँ तक इस रचना के वर्ण्य विषय का सम्बन्ध है यह शुद्ध प्रेमाख्यान नहीं कहा जा सकता है। इस भूल का निराकरण उन्होंने दूसरे संस्करण में कर दिया है।

किसी भी प्रेमाख्यान में नायक-नायिका की प्रेम कहानी का होना आवश्यक है। चाहे इस प्रेम का प्रारम्भ नायक की ओर से हो या नायिका की ओर से या दोनो के हृदय में प्रेम एक ही समय समान रूप से जाग्रत हो। दूसरे यह कि प्रत्येक प्रेमाख्यान में पात्रों की ओर से प्रिय पात्र को पाने का प्रयत्न, उसके राह में पड़ने वाली कठिनाइयों के साथ-साथ संयोग वियोगादि की अवस्थाओं का चित्रण भी रहता है।

इस काव्य में प्रेम का यह स्वरूप नहीं मिलता। यह कहा जा सकता है कि भारतीय दाम्पत्य प्रेम का शुद्ध रूप इसी काव्य में मिलता है। एक सती नारी की कर्तव्य परायणता और पति सेवा से प्राप्त दैवी गुणों और शक्ति की कहानी में क्या प्रेम की महत्ता के दर्शन नहीं होते? किन्तु हमारे विचार से यह एक प्रेम काव्य उस समय कहा जा सकता था जब कि सत्यवती ने रितुपर्न का वरण या तो स्वयं किया होता या उसे पाने के लिए वह उत्सुक अङ्कित की

वाला काव्य है जो भाषा अलङ्कार और अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक निम्न कोटि का काव्य ठहरता है।

हो सकता है कि यह कवि की प्रथम रचना हो जो उसके प्रारम्भिक जीवन में लिखी गई हो जैसा कि कवि ने कहा भी है—'अल्प बयस भई मति कर भौरा' और उसकी अन्य रचनाएँ अधिक प्रौढ़ हों किन्तु जब तक अन्य रचनाओं का पता नहीं चलता तब तक हमें इस कवि को निम्न कोटि का मानना ही पड़ेगा।

माधवानलाख्यानम्

आनन्दधर कृत...

रचनाकाल

लिपिकाल...

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु में माधव के पूर्व जन्म की कथा नहीं प्राप्त होती। अन्य माधवानलाख्यानों की तरह इसकी कथावस्तु का घटनाक्रम प्रायः पाया जाता है। इसमें कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता।

आनन्दधर विरचित माधवानल कामकन्दला गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू काव्य है। कथानक की घटनाओं का वर्णन संस्कृत के गद्य में प्राप्त होता है और नीति आदि विषयक सूक्तियां पद्य में लिखी गयी हैं। कवि ने पद्मिनी चित्रनी आदि स्त्रियों के लक्षण भी गिनाए हैं।

संस्कृत के श्लोकों के अतिरिक्त बीच-बीच में अपभ्रंश के दूहे भी मिलते हैं। इन दूहों की संख्या लगभग ३०-४० होगी। अधिकतर ये दोहे नीति सम्बन्धी हैं जैसे।

'भ्रमरा जाणइ रस विरसु, जो चुम्बइ वणराइ।
पुण्या क्या जाणइ वापुड़ा, जे मुवक लक्कड़ खाइ ॥,

भाषा के ये दोहे स्वयं कवि के द्वारा लिखे गए हैं अथवा किसी दूसरे ने इनको सग्रहीत कर इस रचना में रख दिया है निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। याज्ञिक जी के पास संस्कृत के माधवानल कामकन्दला में भी संस्कृत श्लोकों के बीच-बीच ब्रज भाषा के दोहे मिलते हैं। उस रचना का आरम्भ आनन्दधर की रचना से भिन्न है किन्तु 'आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां' अथवा 'अतिरूपा-द्वृता सीता नष्टो' आदि श्लोक उसमें भी पाये जाते हैं।

लोक काव्य के कारण हो सकता है कि आनन्दधर की संस्कृत रचना में अन्य लोगों ने प्रचलित दोहों आदि को अपनी ओर से जोड़ दिया हो।

इस रचना में माधवानल के भोग-विलास आदि का वर्णन नहीं मिलता। साधारणतः यह काव्य एक नीति मिश्रित प्रेम काव्य कहा जा सकता है जो अपनी भाषा की सरलता के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर सका।

---

१. माधवानल कामकन्दला गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़।

माधवानल कामकन्दला

—*आलमकृत*

रचनाकाल सं० १६४०

(सन् ९९१ हिज्री)।

कथावस्तु

एक समय पुष्पावती (पुहपावती) नगरी में राजा गोपीचन्द्र राज्य करता था। उसके राज्य में एक माधव नामक ब्राह्मण रहता था, जो सुन्दर और सर्व-शास्त्रों का ज्ञाता तथा ललित कला के सभी अङ्गों उपाङ्गों में पारङ्गत था। वह तपस्वी एवं कर्मकाण्डी था तथा नित्य राजा को पूजा कराने उसके महल में आया करता था। उसकी मोहनी सूरत पर नगर की सारी स्त्रियां न्यौछावर थीं और उनको देखते ही अपनी सुध-बुध खो बैठती थीं। एक दिन नदी तट से स्नान के बाद वह गीत गाता हुआ घर लौट रहा था। नगर में प्रवेश करते ही उसके गीत की धुन एक स्त्री के कानों में पड़ी जो अपने पति को भोजन परोस रही थी, उसके गीत ने इस स्त्री को इतना सम्मोहित कर लिया कि उसके हाँथ से सारी भोजन सामग्री छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। स्त्री के इस व्यवहार से उसका पति बड़ा क्रुद्ध हुआ और उससे ऐसे व्यवहार का कारण पूछने लगा, तथा मार डालने की धमकी भी दी। इस पर उस स्त्री ने अपने पति से क्षमा मांगते हुए बताया कि माधव के राग से मैं इतनी विस्मित हो गई थी कि मुझे तन बदन की सुध न रही, इसी कारण ऐसी भूल हो गई।

'माधौनल कियौ रागु। सुनि धुनि हौं बिरमै भइ॥
तहां जाइ मनु लागु। ताते गिर्‌यौ अहारु भुइ॥'

गृहणी के इस उत्तर ने उसके पति को क्रोधान्ध कर दिया और वह उसी समय घर से निकल अन्य व्यक्तियों को एकत्रित करके राजदरबार में पहुँचा और राजा से विनती की कि माधव को निष्कासन दिया जाय अन्यथा सारे नगर निवासी राज्य छोड़कर कहीं अन्य स्थान को चले जायेंगे, क्योंकि माधव के रहते नगर की कोई भी स्त्री ऐसी नहीं है जो अपनी गृहस्थी का कार्य सुचारु रूप से

कर सके। इस ब्राह्मण में न जाने कैसी सम्मोहनी शक्ति है जिससे वह सारी नारियों का हृदय अपने वश में किए हुए है।

प्रजा के इस आरोप को सुनकर राजा ने माधवानल को बुला भेजा और स्वयं उसकी सम्मोहनी शक्ति की परीक्षा लेनी चाही।

अपनी वीणा को लिए हुए जब माधवानल दरबार में पहुँचा तब राजा ने अपनी बीस चेरियों को कुसुम्मी साड़ी पहनाकर कमल पत्र पर बैठने को कहा। इसके उपरान्त राजा ने माधवानल को अपनी वाद्यकला प्रदर्शित करने की आज्ञा दी। वीणा की झंकार और उससे निःसृत मधुर ध्वनि ने कामिनी के कलित कलेवर में एक उन्माद उत्पन्न कर दिया और मदन की पीड़ा से वे अपनी सुध बुध भूल गईं। शरीर को सम्हाल न सकीं तथा स्खलित हो गईं। स्वयं राजा भी बहुत प्रभावित हुए तथा स्त्रियों की दशा देखकर उन्होंने उन सब को भीतर जाने की आज्ञा दी, लेकिन जाते समय प्रत्येक स्त्री अपने पृष्ठ भाग पर कमल पत्र लपटाए हुई थी।

> 'माधौ विप्र नाद अस कहा। भीजै चीरू मदन तब वहा॥
> तब राजा आइसु दयौ, चेरी दइ उठाइ।
> सब ही के पीछे रहे, कमल पत्र लपटाइ॥'

राजा को इस परीक्षा के उपरान्त प्रजा की बात पर विश्वास हो गया और उन्होंने माधवानल को निष्कासन की आज्ञा दे दी।

माधव 'पुष्पावती' को छोड़ घूमता फिरता दस दिन बाद कामावती नगरी पहुँचा जहाँ कामसेन राज्य करता था। राजा कामसेन संगीत प्रेमी था और उसके दरबार में नृत्य और संगीत सभाएँ हुआ करतीं थीं। इसी नगरी में कामकन्दला नाम की अपूर्व सुन्दरी नर्तकी थी। जिस दिन माधवानल इस नगरी में पहुँचा उसी दिन दरबार में संगीत और नृत्य समारोह था। नगर की सारी जनता दरबार में समारोह देखने जा रही थी। माधवानल भी इसी भीड़ के साथ अन्दर जाने लगा किन्तु द्वारपाल ने उसे अन्दर जाने से रोक दिया। अस्तु वह बाहर ही रह कर संगीत सुनने लगा किन्तु थोड़ी ही देर बाद उसने दुःख से अपना सिर धुनना प्रारम्भ कर दिया और सारी सभा को 'मूर्ख' कहना प्रारम्भ कर दिया। माधव के इस व्यवहार से द्वारपाल को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने राजा से जाकर कहा कि एक अपरिचित ब्राह्मण बाहर बैठा हुआ अपना सिर धुनता है और सारी सभा को मूर्ख कहता है। राजा ने द्वारपाल से इसका पूरा कारण पूछने को कहा तब माधवानल ने द्वारपाल से कहला भेजा कि मन्दिर के अन्दर जो बीस मृदंग का अखाड़ा चल रहा है उसमें

ग्यारहवें आदमी के केवल चार उंगली है, अतः स्वर भंग हो रहा है, किन्तु मूर्ख सभा इसे जान नहीं पाती है। राजा ने इसकी पुष्टि की और बात सच निकली। इस पर प्रसन्न होकर कामसेन ने माधव को भीतर बुला भेजा और उनकी बड़ी आवभगत की तथा उसे मुकुट, मणिमाला तथा दो कोटि टका उपहार स्वरूप दिए और अपने पास सिंहासन पर बिठाया।

कामकन्दला इस गुणज्ञ को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई और मन में सोचने लगी कि अब तक उसके नृत्य का कोई पारखी न होने के कारण उसको कला-प्रदर्शन व्यर्थ ही जाता था, किन्तु आज उसकी कला सफल होगी, इसलिए माधवानल के दरबार में आने के उपरान्त उसने अपना नृत्य बड़ी तन्मयता से प्रारम्भ किया।

सर पर पानी का कटोरा रख कर हाथों से चक्र बनाती हुई जिस समय वह पग संचालन कर रही थी उसी समय कंचुकी की सुगन्धि से आकर्षित होकर एक भंवरा उसके कुच के अग्र भाग पर आ बैठा। भ्रमर के दंशन से उसे पीड़ा होने लगी किन्तु नृत्य की मुद्रा के खण्डित होने के भय से तथा माधव के सामने मूर्ख बनने की चिन्ता से उसने अपनी मुद्रा में किंचित अन्तर न आने दिया वरन् सांस को खींच लिया जिससे अधरों की सुगन्ध न आने पाए और फिर कुच के स्रोत से तेज वायु का संचालन किया जिसके कारण भंवरा उड़

---

१. 'पुनि गुन कन्दला करइ। जल भरि सीस कटोरा धरई॥
भृकुटी चाप चलत मुख मोड़हि। कर अंगुरी सों चक्र फिरावहि॥
दीप जोति इक भंवर उड़ाई। कुच के अग्र सों बैठो आई॥

× × ×

छिन छिन कटहि मधुकरा, अंत न भेद न होइ।
माधौनल सब बूझई, और न बूझै कोई॥

× × ×

जो कर छुवै चक्र गिरि पड़ई। काम कन्दला औगुन धरई॥
खैंच पवन मुख वासु न आवहि। अलन स्रोत समीर चलावहि॥
पवन तेज मधुकर उड़ि चला। माधौनल बूझी यह कला॥
तब राजा के नैन निहारै। मूरख राजा न कला विचारै॥
रीझयौ माधव कला विचारी। मुद्रिक दोउर दए उतारी॥

× × ×

गया[1]। कामकन्दला की इस कला को केवल माधवानल ही देख और समझ पाया सभा के अन्य लोग मूर्त की नाईं बैठे रहे। जब राजा ने भी कामकन्दला की प्रशंसा न की तो माधवानल ने अपना मुकुट आदि उतार फैंका और मुद्राएँ भी राजा को लौटा दीं।

माधवानल के इस व्यवहार से कामसेन चौंक पड़ा और पूँछने पर माधवानल ने उत्तर दिया कि तुम और तुम्हारी सभा दोनों ही मूर्ख हैं। कामकन्दला की कला के तुम पारखी नहीं हो सकते, इसलिये मैं मूर्खों के द्वारा प्रदत्त वस्तु नहीं लेना चाहता। राजा को माधव के इस अशिष्ट व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे निष्कासन की आज्ञा दी[2]। राजा ने राज्य भर में यह भी ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई भी माधवानल को आश्रय देगा उसकी खाल में भूसा भरवा दिया जायगा।

अस्तु जिस समय माधवानल 'कामावती' को छोड़कर जाने लगा उसी समय मार्ग में आकर कामकन्दला ने अपना प्रेम प्रकट किया और अपने घर में जाने के लिये अनुरोध करने लगी[3]। पहले तो वेश्या के घर जाने से विप्र ने इनकार किया किन्तु कामकंदला ने अपने सतीत्व का आश्वासन देकर स्वीकृति ले ली और प्रसन्नता पूर्वक विप्र को लेकर अपने घर पहुँची।

---

१. 'नाचत त्रिय कुच अग्र पर, मधुकर बैठ्यौ आइ।
अस्तन स्रोत समीर सो, दीनों भँवर उड़ाइ॥'

× × ×

२. 'तू राजा अविवेकी आई। गुन औगुन बूझौ नहिं ताही॥
मैं विद्या परवीन सुजाना। रीझि कला नहिं राखौं प्राना॥
क्रोधवंत राजा हरि कहै। दीठ विप्र चुप क्यों नहिं रहै॥
मारों खड्ग टूक दुइ करौं। विप्र दोष अपजस तें डरौं॥'

× × ×

३. 'चलहु विप्र घर बैठहुँ मोरे। चरन धोइ सेवहु कर जोरे॥
प्रेम कथा कहु मोहि सुनावहु। काम अग्नि की तपनि बुझावहु॥
मैं रोगी तुम बैद गुनानी। मोहि सजीवनि देहु सो आनी॥
काहे गोरिख रहि अकेला। अब सग लेइ करहु मोहि चेला॥
मे भई धुधल तू सूरज मेरा। तू चंदा हौं भई चकोरा॥'
तू मधुकर हौं कमलती, बैस बास रस लेहि।
मेरे बूंद तैं स्वाति जल, आसै बूँद भरि भरि देहु॥
—माधवानल कामकंदला—आलम।

काम कन्दला के हृदय में माधवानल के लिए प्रेम जाग्रत हो ही चुका था इसलिए घर पहुँच कर उसने विप्र की बड़ी सेवा की। ऐश्वर्य और विलास की सारी सामग्री एकत्रित की और सखियों से विप्र को वशीभूत करने की रीति पूछने लगी। सखियों ने कामकन्दला को रति की सारी रीति बताकर सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित कर कुसुम शय्या पर माधवानल के साथ भेज दिया। इस प्रकार माधव ने दो रातें सहवास सुख और काम क्रीडा में कामकन्दला के साथ व्यतीत कीं[1] और तीसरे दिन राजाज्ञा से वह नगर छोड़कर चलने को तत्पर हुआ। कामकन्दला उसे जाने नहीं देती थी हाथ पकड़कर बहुत विनती करने लगी कि मुझे छोड़कर मत जाओ[2]। दोनों में बड़ी देर तक वादविवाद होता रहा और अंत में एक सखी ने आकर माधव की बाह छुड़ा दी। माधव विदेश चल पड़ा और कामकन्दला बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर एक दिन विरह से व्याकुल होकर माधव ने जंगलों में भटकते हुए प्राण त्यागने का विचार किया। उसी समय उसे पर-दुख भंजन राजा विक्रमादित्य का विचार आया और अपने दुख के निवारण के लिये वह उज्जैन नगरी की ओर चला। उज्जैन में पहुँच कर उसने

---

१. 'कहै कन्दला सुनौ सहेली। मोहि सिखवहु प्रेम पहेली॥
अवलौ मुग्धा हती अलबेली। सिखवहु रस की रीत सहेली॥
रचि सेज न जानँहु प्रथम समागम जिय पहिचानहुँ।
बहु सुजान माधवनल अही। सब भाग कोक बखानहुँ ताही॥
चउदह विद्या कोक बखानै। अंग वास मनमथ की जानै॥

× × ×

कोक रीति कन्दला सिखाई। माधोनल पै सखी पठाई॥
माधो निरखि रीझि कै राहा। तिहिं छिन आइ मदन तन दहा॥

× × ×

मदन धनुष सर पंच लै, माधो सनमुख आइ।
काम कंदला निरखि कै, सरस-सरस ग्रहराइ॥

२. 'गहि रही काम कंदला बाहीं। हौं ताहि जान दैउ जु नाहीं॥
कहति काम ये मीत बताऊँ। कै जु चले मन मोर लुभाउ॥
अहा मीत सज्जन परदेसी। विद्याधर मन मोहन भेसी॥
मारि कटारिन मेटा दाहू। ता पाछै तुम पर भुमि जाहू॥'

× × ×

—माधवानल काम कंदला—आलम।

देखा कि राजा हर समय राजों महाराजों तथा अन्य लोगों से घिरा रहता है। इसलिये उस तक पहुँचना कठिन है, यह देख वह दुखी होकर इधर-उधर भटकता रहा। अन्त में वह महादेव जी के मंडप में गया जहां नित्य प्रातःकाल राजा विक्रमादित्य पूजा के हेतु आया करता था। और उसने रात में एक गाथा मण्डप की दीवाल पर लिख दी।

'कहाँ करौं कित जाऊँ हौं राजा रामु न आहि ॥
सिय वियोग संताप वस, राघौ जानत ताहि ॥'

प्रातःकाल विक्रमादित्य ने पूजा के बाद इसे पढ़ा और मन में सोचता हुआ चला गया। दूसरे दिन फिर माधव ने दूसरी गाथा दीवाल पर लिखी।

'रामचन्द्र नहिं जगमँह आहि। सिया वियोग कियौ दुख जाहि ॥
राजानल पृथ्वी सों गयउ। जिहिं बिछोह दमयन्ती भयऊ ॥

दूसरे दिन राजा ने फिर पढ़ा और बहुत दुःखी हुआ तथा दरबार में आकर घोषणा की कि मेरे राज्य में एक विरही बड़ा दुखी है, इसलिए मैं उस समय तक अन्न-जल न ग्रहण करूँगा जब तक उसे मेरे सामने न उपस्थित किया जायगा।

अतएव सारी प्रजा में खलबली मच गई और सब इस अज्ञात विरही को ढूढ़ने निकल पड़े।

राजा के यहाँ ज्ञानवती नाम की एक दासी थी वह बड़ी चतुर थी। उसने उस वियोगी को ढूढ़ने का बीड़ा उठाया और रात में शिव के मण्डप में गई। माधवानल वहीं दुर्बल मलीन पड़ा हुआ था और कामकन्दला का नाम रट रहा था। दासी ने उसकी दशा को देखा और उसे विश्वास हो गया कि यही विरही है। उसने राजा को आकर इसकी सूचना दी।

इस सूचना को पाकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। माधवानल विक्रमादित्य के सामने लाया गया। राजा ने उसकी सारी कहानी सुनी और फिर उसे वेश्या का प्रेम त्यागने के लिये कहा। कितनी ही सुन्दरियों के प्रलोभन दिए किन्तु माधवानल ने कामकंदला को छोड़कर अन्य किसी की ओर देखने तक की इच्छा प्रकट नहीं की। 'मागो येही बात सुन लीजे, मौं कह कामकंदला दीजे।' अन्त में विक्रमादित्य ने ससैन्य कामावती नगरी की ओर कूच किया। कामावती से थोड़ी दूर पर शिविर डालकर विक्रमादित्य छिपकर कामावती नगरी में पहुँचा और कामकंदला की प्रेम परीक्षा लेने के लिये उसके यहाँ गया।

कामकंदला विक्षिप्तावस्था में पड़ी माधव का नाम जप रही थी[1]। राजा ने पास जाकर उससे प्रेम प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया, किन्तु कामकंदला के नीरस व्यहार और अन्यमनस्क दशा से क्रुद्ध होकर उसने कामकंदला के वक्षस्थल पर लात मारी। लात खाकर कामकंदला ने उसके पैर पकड़ लिए। राजा ने उसके इस व्यवहार का कारण पूछा तो कामकंदला ने कहा कि मेरे हृदय में विप्र माधवानल का निवास है जिनसे आपका चरण छू गया है, अतः वह मेरे लिए पूज्य है। कामकंदला के इस उत्तर ने राजा को द्रवित तो किया किन्तु उसने दूसरा आघात किया और बताया कि माधवानल नाम का एक विप्र विरह में तड़प-तड़प कर कुछ दिन हुए उसकी नगरी में मर गया है।

माधवानल के देहान्त की बात सुनते ही कामकंदला अचेत होकर गिर पड़ी और उसका प्राणान्त हो गया। कामकंदला की मृत्यु से राजा बड़ा दुखी हुआ और अपने शिविर में लौटकर राजा ने माधवानल को कामकंदला की मृत्यु का समाचार सुनाया जिसे सुनते ही माधवानल का भी देहान्त हो गया।

इन दोनों की मृत्यु से विक्रमादित्य बड़ा दुखी हुआ और अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिये उसने चिता बनाई और जलकर मर जाने के लिये तत्पर हुआ। चिता में अग्नि लगाकर वह बैठने ही वाला था कि इतने में 'बैताल' ने आकर उसे रोका और राजा से ऐसा करने का कारण पूछा। राजा ने सारा वृत्तांत बैताल को सुनाया। बैताल सब सुनने के बाद पाताल पुरी से अमृत ले आया जिससे दोनों को फिर जीवित किया गया।

इसके उपरान्त विक्रमादित्य ने 'बसिठ' (दूत) को कामसेन के यहाँ भेजकर कामकन्दला को मांगा किन्तु कामसेन ने कामकन्दला को भेजने से इनकार किया। इस पर दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में कामसेन के सारे सैनिक काम आए। अन्त में कामसेन ने विक्रमादित्य से क्षमा मांगी और कामकन्दला को सौंप दिया। इस प्रकार माधवानल कामकन्दला का संयोग हुआ और दोनों आनन्द से विक्रमादित्य के राज्य में रहने लगे।

पर खोज (१९२३-९) में जो बड़ी पोथी उपलब्ध हुई उसमें मूल कथा के आगे पीछे और भी कुछ अवांतर या प्रासंगिक कथाओं का संविधान किया गया है। मंगलाचरण के अनन्तर इन्द्र की सभा का वर्णन है, जिसमें जयन्ती नाम की अप्सरा उर्वशी की भांति अभिशप्त होती है, वह शिला होकर वन में पड़ी रहती

---

१. 'कामकंदला विरह बस, दुस्तर गात मलीन।
मुख माधौ-माधौ रहै, होइ सो छिन छिन छीन॥'
—'माधवानल कामकंदला'—आलम।

है। माधव अपने गुरु के लिए सामग्री लेने जाता है और शिला को देखता है। उसके द्वारा शिला का उद्धार होता है। माधव उसके साथ इन्द्र की सभा देखने की इच्छा करता है। जयंती उसके गुण पर रीझती है, वह पृथ्वी पर कामकन्दला के रूप में अवतरित होती है। पुष्पावती नगरी के नरेश गोविन्दचन्द के यहां से माधव निर्वासित किया जाता है और कामावती नगरी में आता है, वहां राजा की दी हुई भेंट वह कामकन्दला के नृत्य पर रीझ कर दे देता है। राजा उसकी धृष्टता पर रीझ कर देश निकाले की घोषणा करता है। विक्रम से सहायता पाकर वह कामावती पर उसे चढ़ा देता है। कामकन्दला और माधवानल की मृत्यु होती है और वैताल अमृत लाकर उन्हें जिलाता है। युद्ध होने पर कामसेन पराजित होता और कामकन्दला को दे देता है, जिसे पाकर माधव घर लौटता है।

श्री बालकृष्ण दास की हस्तलिखित प्रति प्रारम्भ में खण्डित है, पर अन्त में बहुत सा अंश 'सभा वाली' छोटी प्रति से उसमें अधिक अंश अवश्य संनिविष्ट है जिसमें माधव के पिता शंकरदास का वर्णन आदि आता है। विक्रम माधव के अनुरोध करने पर उसके साथ पुष्पावती गया। राजा ने विक्रम का आगमन सुना तो अपने पुरोहित शंकरदास को दूत बनाकर उसके पास भेजा। वह विक्रम के पास पहुँचकर उसे भेंट आदि देकर आने का कारण पूंछने लगा। विक्रम ने भी शंकरदास की उदासी का निमित्त जानने की जिज्ञासा की। वह रो पड़ा और कहने लगा कि मेरा पुत्र पुष्पावती से निर्वासित हो कामावती चला गया है तब से उसका पता नहीं चलता। विक्रम ने माधव को उसके सामने किया। पिता परम प्रसन्न हुआ। माधव ने निर्वासित होने के पश्चात की सारी गाथा पिता के समक्ष निवेदित की। विक्रम ने कहा कि मैं तो केवल माधव को सौंपने के लिये आया था। मेरा कोई अन्य प्रयोजन नहीं। पुरोहित ने लौटकर गोविन्दचन्द्र से पूरी कथा कही। राजा ने आकर सत्कारपूर्वक माधव को नगर में बुला लिया।

काव्य-सौंदर्य

नख-शिख वर्णन

आलम ने नारी सौंदर्य का वर्णन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के सहारे बड़ा लालित्यपूर्ण और मनोमुग्धकारी किया है। नख-शिख के वर्णन में उन्होंने परम्परा-गत उपमाओं का ही सहारा लिया है।

काले बालों के बीच की मांग में घिस कर भरा हुआ चन्दन और स्थान

स्थान पर गुँथी हुई पुष्पमाला अम्बर में जटित नक्षत्रावली और सर्प के मुँह पड़ती हुई दुग्ध धार के समान सुशोभित होती है[१]।

मांग के आगे मानिक का वेदा ऐसा प्रतीत होता है मानों सर्प ने मणि उगल दी हो[२]। नासिका के अग्र भाग में लटकता हुआ मोती ऐसा प्रतीत होता है मानों दीपक पुष्प गिराना चाहता है[३]। जलते हुए दीपक की बत्ती का अग्र भाग गिरने के पूर्व तिरछा होकर लटक जाता है और उसकी चमक का साम्य मोती से कितना सुंदर बन पड़ा है।

इस प्रकार अधर पल्लव पर बिछलती हुई मुस्कान से विकीर्ण दंत ज्योति वैसे ही मालूम होती है जैसे कमल पत्र पर बिजली की रेखा हो, कितनी अनूठी और कोमल कल्पना है।

वक्षस्थल पर पड़ी हुई मोतियों की माला सांस से आंदोलित होकर दोनों कुचों पर लहराती हुई ऐसी प्रतीत होती है मानों दो शिव लिंग ने एक साथ ही सुरसरि की धारा बहा दी हो[४]। अथवा तन्वंगी के शरीर पर उरोज इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानों कनक बेलि में दो श्रीफल लगे हों[५]।

नाभि निकट से चलने वाली रोमावली ऐसी प्रतीत होती है मानों स्वर्ण के खंभ पर किसी ने कस्तूरी की क्षीण रेखा खींच दी हो अथवा सर्पिणी अपनी बांबी से निकली हो या दो कमल-रूपी कुचों की सुंदर मृणाल दिखाई पड़ती हो। किन्तु कवि की अन्तिम उत्प्रेक्षा बड़ी सुन्दर एवं नवीन है। उसके अनुसार

---

१. मध्य भाग चन्दनु घटि भरै। दूध धार विषधर मुख परै॥
कहुँ कहुँ पुष्प कंहु कंहु मोती। जनु घन में तारागन जोती॥'
—माधवानल कामकन्दला—आलम।

२. "माग अग्र मानिक दिए औ मुक्तागत सग।
छिन छिन जोति धरै मनौ उगली जु भुजंग॥"

× × ×

३. "नासा अग्र मोती इमि रहई। दीपक पुष्प करन को हहई॥"

× × ×

४. "मुकताहल दोउ कुच बिच रहई। दुहु मेरुमध्य जनु सुर सरि बहई॥
कुच कंचन भरि सांस बारे। सुर सरि धारि जनु ईसं उधारे॥"

× × ×

५. "कनक बेलि श्रीफल जुग लागे। किधौं पुष्प गुथि अति अनुरागे।"
—माधवानल काम कंदला-आलम।

ऐसा जान पड़ता है मानों यमुना ने अपनी गति बदल दी है और वह उलट कर कैलाश पर्वत पर गंगा से मिलना चाहती है। कुचों के ऊपर लहराती हुई मोतियों की माला से गंगा का स्वच्छ जल एवम् रोमावली की श्यामता से यमुना की श्यामता का बड़ा अनूठा साम्य कवि ने स्थापित किया है[1]।

कवि ने जहाँ नवीन उद्भावना के साथ पुरानी परम्परा की उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में सौन्दर्य ला दिया है वहीं उसने परम्परा के अनुसार केले के खम्भे से जांघों की उपमा तथा दाडिम और बिम्बाफल से अधरों और दशनों की उपमा भी दी है।

संयोग शृंगार

शृंगारकाव्य में नारी का सौन्दर्य उपभोग की वस्तु भी है इसलिये इस कवि ने रति की क्रीड़ाओं का भी वर्णन किया है और उससे उत्पन्न शारीरिक विकारों की ओर भी सकेत है किन्तु उसमें शालीनता और मर्यादा का विशेष उल्लंघन नहीं हुआ है।

कामकंदला ने अपनी सहेलियों से कोक रीति को पूछा इसलिए कि वह केवल अब तक मुग्धा थी[2] और इस कला को सीख लेने के उपरान्त वह माधव के पास रसकेलि के लिए पहुँची, कवि ने इस स्तर को केवल कुछ ही शब्दों में व्यंजित कर दिया है। रति के उपरान्त की अवस्था नारी की शिथिलता और उसकी उनींदी तथा अलसाई आखों के सौंदर्य एवं अस्त व्यस्त आभूषणों आदि

---

१. 'उदर छीन रोमावलि देखा। कनक खंभ मृग मद की रेखा॥
नाभि निकर स्यो नागिन चली। जनु कुच कमल नलिन विय भली॥
नाभि पानि सौं उड़ी सुहाई। कवल हुते अलि अवलि आई॥
कै उलटी कालिंदी द्रवहीं। गिरि गंगा परसन कौं चहई॥

× × ×

२. 'कहै कंदला सुनो सहेली। मोहि सिखावहु प्रेम पहेली॥
अबलौं मुग्धा हती अलबेली। सिखवहु रस की रीत सहेली॥'

× × ×

कोक कला हमही कहीं, सब विधि अर्थ बखानि।
और सिखावहुँ मोहिं कछु, पूछहुँ गुन जन मान॥

कामकंदला

× × ×

का वर्णन अवश्य हमें विशद् किन्तु शालीन मिलता है[1]।

विप्रलंभ शृंगार

प्रियतम के बिछोह से बड़ा दुख नारी के लिये नहीं है। उसका जाना मृत्यु से कहीं पीड़ा जनक है। वियोगिनी के लिए ऐसी अवस्था में मूर्च्छा के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं रहा, अतः माधव के बिछोह में कंदला का मूर्च्छित हो जाना स्वाभाविक ही था[2]। मूर्च्छा के उपरान्त विरह की पीड़ा असह्य हो उठती है और इस वेदना की तीव्रता में मनुष्य अपने को ही सारे कर्मों का दोषी समझने लगता है, यह शरीर ही न रहे तो फिर दुख ही क्यों रह जाए इतनी पीड़ा ही का अनुभव क्यों हो किन्तु यह हृदय और शरीर उसे हाड़ मांस का न मालूम होकर वज्र का गढ़ा मालूम होता है[3]।

पानी के बिछोह से तालाब जैसे निर्जीव पदार्थ का पक्ष तक फट जाता है किन्तु मेरा हृदय क्यों नहीं फट जाता। वास्तव में ये प्राण पड़े निर्लज्ज हैं वरन् प्रिय का बिछोह मैं कानों से सुनती ही क्यों[4]? प्रियतम के साथ जीवन

---

१. 'उरझे बाल हारन निवारहिं। सब अंग भूषन सखी सुधारहिं॥
मुख पखारि पुनि पान खवावहिं। नखछत माँहि कुंभ कुमा लगावहिं॥'

× × ×

शिथिल गात कंचुकी तरक बिखरी माँग लट छूट।
अधर दंत उरनज तरक काचावली कर फूट॥

'सखी सकल मिलि रही सुजानी। व्याकुल देखि मुख छिरकहिं पानी॥
काम कंदला परिहरि सेजा। भई बिहाल तन रह्यो न तेजा॥
झलकैं पलक उनींदे नैना। अति जमुहाइ आवहिं नहिं बैना॥
कवल प्रवेस भवँर जो किया। कोस झकोर सकल रस लिया॥'

× × ×

२. 'काम मूछित धरनि महँ परी। सखी आइ करि अंक भरी॥'

३. 'यह हिय बज्र बज्र ते गढ़ा। पाल्यो बज्र बज्र में बढ़ा॥
जा दिन मीत बिछोह भयऊ। तब किनि खंड खंड ह्वै गयऊ॥'

× × ×

माधवानल काम कंदला—आलम।

४. 'बिछुरन जल ताल तरकै। पापी हियै नेक नहि मुरकै॥
ऐसे निलज रहत नांहि प्राना। मीत बिछोह सुनत किनि काना॥
गए न प्रान मीत के संगा। ऐसे निलज रहत गहि अंगा॥'

× × ×

की संपत्ति और सुख चला गया केवल नेत्र प्राण और तन विरह का दुख सहने के लिये रह गए हैं[१]। हृदय को कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। एक जगह बैठा भी नहीं जाता बेचैनी में कभी घर और कभी बाहर भागने का मन होता है। प्रियतम का नाम जपने और सिर धुन कर रोने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह जाता।

प्रेमी की उद्विग्नता का वार-पार नहीं, समय काटे नहीं कटता। दिन में व्याकुलता बढ़ती है, तो रात की याद आती है। सम्भवतः रात को सोकर ही कुछ शान्ति मिल जाए, किन्तु हाय रे मनुष्य के असफल मनोरथ वहीं भी किसी भी समय तो चैन नहीं मिलती।

विरह की पीड़ा सब कुछ तो छीन लेती है। शरीर केवल एक शून्य अस्थि पंजर मात्र रह जाता है। मतिभ्रम हो जाता है और प्रेमी पागल की तरह हो जाता है[४]। खाने-पीने और नहाने की इच्छा नहीं होती केवल आँखें प्रियतम के आने की राह देखती रहती हैं[५]।

मन की चंचलता तथा अङ्ग का शृङ्गार सब भूल जाता है और फिर चेतना भी धीरे-धीरे साथ छोड़ने लगती है। शरीर इतना कृश प्राय हो गया है कि वह स्वाँस की तेजी को भी सहन नहीं कर पाता और मन सारे देशों से प्रियतम के

---

१. 'आलम मीत विदेसिया लै गयो संपति सुख।
नैन प्रान विरह बस रहे सहन को दुख॥'

× × ×

२. 'छिन माधौं माधो गुहिरावै। छिन भीतर छिन बाहर आवै॥
विरह ताप निसि सेज न सोवै। कर मीड़ सीउ धुनि धुनि रोवै॥'

× × ×

३. 'जो दिन होइ तौ निसि रहै, जो निसि होइ तौ प्रात।
ना दिन सांति न रैन सुख, विरह सतावत गात॥'

× × ×

—माधवानल कामकंदला–आलम।

४. 'नृत्य गीत गुन चतुराई। गति मति आनि विरह बौराई॥

× × ×

५. 'अंजन मजन भोग बिसारे। सजल नैन है जल के तारे॥
वस्त्र मलीन सीस नहिं बेलै। लक टेक माधो मग जोवै॥'

× × ×

लिये दौड़ता फिरता है[1]।

संयोग में जो वस्तुएँ सुखदाई होती हैं वही वियोग में दुखदायी बन जाती हैं। बसंत और पावस ऋतु, मलय समीर तथा सूर्य और चन्द्रमा प्रकृति की हर सुखकारी वस्तु दुख की तीव्रता को ही बढ़ाने वाली होती है। इसलिए तो 'कन्दला को कुछ नहीं सुहाता[2]।

विरह की पीड़ा केवल नारी के हृदय में ही नहीं होती, पुरुष भी इससे उतना ही व्याकुल होता है। कन्दला के विछोह में माधव भी आहें भरता पागलों की तरह घूमता-फिरता था और केवल कन्दला के ध्यान में ही मस्त था[3]।

उसकी कराह से वन के पशु-पक्षी भी विचलित होकर अपनी नींद खो देते थे और हिंस्र पशु अपनी पाशविकता भूल जाते थे। कृषकाय माधव सूखे पत्ते की तरह अपने ही हृदय में अपनी पीड़ा छिपाए हुए भटकता फिरता था[4]।

वास्तव में यह विरह-समुद्र अगाध अलेख है, इसमें पड़ कर कोई भी पार

---

१. माधो बिरह कन्दला व्यापी। बिरह की ताप सकल तन व्यापी॥
डारे तन मारे मन रहई। हिये पीर काहू नहिं कहही॥
छिन चेतै छिन चेत नहिं आवै। जीव विकल हर देस में धावै॥
स्वांस लेत पिंजर सन डोलै। छिन में मरे सखी समालैं॥

× × ×

२. रितु बसन्त कोकिल दहई। मलय समीर आग जिमि दहई॥
पावस रितु बरसै जब मेहा। प्रकृति मरत है सुमिरि सनेहा॥
सूर चन्द्र सीतल सब कहई। मिलि समीर आगि जिमि लहई॥
जे जे सीतल सुखद सहायक। ते सब मोहि भए दुख दाइक॥'

माधवानल कामकन्दला

३. बिछुरत काम कन्दला नारी। माधव नल भयो दुख भारी॥
बिरह स्वास हियरे जो बढ़ै। छिन-छिन आहि-आहि कर काढ़ै॥
बन-बन फिरै बीन बजावै। सूखे काठ अगन जनु लावै॥
मन चिंता करतय वियोगी। गोरख ध्यान रहै जिमि जोगी॥

× × ×

४. जैसे सूख पात जु डोले। दुख सहै माधो नहिं बोले॥
छिन-छिन टेर-टेर कै रोवै। बन पंछी नींद न सोवहिं॥
बाघ सिंह कोउ निकट न आवै। चहुँ दिसि बिरह अगिनि उठि धावै॥

× × ×

नहीं पाता। वह जीवित नहीं रह सकता और अगर वह जीवित रहता भी है तो संसार के लिए बेकार होकर पागल हो जाता है। इसलिए कि विरह की चिनगारी नित्यप्रति बढ़ती हुई सारे शरीर को भस्मीभूत कर देती है[१]।

अन्य रस

माधवानल में आलम ने जहां एक ओर संयोग, वियोग और सम्भोग शृंगार का बड़ा सुन्दर सरस और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है वहां उसकी लेखनी वीर और भयानक रस में भी उतनी ही पटुता से चली है।

सैन्य के चलने और उसके बजते हुए बाजों के प्रभाव का शाब्दिक चित्र कितना सरस बन पड़ा है[२]। दो सेनाओं का घमासान युद्ध, हाथी से हाथी और और योद्धा से योद्धा की भिड़ंत तथा रुंड-मुंडों का पृथ्वी पर गिरना बड़ा सजीव बन गया है[३]। कटे हुए रुंड-मुंड भी युद्ध की हुँकार करते हुए दिखाई पड़ते हैं[४]।

---

१. विरह समुद्र अगम अगाध अपि अही। बूडि मरै नहि पावै थाही ॥
बुधि बल छल कोउ पार न पावै। जो नर सत्त गगन चढ़ धावै ॥
बिरह डसत नर जिये न कोई। जो जीवहि सो बौरो होई ॥
बिरह चिनग चिह तन पर जरई। छिन-छिन अधिक अगिन बिस्तरई ॥
सोई अगिन माधौतन लागि। बन-बन फिरहि बिरह बैरागी ॥

× × ×

—माधवानल काम कंदला—आलम।

२. मेघ सब्द जिमि बजै निसाना। उठै अन्कुर अम्बर घहराना ॥
भरे झाझ धुनि सुनै अडारू। खर समूह अउवाजहि मारू ॥
मारू सबूद सनहि जिमि बीरा। पुलकत रोम रोम अउधीरा ॥'

× × ×

३. 'रावत पर रावत चढ़ि धाए। धनुख पर धनुख चढ़ि आए ॥
पाइक सो पाइक भए जोरा। लहत बार अरु मुख नहिं मोरा ॥
गज सों गज कीने चोदन्ता। चिक्करै कुञ्जर में मत मन्ता ॥
बाजै लोह उठै टन्कारा। तापर फिरै खड्ग की धारा ॥
फूटै फूट मुंड कटि जाहीं। बाजै सार सार छन जाहीं ॥

४. *हां कै खड्ग उतरि गए मुंडा। गिरै राति धरती पर मुण्डा ॥*
सूर जूझि धरती जै परहीं। मूड़ो मार मार उचरहीं ॥

इस युद्ध से उत्पन्न वीभत्सता और भयानकता का स्वरूप कितना रोमांचकारी बन पड़ा है[1]।

---

१. बोलै घाव साउ उचरहीं। जहँ तँह रकत के नीर ढरहीं॥
जोगिनि फिरैं भूत निसाना। बैठि करैं लोह स्नाना॥
× × ×
माधवानल कामकन्दला।

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी के ग्रन्थ

१.	पण्डित रामचन्द्र शुक्ल	—	हिन्दी साहित्य का इतिहास
२.	डा० रामकुमार वर्मा	—	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
३.	मिश्र बन्धु	—	मिश्र बन्धु विनोद
४.	रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	—	हिन्दी साहित्य का इतिहास
५.	शिव सिंह	—	शिव सिंह सरोज
६.	डा० नगेन्द्र	—	रीतिकाल की भूमिका
७.		—	मति राम ग्रन्थावली
८.	रामचन्द्र शुक्ल	—	पद्मावत की भूमिका
९.	परशुराम चतुर्वेदी	—	मध्ययुग की प्रेम साधना
१०.	श्रीचन्द्रवली पाण्डेय	—	तसव्वुफ और सूफीमत
११.	जायसी	—	पद्मावत
१२.	नूरमुहम्मद	—	अनुराग बाँसुरी : श्रीचन्द्रबली जी द्वारा संपादित
१३.	बलदेव प्रसाद मिश्र	—	वैदिक कहानियाँ
१४.	डा० दीनदयालु गुप्त	—	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय
१५.	रामचन्द्र शुक्ल	—	रस मीमांसा
१६.	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	—	वाङ्मय विमर्श
१७.	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	—	बिहारी
१८.		—	रसगंगाधर
१९.	डा० केसरी नारायण शुक्ल	—	रूसी साहित्य
२०.	नामवर सिंह	—	हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश का योग।

हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची

२१.	मंझन	—	मधुमालती
२२.	नूरमुहम्मद	—	इन्द्रावती
२३.	आलम	—	माधवानल कामकन्दला

२४. रामगुलाम — प्रेम रसाल
२५. जान कवि — रतन मंजरी
२६. ,, — छीता
२७. ,, — पुहुप बारिखा
२८. ,, — कवलावती
२९. ,, — रूप मंजरी
३०. ,, — कामलता
३१ ,, — रत्नावली
३२. ,, — कथा नल-दमयन्ती की
३३. ,, — छवि सागर
३४. ,, — मोहनी की कथा
३५. ,, — चन्दसेन राजा सील निधि की कथा
३६. ,, — काम रानी व प्रीतम दास की कथा
३७. ,, — बल्किया बिहारी की कथा
३८. ,, — खिजिर खां देवलदे की कहानी
३९. ,, — कालिदास ग्रन्थावली

पत्र-पत्रिकाएँ आदि

४०. श्री जैन सिद्धान्त भास्कर — भाग १ जुलाई-सितम्बर १९१२
४१. नागरी प्रचारिणि पत्रिका —
४२. विश्वभारती खंड ५ अंक २. अप्रैल-जून।
४३. अनुशीलन — प्रयाग विश्वविद्यालय
४४. ज्ञान शिखा — लखनऊ विश्वविद्यालय
४५. हिन्दुस्तानी — हिन्दुस्तानी एकेडमी
४६. राजस्थानी शोध पत्रिका —
४७. राजस्थान भारती —
४८. शोध पत्रिका —
49. Jain Antiquary ... Vol. III.
50. Journal of the Bihar & Orissa Research Society ... Vol. XXIX.
51. Report of the VIIth Oriental Conference Baroda— ... Dec. 1933.
52. Indian Antiquary ... Vol. XLIX 1920.

53. Rev. Cannon Sell D. D. ... Sufism.

54. Browne ... A Year amongst the Persians.

55. Reynold Nicholson ... Mystics of Islam.

56. Murray & T. Titus ... The Religious Quest of Indian Islam.

57. Dr. Kaumudi ... Studies in Moghul Paintings.

58. Grousset ... Civilizations of the East Vol. II.

59. Winternitz ... A History of Indian Literature Vol. I & II

60 Ambika Prasad Bajpai .. Persian influence on Hindi.

61. Madan Mohan Malviya ... Mysticism in Upnishadas

62. Bhagwan Das ... Hindu Ethics.

63. E. H. Palmer ... Mysticism.

64. Nicolson ... Mysticism in Persian Poetry.

65. P. C. Wahar ... Notes on the Jain Classical Literature.

66. Lewis . The allegory of love.

67. Moncrieff ... Romance & Legend of Chivalry.

68. Heighet ... The Classical Traditions.

69. Crompton ... Cambridge History of English Literature Vol. II.

70. Bhoja ... Sringar Prakash Vol. I.

71. B. S. Upadhyay ... Woman in Rigveda.